''स्वतन्त्रोत्तर काल में भारतीय जनसंख्या की प्रवृत्ति, समस्या एवं समाधान का विश्लेषणात्मक अध्ययन''

अर्थशास्त्र विषय में पी-एच0 डी0 उपाधि हेतु
बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झांसी

को

प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध

*

प्रस्तुतकर्ता

रश्मि गुप्ता

बड़ेरिया भवन
404, तुलसी नगर, उरई
जिला-जालौन (उ0प्र0)

*

निर्देशक

डा० रजनी त्रिपाठी

एम.ए., पी-एच.डी.
वरिष्ट प्रवक्ता, अर्थशास्त्र विभाग
डी0 वी0 कालेज, उरई

*

दयानन्द वैदिक स्नातकोत्तर महाविद्यालय

उरई, (जालौन) उत्तर प्रदेश

2004
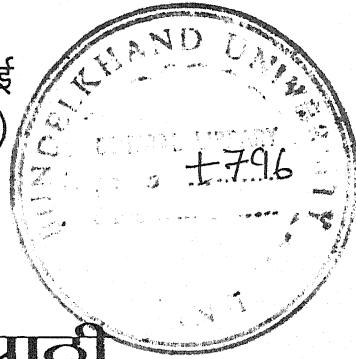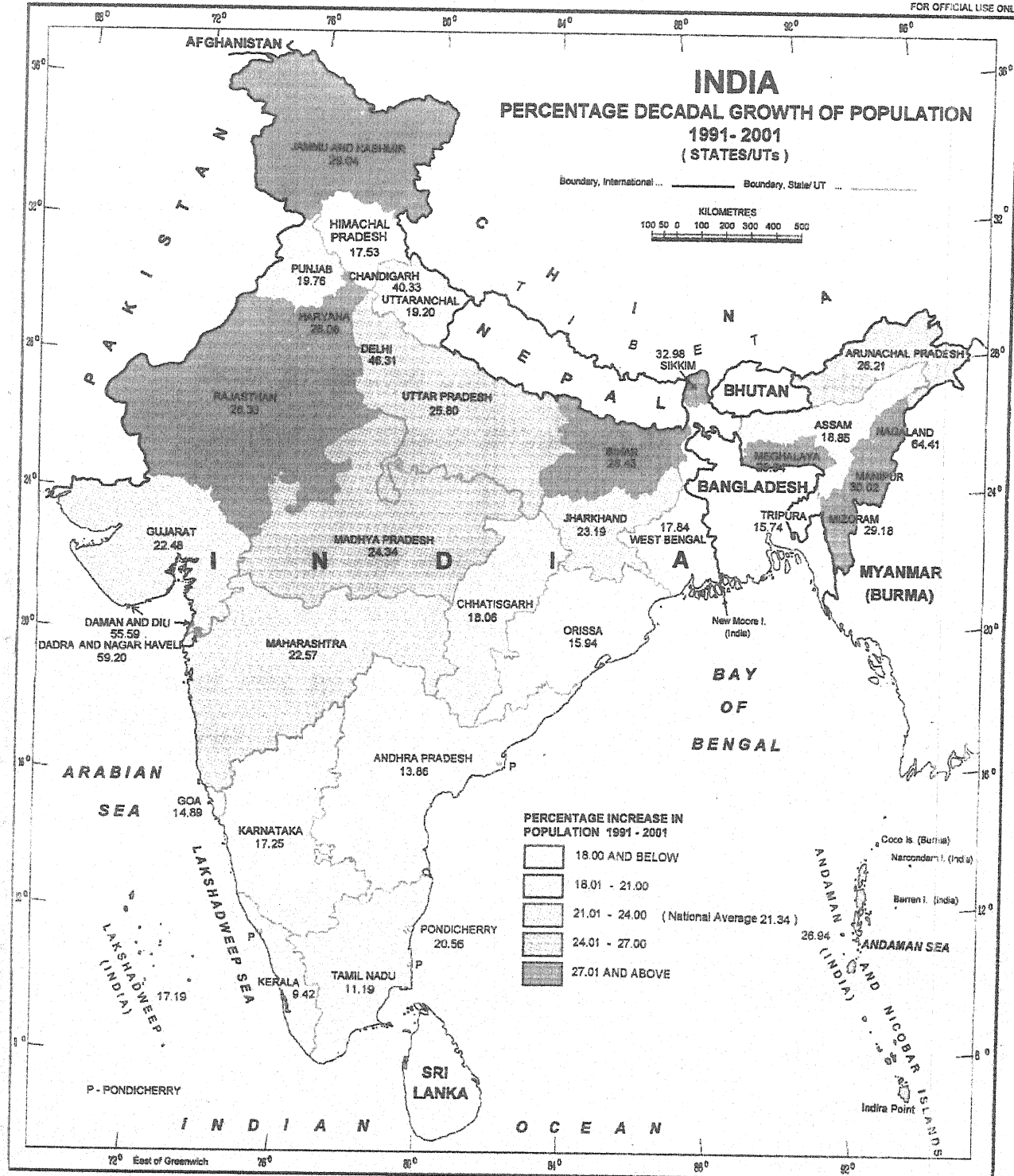
Based upon Survey of India map with the permission of the Surveyor General of India.

The territorial waters of India extend into the sea to a distance of twelve nautical miles measured from the appropriate base line.

The interstate boundaries between Arunachal Pradesh, Assam and Meghalaya shown on this map are as interpreted from the North-Eastern Areas (Reorganisation) Act, 1971 but have yet to be verified.
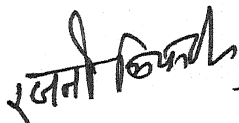
प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि रश्मि गुप्ता ने "स्वतन्त्रोत्तर काल में भारतीय जनसंख्या की प्रवृत्ति, समस्या एवं समाधान का विश्लेषणात्मक अध्ययन" विषय पर प्रस्तुत शोध प्रबन्ध पी-एच0 डी0 उपाधि हेतु निर्धारित नियमानुसार मेरा निर्देशन प्राप्त करके लिखा है। यह शोध प्रबन्ध रश्मि गुप्ता के स्वयं के शोध कार्य पर आधारित है और उनकी मौलिक कृति है।

रश्मि गुप्ता ने निर्धारित नियमों के अनुसार वांछित अवधि 24 माह उपस्थित रहकर मेरा निर्देशन प्राप्त किया है और मेरे अभिमत में यह शोध प्रबन्ध " बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय" झांसी की पी-एच.डी. उपाधि हेतु निर्धारित अध्यादेश की अनिवार्यताओं की सम्पूर्ति करता है।

दिनांक : 17-09-04

रजनी त्रिपाठी

(डा0 रजनी त्रिपाठी)
एम0ए0, पी–एच0डी0
वरिष्ट प्रवक्ता, अर्थशास्त्र विभाग
दयानन्द वैदिक स्नातकोत्तर
महाविद्यालय, उरई

घोषणा पत्र

मैं घोषणा करती हूँ कि प्रस्तुत शोध कार्य मैंने डा0 रजनी त्रिपाठी के निर्देशन में किया है शोध प्रबन्ध की सामग्री मौलिक है तथा सम्पूर्ण लेखन स्वतन्त्र रूप से स्वयं के द्वारा किया गया है इसमें प्रस्तुत तथ्यों एवं संमकों का संकलन मैंने स्वयं किया है तथा तथ्यों पर आधारित आरेखों की रचना मैंने स्वयं की है।

रश्मि गुप्ता

(रश्मि गुप्ता)

बडेरिया भवन

404, तुलसी नगर, उरई

जिला–जालौन (उ0प्र0)

प्राक्कथन

आज सारे विश्व के लगभग सभी जनसंख्या शास्त्री तथा भविष्य दृष्टा, इस सदी के प्रारम्भ में, तीव्र गति से बढ़ती जनसंख्या के कारण, सम्भावित विश्व का अत्यन्त विकराल रूप प्रस्तुत कर रहे है। यह विकरालता अविकसित तथा विकासशील देशों में अत्यधिक गम्भीर होगी। भारत के बारे में जनसंख्या विशेषज्ञों का मत है कि यदि भारत की अत्यन्त तीव्र जनसंख्या वृद्धि दर को शीघ्र ही युद्ध स्तर पर नियन्त्रित नहीं किया गया तो हर वर्ष एक आस्ट्रेलिया की जनसंख्या को जोड़ने वाले इस देश में, सारी प्रगति तथा विकास के बाद भी विपन्नता तथा गरीबी का स्तर और अधिक भयंकर होगा और तब जनसंख्या को नियंत्रित करना न केवल कठिन बल्कि असम्भव होगा। जिस प्रकार घर में भूखे बच्चों से घिरा हुआ पिता कोई गहरा ठोस कार्य करने में असमर्थ रहता है, ठीक उसी तरह आज हमारा देश जनाधिक्य के जाल में उलझकर किसी भी प्रकार की उन्नति नहीं कर पा रहा है। बढ़ती हुई जनसंख्या ने हमारी प्रगति पर पूर्ण विराम लगा दिया है। भूतपूर्व नियोजन मंत्री श्री अशोक मेहता ने ठीक ही कहा था, " जनसंख्या में वृद्धि रात्रि के चोर के समान है जो हमारे आर्थिक विकास में प्राप्त सफलता को हमसे लूट ले जाता है।" हमारी भूतपूर्व प्रधानमंत्री इन्दिरा गांधी के शब्दों में " जनसंख्या में तीव्र गति से बढ़ते रहने से आयोजित विकास करना बहुत कुछ ऐसी भूमि पर मकान खड़ा करने के समान है जिसे बाढ़ का पानी बराबर बहा ले जा रहा है। मैं कहूँगी यह बालू पर मकान खड़ा करने जैसा है। आयोजन, औद्योगिक तथा कृषि–विकास द्वारा जो कुछ भी उन्नति होती है। वह आबादी की वृद्धि में डूब जाती है। फलतः जनता के रहन–सहन के स्तर में कोई उल्लेखनीय उन्नति नहीं दिखाई पड़ती है।" विभिन्न धर्मों, मान्यताओं, अशिक्षा एवं रूढ़ियों में जकड़ा पूरा भारतीय समाज तथा उसकी आज की युवा पीढ़ी, यदि वर्तमान तीव्र जनसंख्या वृद्धि के गम्भीर और विनाशक परिणामों को जान–समझ न पायी तो निकट भविष्य में, उनके युवा काल में ही, अत्यन्त भयंकर स्थिति निर्मित हो जायेगी जो उनके और उनकी सन्तान का जीवन कठिन व दूभर कर

देगी। अतएव, आज वास्तव में आवश्यकता है, तीव्र जनसंख्या वृद्धि दर के बारे में, एक जनजागरण निर्मित हो, जिससे प्रेरणा लेकर हर व्यक्ति अपने जीवन और अपने परिवार के जीवन के बारे में, एक ऐसा निर्णय ले सके जो कि सर्वमान्य हो और यह तभी सम्भव हो सकता है, जब हर व्यक्ति तीव्र जनसंख्या वृद्धि को किसी समाज, धर्म, राजनीतिक विचार, स्तर अथवा अन्य स्वार्थी एवं अन्य संकुचित दृष्टिकोण से न परखें। वरन् इस समस्या को स्वयं अपनी और अपने परिवार की गहन समस्या अनुभव करें।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध " स्वतन्त्रोत्तर काल में भारतीय जनसंख्या की प्रवृत्ति, समस्या एवं समाधान का विश्लेषणात्मक अध्ययन है।" प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के अन्तर्गत सम्पूर्ण विषय सामग्री को सात अध्यायों में विभक्त किया गया है। प्रथम अध्याय में जनसंख्या वृद्धि का इतिहास, आर्थिक संसाधन के रूप में महत्व तथा भारत में जनसंख्या की संरचना, घनत्व एवं जनसंख्या विस्फोट का वर्णन किया गया है। द्वितीय अध्याय के अन्तर्गत जनाधिक्य की समस्या का स्वभाव तथा जनाधिक्य एवं सामुदायिक जीवन का ब्यौरा प्रस्तुत किया गया है। जनसंख्या वृद्धि पर माल्थस एवं अन्य विचार धारायें एवं भारत में जनसंख्या वृद्धि के विशेष कारण तृतीय अध्याय की विषय सामग्री है। अध्याय चतुर्थ में जनसंख्या का आर्थिक व सामाजिक विकास पर प्रभाव के अन्तर्गत जनसंख्या वृद्धि एवं प्रतिव्यक्ति आय, पूँजी निर्माण, रोजगार, पारिवारिक जीवन, पर्यावरण, सामाजिक विघटन का अध्ययन किया गया है। पंचम अध्याय के अन्तर्गत भारत सरकार की जनसंख्या नीति का अर्थ, आवश्यकता तथा सरकारी नीति की सफलतायें व असफलताओं के कारण दर्शाये गये है। छठें अध्याय में जनसंख्या शिक्षा का अर्थ एवं आवश्यकता तथा परिवार नियोजन कार्यक्रम की सफलता के लिये आवश्यक तत्वों का वर्णन किया गया है। अध्याय सप्तम में शोध का निष्कर्ष दिया गया है साथ ही जनसंख्या को नियन्त्रित करने के लिये सुझाव प्रदर्शित किया गया है।

किसी भी कठिन लक्ष्य को पाने के लिये जीवन में सर्वप्रथम प्रेरणा, तत्पश्चात् निर्देशन एवं सहयोग की परम आवश्यकता होती है। वैसे भी समाज में रहकर

कोई कार्य नितांत अकेले करना यदि असम्भव नहीं तो अत्यधिक कठिन अवश्य होता है। इस सत्य को मैंने शोध कार्य के दौरान जाना। लक्ष्य को प्राप्त करने की प्रेरणा लक्ष्य की प्राप्ति के लिये आवश्यक तो होती है, परन्तु पर्याप्त नहीं, क्योंकि केवल प्रेरणा से ही काम नहीं चलता। वास्तव में किसी विश्लेषणात्मक अध्ययन में विभिन्न तथ्यों के एकत्रीकरण एवं उनके विश्लेषण के लिये उचित दिशा निर्देशन अति आवश्यक होता है।

मैं शोधकर्ती अपने शोध प्रबन्ध के पूर्ण होने पर उन समस्त महानुभावों की हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने मेरे इस शोध प्रबन्ध में किसी न किसी प्रकार का अमूल्य सहयोग दिया है। इस बात को स्वीकार करने में मुझे प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है कि मेरे कर्मयोगी पिता श्री रामप्रताप गुप्ता, स्नेहमयी माँ श्रीमती राजकुमारी गुप्ता, बड़े भाई राहुल गुप्ता, छोटे भाई रोहित गुप्ता व परिवार के अन्य सदस्यों, गुरूजनों, मित्रों एंव अन्य शुभचिन्तकों की कृपा, आर्शीवाद, प्रेरणा एवं सद्‌भावना निरन्तर इस कार्य को पूर्ण करने में स्फूर्ति उत्पन्न करती रही है। मैं अपनी पर्यवेक्षक आदरणीय डॉ0 रजनी त्रिपाठी वरिष्ट प्रवक्ता, अर्थशास्त्र विभाग, डी. वी. कालेज, उरई के द्वारा दिये सहयोग के प्रति हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ जिनका सहयोग एवं सुझाव मुझे निरन्तर प्राप्त होता रहा है।

इसके साथ ही मैं डॉ0 के. पी. गुप्ता, विभागाध्यक्ष एवं श्री शरद श्रीवास्तव वरिष्ट प्रवक्ता अर्थशास्त्र विभाग, डी. वी. कालेज, उरई व डॉ0 सी.पी. सिंह विभागाध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग अतर्रा कालेज अतर्रा के प्रति सादर व हार्दिक आभार प्रकट करना मैं अपना प्रथम पुनीत कर्त्तव्य समझती हूँ जिन्होंने अपने सुझावों द्वारा सदैव मुझे प्रेरित किया है।

मैं किन शब्दों में अपने प्रेरणास्त्रोत आदरणीय डा0 परमात्मा शरण गुप्ता, प्रवक्ता अर्थशास्त्र विभाग, डी. वी. कालेज उरई के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करू जिनकी सतत् प्रेरणा व उत्साह के कारण में इस शोध कार्य को पूर्ण कर सकी हूँ। इस क्षेत्र में उनेक विस्तृत अनुभव एवं विद्वता रूपी रश्मियों से मेरा पथ आलोकित हुआ।

उनकी यह प्रेरणा मुझे मेरे शोध प्रबन्ध की लम्बी यात्रा में सबल सम्बल, प्रदान करती रही है। आपके प्रति अपनी हार्दिक भावनाओं को रेखांकित करना न केवल मेरे लिए कर्त्तव्यपूर्ण है बल्कि सौभाग्यपूर्ण भी।

अध्ययन में सहायक ग्रन्थों के लिये मुख्य रूप से दिल्ली स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स, केन्द्रीय लाइब्रेरी आई.आई.टी. कानपुर, डी. वी. कालेज लाइब्रेरी उरई, डिस्ट्रीक्ट लाइब्रेरी उरई, सनातन महिला महाविद्यालय उरई, गाँधी महाविद्यालय उरई, श्री शाहु जी महाराज कानपुर विश्वविद्यालय लाइब्रेरी कानपुर के लाइब्रेरियन की भी अत्यन्त आभारी हूँ।

विभिन्न शोध संम्बन्धी ऑकड़ों व सूचनाओं के लिये अन्नवेषक कम संगणक, सेन्सस ऑफ इण्डिया ऑफिस नई दिल्ली, जनगणना ऑफिस लखनऊ, जनगणना कार्यालय उरई, जिला सांख्यिकी कार्यालय उरई, एवं जिला विकास कार्यालय उरई के प्रति आभार प्रकट करती हूँ।

शोधकर्ता

रश्मि गुप्ता

(रश्मि गुप्ता)

बडेरिया भवन

404, तुलसी नगर, उरई

विषय सूची

पंचम अध्याय -:

षष्ठ अध्याय -:

सप्तम अध्याय -:

परिशिष्ट -

सारणी की सूची

अध्याय -: **पृष्ठ संख्या**

चित्र एवं ग्राफों की सूची

अध्याय - प्रथम

जनसंख्या वृद्धि का इतिहास

विद्वानों के अनुसार आज से लगभग 20–30 लाख वर्ष पूर्व मानव का इस धरती पर प्रादुर्भाव हुआ था। प्रारम्भ से सन् 1830 तक विश्व की कुल जनसंख्या केवल एक अरब थी, किन्तु अगले 100 वर्षों में ही अर्थात् सन् 1930 तक जनसंख्या दो गुनी हो गई। तात्पर्य यह है कि जितनी जनसंख्या वृद्धि लाखों वर्षों में हुई उतनी इधर मात्र 100 वर्षों में ही हो गई। जनसंख्या वृद्धि की यह दर और तेज हुई और अगली एक अरब की वृद्धि केवल 30 वर्षों में ही हो गई। इस प्रकार सन् 1960 तक 3 अरब नर–नारी इस धरती पर हो गये और फिर अगले 15 वर्षों में ही अर्थात् सन् 1975 तक जनसंख्या बढ़कर 4 अरब हो गई। विश्व जनसंख्या में पुनः 1 अरब की वृद्धि होने में केवल 12 वर्ष ही लगे। 11 जुलाई 1987 को विश्व के 5 अरब वें शिशु का जन्म युगोस्लाविया में हुआ। 12 अक्टूबर 1999 को सम्पूर्ण विश्व की जनसंख्या बढ़कर 6 अरब हो गई। अनुमान है कि विश्व की जनसंख्या सन् 2010 तक 7 अरब सन् 2022 तक 8 अरब तथा 2050 तक 9 अरब हो जायेगी।

जनसंख्या सम्बन्धी सूचनाओं के संकलन की परम्परा प्राचीनकाल से ही किसी न किसी रूप में विद्यमान रही है। भारत, मिश्र, बेवीलोन तथा चीन के प्राचीन इतिहास में राज्य के जनसंख्या सम्बन्धी उल्लेख मिलते है। उस समय जनसंख्या सम्बन्धी आँकड़ों को एकत्र करने में राज्य की रूचि सम्भवतः प्रशासन सैनिक शक्ति एवं सैन्य व्यवस्था, भूमि व्यवस्था एवं लगान आदि की दृष्टि से रही होगी। भारत में महाभारत, कौटिल्य का अर्थशास्त्र और आइने–अकबरी में जनसंख्या सम्बन्धी उल्लेख मिलते है। इस तरह जनसंख्या सम्बन्धी विचार समय–समय पर व्यक्त किये जाते रहे है तथा इसकी गणना भी की जाती रही है। अतः आँकड़े केवल किसी साध्य के लिये साधन की भूमिका निभाते थे।

भारतवर्ष में जनसंख्या सम्बन्धी जानकारी जनगणना द्वारा उपलब्ध कराये जाने का उल्लेख हमें इतिहास में भी मिलता है। ''कौटिल्य का अर्थशास्त्र'' नामक पुस्तक में मौर्यकाल में किये गये कृषि, आर्थिक व जनसंख्या सम्बन्धी सर्वेक्षणों की जानकारी मिलती है। मुगल शासक अकबर के राज्यकाल में उद्योग, सम्पत्ति एवं जनसंख्या सम्बन्धी एकत्रित की गयी जानकारी का विवरण 'आइने–अकबरी' में विस्तार पूर्वक दिया गया है।

भारत की जनसंख्या से सम्बन्धित अधिकृत तथ्य सन् 1871 में तथा ठीक उसके बाद ही एकत्र किये जाने लगे। ऐतिहासिक प्रमाणों से यह आभास होता है कि प्राचीन भारत में ऐसे विकसित शहर थे, जिनमें विशाल जनसमूह का निवास था तथा जहाँ घनी आबादी थी। मोहन जोदडों एवं हडप्पा की खुदायी से पता चलता है कि ईसा से करीब तीन–चार हजार वर्ष पूर्व भारत एक विकसित राष्ट्र था।

सिकन्दर के आक्रमण काल में भारत में बहुत जनसंख्या थी, क्योंकि एक छोटे से राज्य में 37 नगर थे जिनमें 5,000 निवासी वास करते थे। चन्द्रगुप्त के काल में भारत में 7 लाख सेना थी। ''किग्सले डेविस'' का मत है कि ''ईसा सन् प्रारम्भ होने से पूर्व भारत में बहुत जनसंख्या थी, क्योंकि यहां एक ओर प्रविधि का पर्याप्त विकास हो चुका था तथा दूसरी ओर उस विकसित प्रविधि का उपजाऊ भूमि होने से प्रयोग हो जाता था।''1 डा0 प्राणनाथ'' ने ऐतिहासिक प्रमाणों, अभिलेखों तथा विद्यमान साहित्य के आधार पर भारत की 400 ईसा पूर्व की जनसंख्या 100 से 140 मिलियन अनुमानित की।'' 2 उनका मत था कि दीर्घकाल तक भारत की जनसंख्या इन्हीं दो सीमाओं के बीच रही होगी। डा0 चन्द्रशेखर का मत है कि प्राचीन भारत की जनगणना की कोई न कोई व्यवस्था अवश्य रही होगी। हो सकता है इसका उद्देश्य राज्य की सैन्य शक्ति का अनुमान लगाना हो या करो से सम्भावित आय का पता लगाना हो। कौटिल्य के अर्थशास्त्र (300 ई0पू0) में सांख्यिकी की विकसित पद्धति के उल्लेख मिलते है –

"The individual enumeration of occupation and production recorded by Kautilya was fairly advanced even by modern standards" 3.

मौर्य के शासनकाल में (326–188 ई0 पूर्व) एक निश्चित अवधि के उपरान्त जनगणना होती रहती थी। गुप्तकाल जिसे प्राचीन भारत का स्वर्णयुग कहा जाता है, में यह जनगणना पद्धति प्रचलित थी और इसके लिये एक स्थायी विभाग था। प्रसिद्ध इतिहासकार "मोरलैण्ड" ने "सत्रहवीं सदी के प्रारम्भ में भारत की जनगणना 100 मिलियन अनुमानित की।"4 "डा0 फिण्डले शिराज ने तत्कालीन भारत की जनसंख्या 180 मिलियन अनुमानित की।"5 किंग्सले डेविस ने 130 मिलियन तथा डा0 राधाकमल मुकर्जी ने 150 मिलियन के अनुमान लगाये।"6 किंग्सले डेविस एवं एस0 चन्द्रशेखर ने भारत की प्राचीनकाल की जनसंख्या के अनुमान तालिका 1.1 में दिये गये है।"7 एवं ग्राफ 1.1 (A) व ग्राफ 1.1(B) में स्पष्ट है –

तालिका १.१

प्राचीनकाल की जनसंख्या

भारत की सत्रहवीं से उन्नीसवीं शताब्दी के जनसंख्या अनुमान

किंग्सले डेविस		एस0 चन्द्रशेखर वर्ष	
वर्ष	जनसंख्या मिलियन में	वर्ष	जनसंख्या मिलियन में
300 ई0 पूर्व	100–140	1600	100
1600 ई0 पूर्व	100	1750	130
1800 ई0 पूर्व	120	1850	150
1834	130	1861	164
1845	130		
1849	175		
1867	194		
1871	255		

***Source :** Davis Kingslay : Population of India and Pakistan. Prinction University Press, 1950. P. 32 and Dr. J.P. Mishra : Demography P. 425*

प्राचीनकाल की जनसंख्या
किंग्सले डेविस के जनसंख्या सम्बन्धी अनुमान

पैमाना
OY अक्ष पर........जनसंख्या मिलियन में
OX अक्ष पर........वर्ष
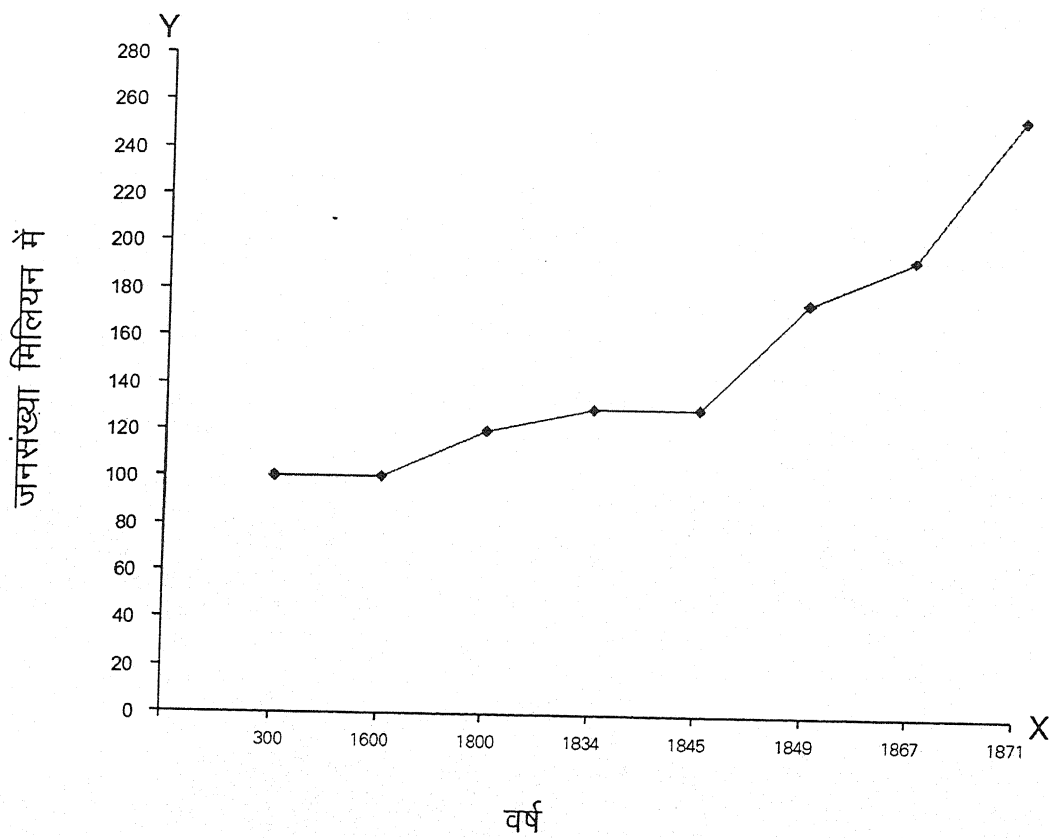
ग्राफ 1.1 (A)

प्राचीनकाल की जनसंख्या
एस० चन्द्रशेखर के जनसंख्या सम्बन्धी अनुमान
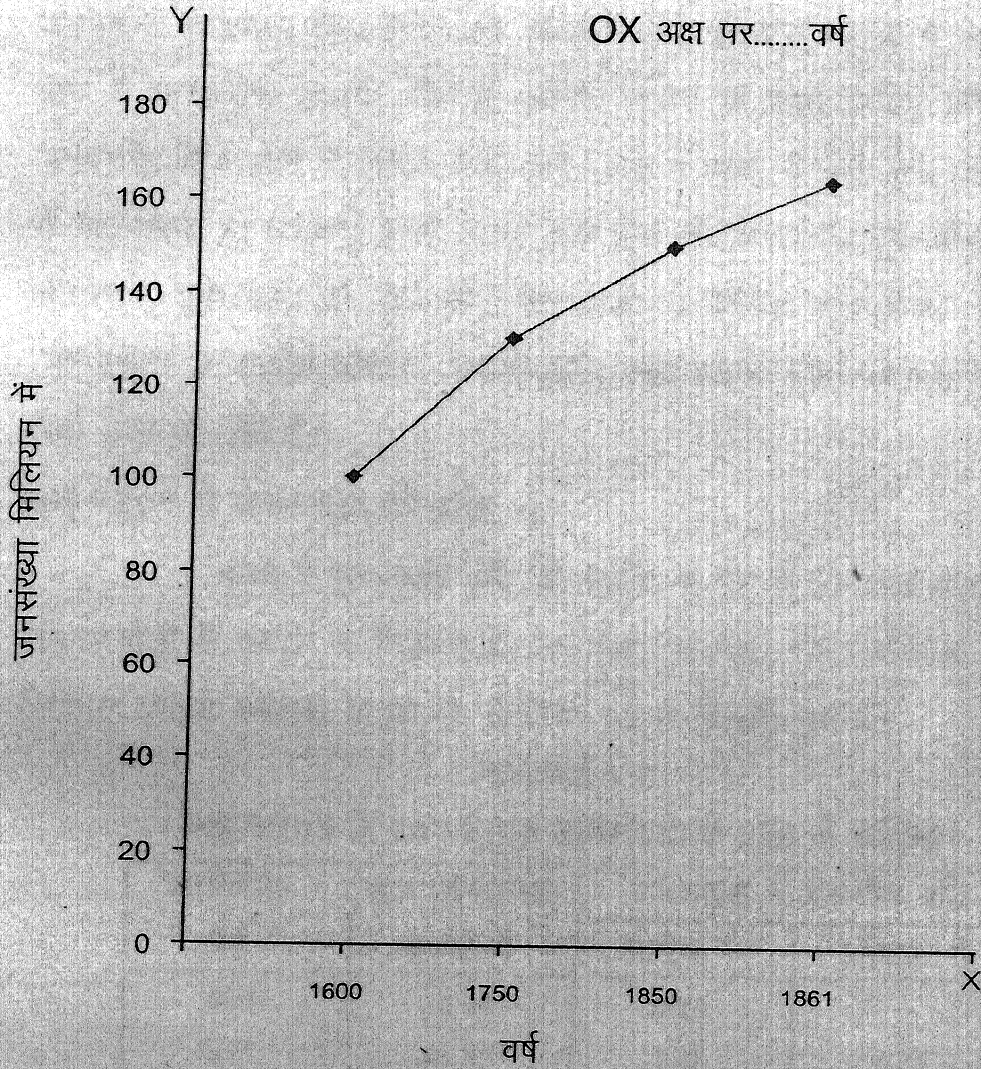
ग्राफ 1.1 (B)

तालिका 1.1 एवं ग्राफ 1.1(A) व ग्राफ 1.1 (B)से स्पष्ट है कि भारत की जनसंख्या 300 ई0 पूर्व से लेकर सत्रहवीं सदी के प्रारम्भ तक प्रायः स्थिर थी, जिसका कारण ऊँची जन्मदर एवं ऊँची मृत्यु दर थी। सन् 1822 में सर थॉमस मुनरों ने मद्रास प्रेसीडेन्सी की जनगणना करायी। इससे पूर्व सन् 1802, 1813 एवं 1815 में भी जनगणना के प्रयास किये गये। सन् 1849 में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भारत के उस भाग में जनगणना करायी, जिसमें उसका शासन था तथा प्रत्येक पांच वर्ष बाद जनगणना किये जाने के सुझाव रखे। सन् 1872 में भारत में प्रथम बार व्यवस्थित रूप से जनगणना हुई। किन्तु इसमें न तो सारे देश की जनगणना हुई और न ही यह जनगणना एक साथ हो पाई थी। सन् 1881 में ब्रिटिश शासनकाल में सर्वप्रथम ''जनगणना'' शासकीय स्तर पर करायी गयी, तबसे प्रत्येक दसवें वर्ष देश में जनगणना होती चली आ रही है।

सन् १९०१ से जनसंख्या की वृद्धि –:

भारत में जनसंख्या वृद्धि की प्रवृत्ति के बारे में जानकारी हमकों विभिन्न जनगणनाओं के माध्यम से ही होती है। सन् 1901 से 2001 तक जनसंख्या में वृद्धि के निश्चित आँकड़े उपलब्ध है जो कि तालिका 1.2 में दिखाये गये है।

तालिका १.२

सन् १९०१ से २००१ तक जनसंख्या में वृद्धि के आँकडे

जनगणना वर्ष	कुल जनसंख्या करोड़ में	जनसंख्या में दशकीय वृद्धि	
		करोड़ में	प्रतिशत में
1901	23.84	0.24	–
1911	25.21	1.37	5.75
1921	25.13	0.08	–0.31
1931	27.90	2.77	11.00
1941	31.87	3.97	14.22
1951	36.11	4.24	13.31
1961	43.92	7.81	21.51
1971	54.82	10.90	24.80
1981	68.33	13.51	24.66
1991	84.63	16.30	23.85
2001	102.70	18.06	21.34

Source : *Census of India 2001, Series-1, Paper-1 P. 34*

तालिका 1.2 में दिये गये आंकड़ो से स्पष्ट है कि सन् 1921 तक भारत में जनसंख्या में अनिश्चित वृद्धि एवं ह्यास होता रहा। जहां 1901 से 1911 के दौरान जनसंख्या बढ़ी, वही अगले दशक 1911–1921 के दौरान इसमें गिरावट आयी। इसके अतिरिक्त 1921 से पहले जनसंख्या वृद्धि की दर भी बहुत कम थी।

परन्तु 1921 के बाद से वृद्धि के दृष्टिकोण से परिस्थितियां एकदम बदल गयी। यही कारण है कि 1921 के वर्ष को ''महान विभाजन'' वर्ष कहा जाता है, क्योंकि 1911–1921 के दशक में जनसंख्या की वृद्धि ऋणात्मक थी। 1921–31 के दौरान जनसंख्या में 2.77 करोड़ की वृद्धि हुई। 1931–1941 के दौरान वृद्धि की यह प्रवृत्ति आगे आने वाले दशकों में भी जारी रही है।

स्वतन्त्रता के पश्चात् जनसंख्या में वृद्धि की प्रवृत्ति तीव्र गति से बढ़ने लगी। उदाहरण के लिये 1951–61 के दशक में जनसंख्या में 7.81 करोड़ अर्थात् 21.51 प्रतिशत की वृद्धि हुयी जो कि पिछले दशक की तुलना में बहुत अधिक थी।

1961–1971 के दशक में जनसंख्या में और भी अधिक भारी मात्रा में 10.90 करोड़ अर्थात् 24.80 प्रतिशत की वृद्धि हुयी जो कि जापान के कुल जनसंख्या के बराबर ही थी। इसी प्रकार 1971–81 के दशक में जनसंख्या में 13.51 करोड़ की वृद्धि हुयी, जो कि तत्कालीन यूनाइटेड किंग्डम की जनसंख्या के दुगने से भी अधिक थी। सन् 1981–91 के दशक में जनसंख्या में 16.30 करोड़ की वृद्धि हुयी। वृद्धि का यह सिलसिला 1991–2001 के दशक में भी जारी रहा और जनसंख्या में 18.06 करोड़ की वृद्धि हुयी।

वार्षिक आधार पर भारत में जनसंख्या में होने वाली वृद्धि लगभग 1.95 प्रतिशत रही जो कि ब्राजील की जनसंख्या के बराबर है। पिछले दशकों की तुलना में स्वतंत्रता के बाद की यह वृद्धि बहुत अधिक है। यदि वृद्धि की दर को प्रतिवर्ष प्रतिशत में व्यक्त किया जाय तो 1981–91 के दौरान 1.04 प्रतिशत प्रतिवर्ष थी। इस प्रकार समय के साथ–साथ वृद्धि की दर में वृद्धि की ही प्रवृत्ति मौजूद रही है। भारत में

जनसंख्या वृद्धि की यह दर विश्व के अनेक देशों में जनसंख्या वृद्धि की दर से बहुत अधिक रही है। यह अनुमान लगाये जाते है कि यदि भारत में जनसंख्या इसी गति से बढ़ती रही तो सन् 2025–50 के बीच कभी भी भारत की जनसंख्या चीन की जनसंख्या से अधिक हो सकती है। 1901–2001 तक भारत में जनसंख्या वृद्धि को ग्राफ 1.2 में दिखाया गया है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि भारत की जनसंख्या न केवल निरपेक्ष रूप से बहुत अधिक बढ़ी है बल्कि यह खतरनाक गति से बढ़ रही है जो कि देश के आर्थिक विकास में एक महत्वपूर्ण बाधा बनती जा रही है।

आर्थिक संसाधन के रूप में जनसंख्या का महत्व –:

किसी भी देश के आर्थिक विकास में मानव संसाधनों का अपना एक विशेष महत्व है। विभिन्न युगों में उभरने वाली विश्व की सभ्यताओं के निर्माण और पतन का श्रेय मानव को ही रहा है। विध्वंस और नव–निर्माण मानव जाति की कला–कृतियों के दो रूप है। मनुष्य विश्व के इतिहास का रचियता भी है और नायक भी। इसी प्रकार मानव संसाधन किसी देश के आर्थिक एवं औद्योगिक विकास का आधार है। यद्यपि किसी देश का आर्थिक विकास बहुत सीमा तक उस देश के प्राकृतिक साधनों और पूँजी की मात्रा पर निर्भर करता है परन्तु मानव संसाधन वह शक्ति है जो इन भौतिक साधनों को दिशा व गति प्रदान करती है। नये आविष्कार, गगन–चुम्बी भवनों व विशालकाय फैक्टरियों का निर्माण, पर्वतों का वृक्ष–छेदन, सागर पर विजय नदियों के जल को नियन्त्रित करने वाले बाँध और पृथ्वी के गर्भ से निकाली गयी विशाल खनिज सम्पदा, सब मानवीय प्रयासों और संकल्प शक्ति की देन है।

किसी भी देश के लिये उसकी जनसंख्या उसके आर्थिक विकास का "साधन" तथा "साध्य" दोनों होती है। समस्त उत्पादन का मूल साधन मनुष्य ही है। वही अपनी शारीरिक और बौद्धिक शक्ति तथा भौतिक साधनों का प्रयोग करके, नयी रीतियों और प्रतिक्रियाओं की खोज करके, उत्पादन की प्रक्रिया को जन्म देता है और

भारत में जनसंख्या वृद्धि की प्रवृत्ति

पैमाना

OY अक्ष पर........जनसंख्या करोड़ में

OX अक्ष पर........जनगणना वर्ष
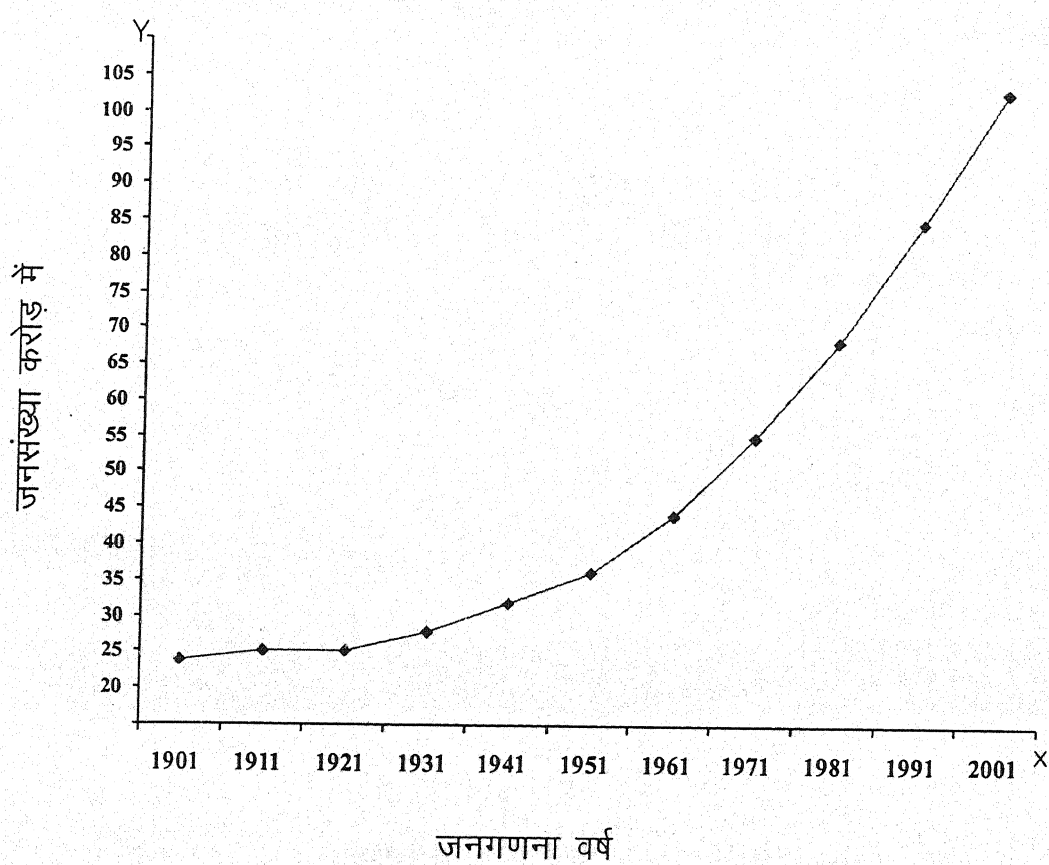
ग्राफ 1.2

आर्थिक विकास के लिये मार्ग प्रशस्त करता है। किसी देश के प्राकृितक साधन पर्याप्त हो तो भी वह देश गरीब ही रह सकता है, क्योंकि उसके जनसमूह पर्याप्त एवं कार्यकुशल न हो। प्रो0 पी0 एल0 रावत के शब्दों में, ''मनुष्य आर्थिक क्रियाओं का आदि तथा अन्त दोनों ही है।'' अतः जनसंख्या आर्थिक विकास के लिये आवश्यक श्रम की पूर्ति करती है। स्पष्ट है कि उत्पादन के एक साधन के रूप में मानव का महत्व सर्वोपरि है।

कई विकासशील देशों की जनसंख्या में तेजी से वृद्धि हो रही है तथा राष्ट्रीय आय में वृद्धि नहीं हो रही है जिससे प्रति व्यक्ति आय घटती जा रही है। यदि आर्थिक विकास की दर जनसंख्या वृद्धि दर से कम है तो प्रति व्यक्ति आय में ह्यास और इससे अधिक हो तो प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि होती है। यदि जनसंख्या स्थिर हो जाती है और आर्थिक विकास में वृद्धि होती है तो प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि होगी। राष्ट्रीय आय में वृद्धि होने पर श्रमिकों में अच्छे उपकरण, मशीने, शिक्षा, प्रशिक्षण प्रदान करने के उपयोग में लाया जा सकता है।

वस्तुओं तथा सेवाओं के बाजार का आकार भी बहुत कुछ जनसंख्या के आकार पर निर्भर करता है जो बदले में यह निश्चित करता है कि देश में कौन से उद्योग स्थापित किये जायेगें? विशिष्टीकरण का अंश क्या होगा ? तथा उत्पादन का पैमाना क्या होगा ? मौटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि जनसंख्या वृद्धि उपभोक्ताओं के रूप में वस्तुओं के लिये माँग पैदा करती है जिससे → बाजारों का विस्तार होता है → बचतों में वृद्धि होती है → उत्पादन के ढाँचे में विविधता आती है और फलस्वरूप → रोजगार के अवसर बढ़ जाते है। इस प्रकार जनसंख्या वृद्धि वस्तुओं की अतिरिक्त माँग का सृजन करके आर्थिक विकास को बल प्रदान करती है।

लेकिन मानव उत्पादन का साधन ही नहीं, वरन 'साध्य' भी है। मनुष्य जो उत्पादन करता है उसका उपभोग भी वही करता है। समस्त उत्पादन का एक मात्र उद्देश्य यही होता है कि मनुष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति की जाये। वास्तव में आर्थिक विकास का कोई महत्व नहीं है यदि उसका उद्देश्य मनुष्य के जीवन के स्तर

में वृद्धि करना न हो। इस प्रकार आर्थिक विकास की प्रक्रिया में मानव की भूमिका 'साधन' और 'साध्य' दोनों ही रूपों में महत्वपूर्ण है।

मानवीय संसाधन के महत्व और उसकी उपयोगिता पर प्रो0 ए0 मुखर्जी के इन शब्दों से पर्याप्त प्रकाश पड़ता है, जो 5 जुलाई 1966 के आर्थिक समीक्षा के अंक में पृष्ठ 15 पर व्यक्त है। ''किसी भी राष्ट्र की उन्नति मानवीय साधन संगठित करने की क्षमता पर निर्भर करती है। निःसन्देह किसी भी देश में जनशक्ति साधन राष्ट्र की भारी पूँजी मानी जाती है लेकिन इन साधनों का यदि समुचित उपयोग न हो और नये रोजगार के अवसर न उपलब्ध किये जाये, तो ये साधन देश के लिये भार–स्वरूप बन जाते है। राष्ट्रीय विकास के लिये अपनाई गई नीति में जनशक्ति आयोजन एक मूल तत्व है, फिर चाहे इसका उपयोग आर्थिक उन्नति के लिये आवश्यक कुशल कर्मचारी उपलब्ध कराने या लोगों को उत्पादन और सामाजिक दृष्टि से लाभप्रद रोजगार उपलब्ध कराने के लिये किया जाये। अधिकांश विकासोन्मुख देशों को विकास आयोजन के इस अहम् पहलू के प्रति कारगर दृष्टिकोण अपनाने की समस्या का सामना करना पड़ रहा है।

लोगों की कार्यकुशलता के प्रभावी उपयोग के द्वारा मानवीय साधनों का समुचित विकास आधुनिक ढंग से उन्नति करने का एक अभिन्न अंग है। राष्ट्र की सम्पत्ति, जनता के विकास और भौतिक साधनों के संग्रह पर निर्भर करती है। द्रुत गति से आर्थिक विकास के लिये भौतिक पूँजी और मानवीय पूँजी दोनों का तेजी से संचय होना चाहिये।

यदि जनसंख्या आर्थिक विकास का एक प्रभावी स्रोत है तो कुछ दशाओं में वह आर्थिक विकास की प्रमुख बाधा भी है। रिचार्ड गिल के अनुसार ''जनसंख्या वृद्धि का राष्ट्रीय उत्पादन तथा प्रति व्यक्ति आय पर अन्तिम प्रभाव धनात्मक, ऋणात्मक या तटस्थ होगा, यह इस बात पर निर्भर करेगा कि जनसंख्या वृद्धि का स्वरुप क्या है और वह किन दशाओं में हो रहा है।'' यदि जनसंख्या–वृद्धि उच्च जनन–क्षमता लिये है और

उसका प्रभाव उत्पादन आयु–वर्ग के लोगों की बजाय आश्रितों की संख्या को बढ़ाने वाला है तो इससे उत्पादकों के स्थान पर उपभोक्ताओं की संख्या अधिक होगी और कुल मिलाकर जनसंख्या –वृद्धि का प्रति व्यक्ति उत्पादन पर प्रभाव ऋणात्मक होगा। इसके विपरीत यदि जनसंख्या की आयु संरचना अनुकूल है तो इसका आर्थिक विकास पर धनात्मक प्रभाव पड़ेगा।

भारत के संदर्भ में तो जनसंख्या सम्बन्धी अध्ययन अत्यधिक महत्वपूर्ण एवं आवश्यक है क्योंकि जनसंख्या से सम्बन्धित परिस्थितियां बहुत जटिल हो चुकी है तथा यह आर्थिक विकास के मार्ग में बहुत बाधायें प्रस्तुत कर रही है।

भारत में आज आर्थिक विकास एवं जनसंख्या वृद्धि के मध्य एक ऐसा असन्तुलन पैदा हो गया जो न केवल यहाँ कि आर्थिक वृद्धि को बल्कि सामाजिक एवं सांस्कृतिक उन्नति को भी प्रतिकूल रूप में प्रभावित कर रहा है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि भारत में आज जनसंख्या का स्तर उस स्तर से बहुत ऊँचा हो चुका है, जिसे यहाँ का आर्थिक विकास उचित ढंग से पोषित नहीं कर सकता है। यही कारण है कि पिछले कुछ दशकों से हमारे देश में जो कुछ भी उपलब्धियां प्राप्त की गयी है वह प्रति व्यक्ति उपलब्धता के मानक पर रखे जाने पर हमें निराशा ही प्रदान करती है। अतः वर्तमान परिवेश में जनसंख्या समस्या का ज्ञान एवं उसके लिये ठोस उपायों को खोजा जाना अत्यधिक महत्वपूर्ण आवश्यकता बन चुकी है।

जनसंख्या राष्ट्र के लिये सम्पत्ति एवं दायित्व –:

आर्थिक दृष्टिकोण से किसी भी समाज के लिये जनसंख्या आर्थिक सम्पत्ति ही है और समाज का दायित्व भी है। वास्तव में किसी भी देश को आर्थिक विकास में मानव संसाधन का अपना एक विशेष महत्व है और जनशक्ति राष्ट्र की सम्पदा है। जब जनशक्ति का उपयोग योजनाबद्ध तथा प्रभावकारी ढंग से किया जाता है तभी देश का तीव्र आर्थिक विकास सम्भव होता है। दूसरी ओर मनुष्य ही संसाधनों का उपयोग करता है। बिना मानव के पृथ्वी संसाधन विहीन है। जैसे–जैसे मनुष्य के

प्राविधिक ज्ञान का विकास होता जाता है वैसे ही मानव में संसाधनों को बढ़ाने और नये संसाधन उत्पन्न करने की क्षमता में वृद्धि होती जाती है। "मनुष्य का ज्ञान व श्रम ही सबसे बड़ा संसाधन है।" (जैलिस्की)

इस विचार को मानने वालो में प्रो. हेन्सन, आर्थर लुइस, कोलिन क्लार्क, हर्षमैन के नाम उल्लेखनीय है। प्रो0 हेक्सन के अनुसार "जनसंख्या–वृद्धि आर्थिक विकास की एक पूर्व शर्त है।" बढ़ती हुई जनसंख्या बाजारों का विस्तार करती है जिससे निवेश प्रेरणा को बल मिलता है और फलतः उत्पादन तथा रोजगार बढ़ने लगता है। अतः जनसंख्या–वृद्धि किसी देश के आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करती है।

वास्तव में, आर्थिक विकास प्राकृतिक साधनों, श्रम शक्ति, पूँजी तथा तकनीकि का फलन है। परन्तु इसमें श्रम शक्ति सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटक है। क्योंकि विकास–प्रक्रिया में वही एक मात्र प्रावैगिक साधन है।

साइमन कुजनेटस का भी कहना है कि "अन्य बातें समान रहने पर जनसंख्या की प्रत्येक वृद्धि श्रम–शक्ति को बढ़ाती है। हाँ! इसका श्रम–शक्ति के लिये निश्चित योगदान इस बात पर निर्भर करेगा कि क्या जनसंख्या–वृद्धि, मृत्यु–दर के गिरने के कारण अथवा शुद्ध देशान्तरवास के कारण या जन्म–दर में वृद्धि के कारण हुई है।" इस प्रकार कार्यशील श्रम–शक्ति की पूर्ति के स्रोत के रूप में, जनसंख्या–वृद्धि आर्थिक विकास का उत्प्रेरक है। और इसका प्रभाव अन्ततः उत्पादन की मात्रा को बढ़ाने का होता है।

जनसंख्या की वृद्धि में उत्पादन की मात्रा बढ़ती है वशर्ते कि जनसंख्या का आकार देश में उपलब्ध पूँजी व भूमि की तुलना में छोटा है। कहने का अभिप्राय यह है कि जनसंख्या–वृद्धि और उत्पादन–वृद्धि में धनात्मक सह–सम्बन्ध है। जनसंख्या में होने वाली वृद्धि, गहन श्रम–विभाजन और विशिष्टीकरण को बढ़ावा देकर श्रम की उत्पादकता में वृद्धि कर देती है।

रागनर नर्क्से का मत कि अतिरिक्त श्रम–शक्ति एक प्रकार की अदृश्य बचत है और अर्द्ध–बेरोजगारी के रूप में इन अदृश्य सम्भाव्य बचतों को पूँजी–निर्माण के लिये प्रयोग किया जा सकता है। इस प्रकार अतिरिक्त श्रम–शक्ति, पूँजी निर्माण का एक सुलभ साधन सिद्ध होता है।

किसी देश की श्रम–शक्ति का मुख्य स्रोत जनसंख्या है। अतः यदि देश में जनसंख्या का आकार छोटा है, तो इसका अर्थ यह है कि जनसंख्या देश के उत्पादक साधनों के पूर्ण शोषण के लिये अपर्याप्त है। यही कारण है कि उन्नत देशों के आर्थिक विकास में जनसंख्या एक सहयोगी साधन रही है।

जनसंख्या वृद्धि मानव पूँजी निर्माण में भी सहायक है। उपलब्ध जनशक्ति के ज्ञान में वृद्धि करके उसकी कुशलताओं एवं योग्यताओं में सुधार करने का प्रयास किया जाता है तो उससे मानव पूँजी का निर्माण होता है। जिसका अन्तिम प्रभाव प्रति व्यक्ति उत्पादकता को बढ़ाकर अर्थव्यवस्था की विकास दर को ऊँचा करने का होता है। संक्षेप में नये ज्ञान की खोज एवं उसके विकास में वृद्धिशील जनसंख्या का सृजनात्मक मस्तिष्कों का सृजन करती है जिससे कौशल निर्माण को बल मिलता है। नये ज्ञान का भण्डार बढ़ता है, और फलस्वरूप राष्ट्रीय उत्पादन बढ़ने लगता है।

प्रत्येक देश का उत्पादन स्तर, आर्थिक विकास की दर, राष्ट्रीय तथा प्रति व्यक्ति आय, देश में उत्पादक क्रियाओं का संचालन, रहन–सहन का स्तर, आदि सभी दशायें उस देश की जनसंख्या के आकार, गठन एवं वितरण पर निर्भर करती है। यद्यपि आर्थिक विकास में प्राकृतिक संसाधनों तथा पूँजी की मात्रा का भी विशिष्ट योगदान होता है परन्तु ये आर्थिक विकास के निर्जीव साधन है। मानव ही वह शक्ति है जो इन संसाधनों को अपनी कार्य–कुशलता तथा बौद्धिक दक्षता द्वारा वांछित दिशा में गतिशील कर इनका अनुकूलतम उपयोग करती है तथा विकास का मार्ग प्रशस्त करती है।

मानवीय श्रम तथा उसकी तकनीकि निपुणता भौतिक संसाधनों को उपयोगी वस्तुओं से बदलती है। अतः मानवीय श्रम तथा निपुणता भी एक प्रमुख संसाधन है भारत जैसे विशाल जनसंख्या वाले देशों में जनशक्ति का नियोजन त्वरित आर्थिक विकास के लिये किया जा सकता है। अतः इसे प्राथमिकता दी जानी चाहिये। किसी भी प्रदेश के लिये उसकी जनसंख्या आर्थिक विकास का 'साधन' और 'साध्य'

दोनों होती है। मानवीय श्रम तथा तकनीकि कुशलता समस्त उत्पादनों का मूल आधार है।

समस्त मनुष्यों के लिये उचित स्वास्थ्य व्यवस्था एवं चिकित्सा व्यवस्था का प्रबन्ध भी समाज का ही दायित्व है और जनसंख्या में तीव्र गति से होने वाली वृद्धि के साथ समाज के इस दायित्व में भी उतनी ही तीव्र गति से वृद्धि होती जाती है।

जनसंख्या में होने वाली तीव्र वृद्धि जनसंख्या एवं खाद्य पूर्ति में असन्तुलन पैदा कर देती है और इस असन्तुलन को दूर करना समस्त जनता को सन्तुलित आहार पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध कराना भी हमारे समाज का ही उत्तरदायित्व बन जाता है। इसके अतिरिक्त बढ़ती हुई जनसंख्या के लिये पर्याप्त मात्रा में आवास, वस्त्र एवं मनोरंजन के साधनों की व्यवस्था करना भी देश और समाज का ही उत्तरदायित्व है। जिस समाज में जनसंख्या जितनी कम होगी तथा जनसंख्या की वृद्धि की गति जितनी कम होगी वहाँ समाज के उपर्युक्त वर्णित दायित्वों में भी कम तीव्र गति से वृद्धि होती है और तब इसकी सम्भावना अधिक रहती है कि समाज अपने इन दायित्वों का सफलतापूर्वक निर्वाह कर सके। आज हमारे देश में जनसंख्या वृद्धि की खतरनाक गति समाज के दायित्वों में इतनी तीव्र गति से वृद्धि कर रही है कि हर ओर एक असन्तुलन एवं अव्यवस्था सी उत्पन्न हो गई है। जिससे समाज न केवल अपने दायित्वों का ठीक से निर्वाह कर पा रहा है, बल्कि उत्पत्ति के एक संसाधन के रूप में कार्यशील जनसंख्या का पूर्ण उपयोग कर देश का विकास भी नहीं कर पा रहा।

प्रो0 विलार्ड, प्रो0 मायर, सिंगर का मानना है कि जनसंख्या–वृद्धि आर्थिक विकास की एक प्रमुख बाधा है। प्रो0 सिंगर का कहना है कि ''जनसंख्या–वृद्धि आर्थिक विकास की दर पर ऋणात्मक प्रभाव डालती है, बचत–दर को घटाती है और विनियोग व उत्पादन को कम करती है।'' प्रो0 मायर के मतानुसार ''कम विकसित देशों में तीव्र जन–वृद्धि पूँजी का विस्तार करने वाले निवेशों और नव प्रवर्तनों को प्रोत्साहित नहीं करती, बल्कि पूँजी–संचय की दर को कम करती है, निस्सारक उद्योगों में लागतों को बढ़ाती है, अर्द्ध बेरोजगारी के आकार में वृद्धि करती है, और काफी हद तक पूँजी को शिशुओं के भरण–पोषण की ओर ले जाती है। जो उत्पादक–आयु तक पहुँचने से पहले ही मर जाते है। इस प्रकार राष्ट्रीय संसाधन पूँजी निर्माण में न जाकर जनसंख्या निर्माण में स्वाहा हो जाते है।

भारत में जनसंख्या की संरचना

भारत की जनसंख्या की संरचना का अध्ययन अनेक आधारों पर किया जा सकता है, यथा—लिंग, आयु, व्यावसायिक वितरण, शैक्षिक, ग्रामीण एवं शहरी जनसंख्या आदि। यहाँ भारत की जनसंख्या की संरचना का अध्ययन उक्त आधारों पर करते है —

१. जनसंख्या का विभिन्न राज्यों में असमान वितरण —:

देश की जनसंख्या देश के विभिन्न राज्यों के मध्य अत्यधिक असमान रूप से बटी हुई है जो तालिका 1.3 तथा चित्र 1.1 से स्पष्ट है —

तालिका १.३

विभिन्न राज्यों में जनसंख्या का वितरण वर्ष २००१

क्रम	2001 में राज्य/केन्द्र शासित प्रदेश	जनसंख्या करोड़ में	कुल जनसंख्या में प्रतिशत
1.	उत्तर प्रदेश	16.60	16.17
2.	महाराष्ट्र	9.67	9.42
3.	बिहार	8.28	8.07
4.	पं० बंगाल	8.02	7.81
5.	आन्ध्र प्रदेश	7.57	7.37
6.	तमिलनाडु	6.21	6.05
7.	मध्य प्रदेश	6.04	5.88
8.	राजस्थान	5.65	5.50
9.	कर्नाटक	5.27	5.14
10.	गुजरात	5.06	4.93
11.	उड़ीसा	3.67	3.57
12.	केरल	3.18	3.10
13.	झारखण्ड	2.69	2.62
14.	असम	2.66	2.59
15.	पंजाब	2.43	2.37
16.	हरियाणा	2.11	2.05
17.	छत्तीसगढ़	2.08	2.03
18.	दिल्ली*	1.38	1.34
19.	जम्मू व कश्मीर	1.01	.98
20.	उत्तरांचल	.84	.83
21.	हिमाचल प्रदेश	.61	.59
22.	त्रिपुरा	.32	.31
23.	मणिपुर	.24	.23
24.	मेघालय	.23	.22
25.	नागालैण्ड	.19	.19
26.	गोवा	.13	.13
27.	अरूणाचल प्रदेश	.11	.11
28.	पाण्डिचेरी*	.09	.09
29.	चण्डीगढ़*	.09	.09
30.	मिजोरम	.08	.09
31.	सिक्किम	.05	.05
32.	अण्डमान व निकोबार द्वीप समूह*	.03	.03
33.	दादर व नगर हवेली*	.02	.02
34.	दमन व द्वीप*	.01	.02
35.	लक्षद्वीप*	.006	.01

Source : *Census of India 2001, Series 1, Paper 1, Page-37*

भारत

विभिन्न राज्यों में जनसंख्या का असमान वितरण (करोड़ और प्रतिशत)

(राज्य एवं केन्द्रशासित प्रदेश)

२००१
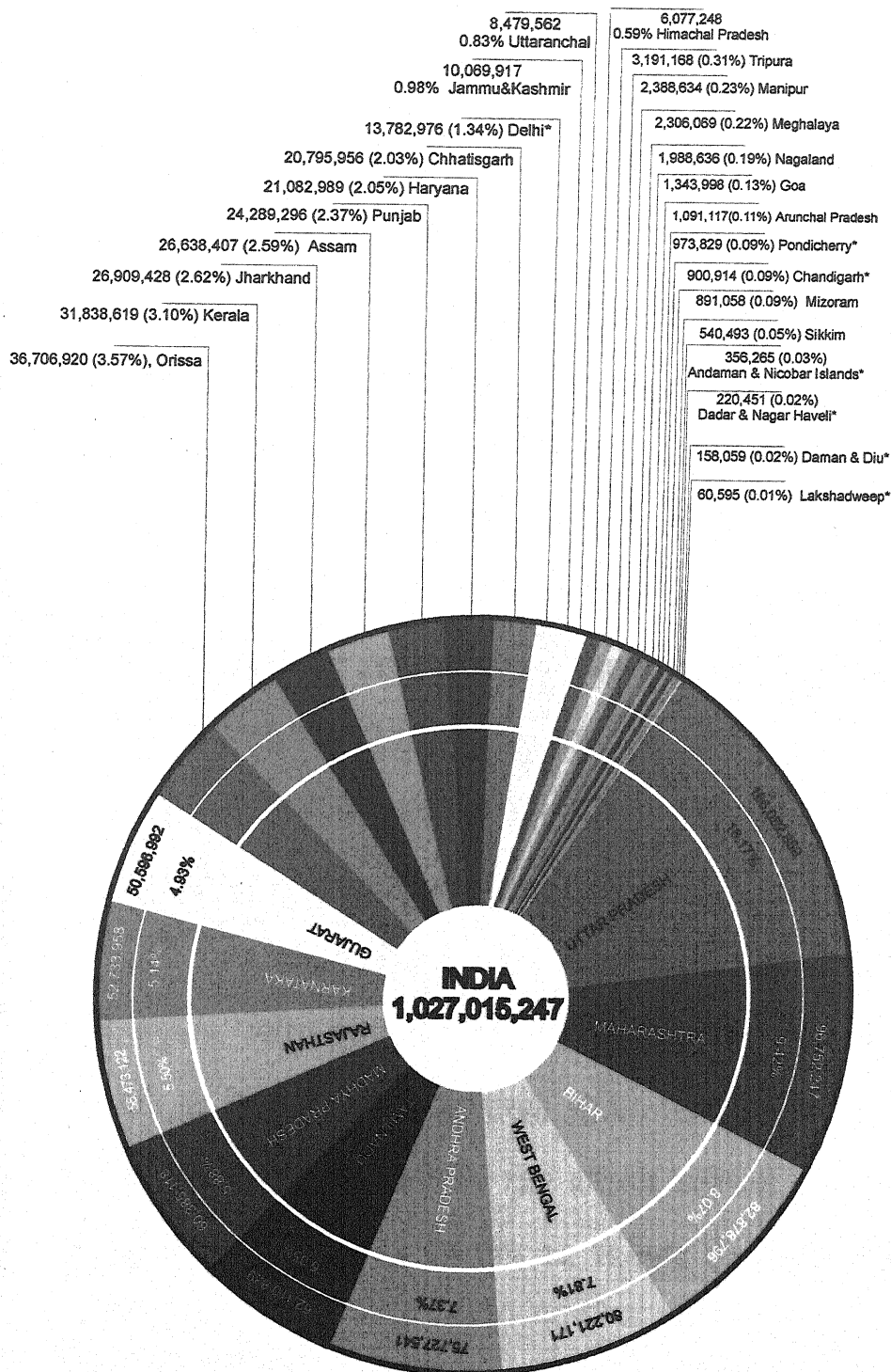
चित्र 1.1

उपर्युक्त तालिका 1.3 से स्पष्ट है कि भारत की जनगणना 1991–2001 के अनुसार विभाजन के बाबजूद उत्तर प्रदेश देश का सर्वाधिक जनसंख्या वाला प्रदेश है। इसकी जनंसख्या 16.6 करोड़ है जो कि पाकिस्तान की जनसंख्या से 1 करोड़ से अधिक है। भारत के 19 राज्य ऐसे है जिनकी जनसंख्या 1 करोड़ से अधिक है दूसरी तरफ 8 राज्य एवं केन्द्रशासित क्षेत्र ऐसे है जिनकी जनसंख्या 10 लाख से कम है। लगभग आधी जनसंख्या देश के 5 राज्यों –उत्तर प्रदेश (16.6) करोड़, महाराष्ट्र (9.6) करोड़, बिहार (8.2) करोड़, पं0 बंगाल (8.02) करोड़ और आन्ध्र प्रदेश में (7.57) करोड़ निवास करती है। जबकि सिक्किम एवं मिजोरम जैसे राज्यों में यह केवल क्रमशः (.05) करोड़ एवं (.08) करोड़ है। संघ शासित प्रदेश में सबसे अधिक जनसंख्या दिल्ली में (1.38) करोड़ और सबसे कम जनसंख्या लक्षद्वीप में (.006) करोड़ है। जनसंख्या में वृद्धि दर के दृष्टिकोण से भी विभिन्न राज्यों में बड़ी असमानतायें रही है। उदाहरण के लिये 1991–2001 की जनगणना के अनुसार दस वर्षो में नागालैण्ड की जनसंख्या में सबसे अधिक वृद्धि हुयी है और दूसरे स्थान पर सिक्किम है। प्रतिशत के रूप में जबकि समस्त भारत में औसत वृद्धि 21.34 प्रतिशत हुई तब नागालैण्ड और सिक्किम में क्रमशः(64.41) प्रतिशत एवं (32.98) की वृद्धि हुयी। जबकि इन दस वर्षों में केरल (9.42) प्रतिशत की जनसंख्या में सबसे कम वृद्धि हुई और तमिलनाडु (11.19) प्रतिशत दूसरे स्थान पर है।

२. ग्रामीण एवं शहरी जनसंख्या –:

सम्पूर्ण इतिहास में भारत प्रमुख रूप से ग्रामों का देश रहा है। प्रो0 ब्लाश के अनुसार, ''भारत ग्रामों का एक अति उत्कृष्ट देश है।'' भारतीय जनसंख्या दो भागों में बटी हुई है। प्रथम ग्रामीण जनसंख्या, द्वितीय शहरी जनसंख्या। 2001 की जनगणना के अनुसार देश की जनसंख्या का 72.2 प्रतिशत ग्रामीण है जबकि 27.8 प्रतिशत शहरी जनसंख्या है। तालिका 1.4 एवं चित्र 1.2 से स्पष्ट है।

तालिका १.४
ग्रामीण एवं शहरी जनसंख्या का प्रतिशत
कुल जनसंख्या का प्रतिशत

वर्ष	ग्रामीण जनसंख्या	शहरी जनसंख्या
1951	82.7	17.3
1961	82.0	18.0
1971	80.1	19.9
1981	76.7	23.3
1991	74.3	25.7
2001	72.2	27.8

***स्रोत** :– इकनॉमिक सर्वे 2001–02*

उपर्युक्त तालिका 1.4 से स्पष्ट है कि भारत में जनसंख्या वृद्धि एवं आर्थिक प्रगति में सुधार के साथ–साथ शहरीय जनसंख्या में भी क्रमशः वृद्धि होती जा रही है। उदाहरण के लिये 1951 में कुल जनसंख्या का 82.7 प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्रों एवं 17.3 प्रतिशत शहरी, 1962 में 62 प्रतिशत ग्रामीण एवं 18 प्रतिशत शहरी तथा 2001 में 72.2 प्रतिशत ग्रामीण एवं 27.8 प्रतिशत शहरी जनसंख्या है।

वर्तमान समय में बढ़ता हुआ शहरीकरण आर्थिक प्रगति का द्योतक माना जाता है। स्वतन्त्रता के पूर्व जब भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास की गति बहुत धीमी थी तब यहां शहरीकरण भी बहुत धीमी गति से हो रहा था। नियोजन काल में जैसे–जैसे देश में शहरी जनसंख्या बढ़ती गयी। आज विश्व के अन्य देशों की ही भांति भारत में भी शहरीकरण बढ़ रहा है तथा जनसंख्या निरन्तर गांवों से शहर की तरफ प्रवाहित होती जा रही है। गाँव में शहर की ओर पलायन को गति प्रदान करने वाले प्रमुख कारक है –ग्रामीण जनसंख्या का कृषि पर बढ़ता दबाव, कुटीर उद्योग का पतन, औद्योगीकरण तथा उद्योगों का नगरों में केन्द्रित होना, आधुनिक शिक्षा पद्धति नागरिक सुविधायें एवं सास्कृतिक कारण एवं मनौवैज्ञानिक कारण इत्यादि। इस बढ़ते हुये

ग्रामीण एवं शहरी जनसंख्या

पैमाना :

OY अक्ष पर........ग्रामीण एवं शहरी जनसंख्या का प्रतिशत

OX अक्ष पर........वर्ष
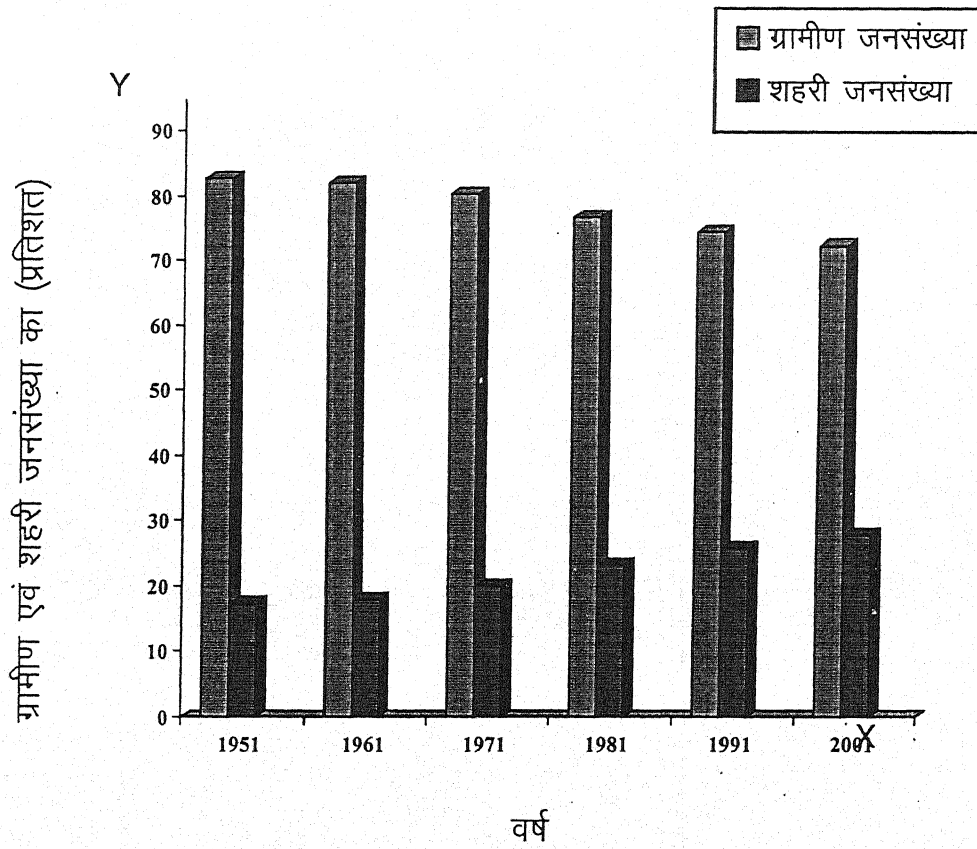
चित्र 1.2

शहरीकरण में वर्तमान में बहुत सी समस्याओं को जन्म दिया है जैसे यातायात की समस्या, सुरक्षा तथा कल्याण की समस्या, मनोरंजन की समस्या आदि।

कुछ विद्वानों की राय है कि भारत में शहरीकरण आवश्यकता से अधिक है। डेविस एवं गोल्डन द्वारा तथा यूनेस्को की एक रिपोर्ट में भी यही राय व्यक्त की गयी है। ऐसा समझा जाता है कि पाश्चात्य देशों में शहरीकरण एवं औद्योगीकरण साथ–साथ हुआ, जबकि भारत में शहरीकरण तो हुआ किन्तु उसके साथ औद्योगीकरण नहीं हुआ है।

शहरी जनसंख्या का राज्यवार वितरण

भारत के विभिन्न राज्यों में शहरी जनसंख्या का वितरण बहुत असमान है। कुछ प्रदेश ऐसे है जिनमें शहरी जनसंख्या का प्रतिशत समस्त देश के शहरी जनसंख्या के प्रतिशत से ऊँचा है जबकि देश में कुछ राज्य ऐसे है जिनमें शहरी जनसंख्या का प्रतिशत देश के औसत प्रतिशत से काफी नीचा है।

गोवा राज्य का सर्वाधिक शहरीकरण हुआ जिसकी 49.7 प्रतिशत जनसंख्या शहरों में रहती है यह जनसंख्या पूरे देश की जनसंख्या का .12 प्रतिशत है। अन्य राज्य जो राष्ट्रीय औसत से ऊपर है उनके नाम है मिजोरम, तमिलनाडु, महाराष्ट्र, गुजरात, कर्नाटक, पंजाब एवं हरियाणा जो न्यूनतम शहरीकरण की सीमा में आते है ऐसे राज्य हिमाचल प्रदेश, बिहार, सिक्किम एवं असम है राज्यवार शहरीकरण तालिका 1.5 में प्रदर्शित किया गया है।

तालिका १.५
शहरी जनसंख्या की दृष्टि से राज्यों का स्थान
कुल जनसंख्या का प्रतिशत

क्षेत्र	कुल जनसंख्या करोड़	कुल जनसंख्या में राज्य जनसंख्या का प्रतिशत	शहरी जनसंख्या करोड़	कुल जनसंख्या में शहरी जनसंख्या का प्रतिशत
भारत	102.70	100	–	22.78
राज्य				
गोवा	.13	.12	.06	49.7
मिजोरम	.08	.07	.04	49.5
तमिलनाडु	6.21	6.04	2.72	43.8
महाराष्ट्र	9.07	9.41	4.10	42.4
गुजरात	5.05	4.91	1.88	37.3

कर्नाटक	5.27	5.13	1.79	33.9
पंजाब	2.42	2.35	.82	33.9
हरियाणा	2.10	2.04	.61	29.0
आन्ध्र प्रदेश	7.57	7.37	2.05	27.0
मध्य प्रदेश	6.03	5.87	1.61	26.6
केरल	3.18	3.09	.82	25.9
उत्तरांचल	.84	.81	.21	25.5
जम्मू व कश्मीर	1.01	.98	.25	24.8
मणिपुर	.23	.22	.65	23.8
राजस्थान	5.64	5.49	1.32	23.3
झारखण्ड	2.64	2.61	.59	22.2
उत्तरप्रदेश	16.60	16.16	3.49	20.7
अरुणाचंल प्रदेश	.10	.09	.02	20.4
छत्तीसगढ़	2.07	2.01	.41	20.0
मेघालय	.23	.22	.04	19.6
नागालैण्ड	.19	.18	.03	17.7
त्रिपुरा	.31	.30	.05	17.0
उड़ीसा	3.67	3.57	.54	14.9
असम	2.66	2.59	.33	12.7
सिक्किम	.05	.97	.006	11.1
बिहार	8.28	8.06	.86	10.4
हिमाचंल प्रदेश	.60	.58	.05	9.8
संघशासित प्रदेश				
दिल्ली*	1.37	1.33	1.28	93.0
चण्डीगढ़*	.09	.08	.08	89.7
पाण्डिचेरी*	.09	.08	.06	66.5
लक्षद्वीप*	.006	.005	.002	44.4
दमन व द्वीप*	.01	.009	.005	36.2
अण्डमान निकोबार द्वीप समूह*	.03	.02	.01	32.6
दादरा व नगर हवेली*	.02	.01	.005	22.8

स्रोत : *भारतीय अर्थव्यवस्था एक झलक : अरुणेश सिंह पृष्ठ 2.21*

३. लिंग संरचना -:

मानव जनसंख्या की लिंग रचना एक ऐसी आधार भूत विशेषता है जो किसी भी प्रकार के जनांकिकीय विश्लेषण के लिए अत्यन्त आवश्यक है। लिंग संरचना में परिवर्तन किसी भी समाज के सामाजार्थिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों को भलीभांति दर्शाता है। लिंगानुपात का अर्थ प्रति 1000 पुरूषों में महिलाओं की संख्या से है। यह एक ऐसा सामाजिक सूचकांक है जो किसी दिये हुये समय में किसी समाज में महिला –पुरुष के मध्य समानता के स्तर को दर्शाता है।

स्त्री और पुरूषों के अनुपात की दृष्टि से भारत की स्थिति अन्य देशों में बहुत भिन्न है। अन्य देशों में पुरूषों की अपेक्षा स्त्रियों की संख्या अधिक है। भारत की जनसंख्या की एक महत्वपूर्ण विशेषता लिंगानुपात अथवा लिंग संरचना का पुरुषों की ओर झुकाव है जहाँ विश्व के अधिकांश देशों में महिला आधिक्य है, भारत में पुरूषाधिक्य है। कुछ प्रमुख राज्यों में लिंगानुपात तालिका 1.6 एवं मानचित्र 1.1 से स्पष्ट है।

तालिका १.६
प्रमुख राज्यों में लिंगानुपात की प्रवृत्ति

राज्य/केन्द्र शासित प्रदेश	1901	1911	1921	1931	1941	1951	1961	1971	1981	1991	2001
आन्ध्र प्रदेश	0985	992	993	987	980	986	981	977	975	972	978
असम	914	915	896	874	875	868	869	896	900	925	932
बिहार	1054	1044	1016	994	996	990	990	954	947	907	921
केरल	1004	1008	1011	1022	1027	1028	1022	1016	1034	1036	1058
उड़ीसा	1037	1056	1086	1067	1053	1022	1001	988	982	971	972
हरियाणा	867	835	844	844	869	871	868	867	877	865	861
तमिलनाडु	1044	1042	1029	1027	1012	1007	992	978	977	974	986
मणिपुर	1037	1029	1041	1065	1055	1036	1015	980	972	958	978
पंजाब	832	780	799	815	836	844	854	865	886	882	874
उत्तरप्रदेश	937	915	909	904	907	910	909	879	886	879	898
दादर एवं नागर हवेली	960	967	940	911	925	946	963	1007	974	952	811
अण्डमान व निकोबार द्वीप समूह	318	352	303	495	574	625	617	644	761	818	846
दिल्ली	862	773	733	722	715	768	785	801	810	827	821
भारत	972	964	955	950	945	946	941	930	934	927	933
सिक्किम	916	951	970	967	920	907	904	863	836	878	875
जम्मू व कश्मीर	882	876	870	865	869	873	878	878	953	896	900
पाण्डिचेरी	–	–	–	–	–	–	–	–	–	979	1001

***स्रोत** – भारतीय अर्थव्यवस्था जे.पी. मिश्रा जनांकिकी पृष्ठ 454 प्रतियोगिता दर्पण पृष्ठ 53*
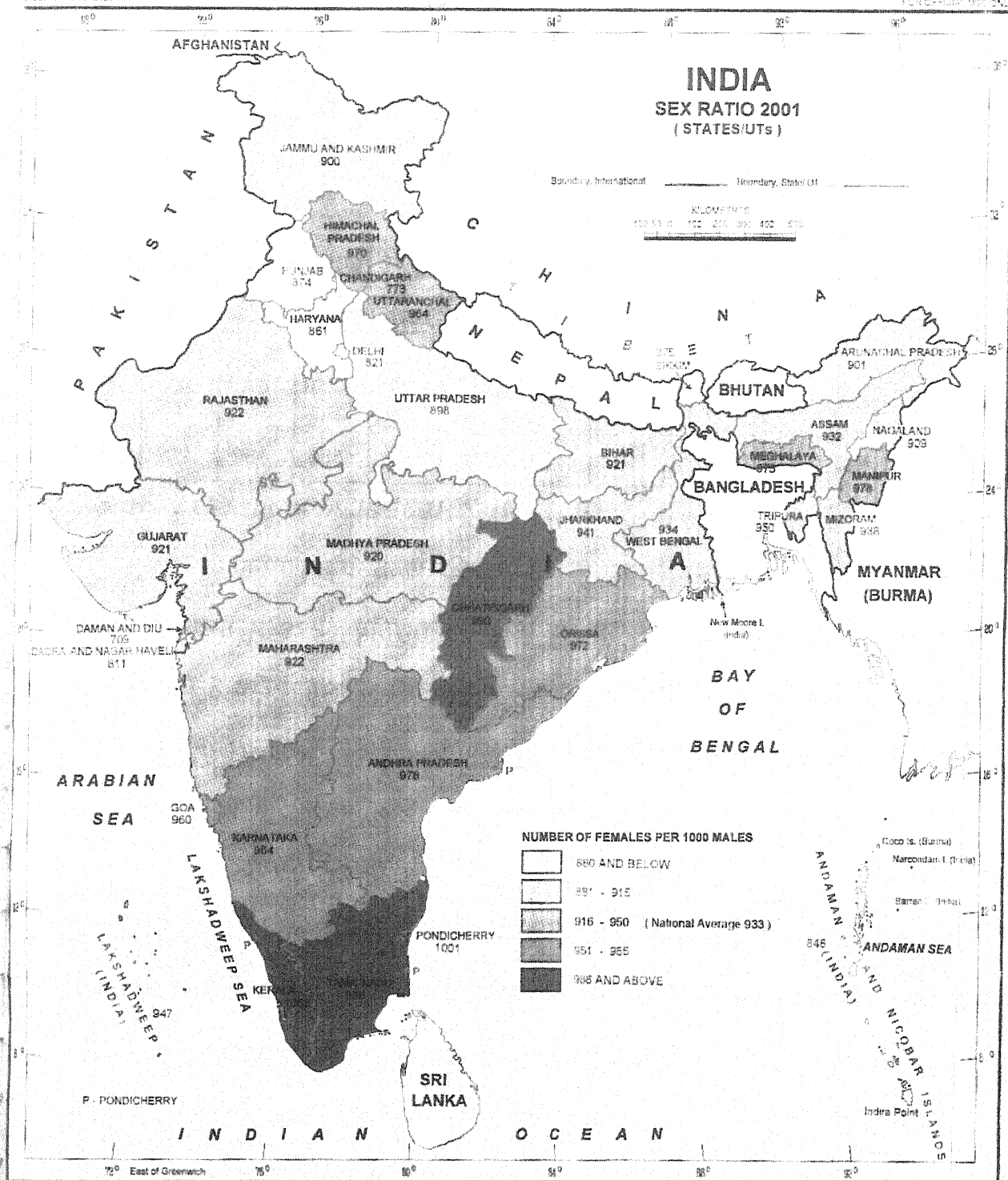
INDIA

SEX RATIO 2001

(STATES/UTs)

JAMMU AND KASHMIR 900
HIMACHAL PRADESH 970
PUNJAB 874
CHANDIGARH 773
UTTARANCHAL 964
HARYANA 861
DELHI 821
RAJASTHAN 922
UTTAR PRADESH 898
SIKKIM 875
ARUNACHAL PRADESH 901
ASSAM 932
NAGALAND 909
MEGHALAYA 975
MANIPUR 978
TRIPURA 950
MIZORAM 938
BIHAR 921
JHARKHAND 941
WEST BENGAL 934
GUJARAT 921
MADHYA PRADESH 920
ORISSA 972
DAMAN AND DIU 709
DADRA AND NAGAR HAVELI 811
MAHARASHTRA 922
ANDHRA PRADESH 978
GOA 960
KARNATAKA 964
PONDICHERRY 1001
LAKSHADWEEP (INDIA) 947
ANDAMAN AND NICOBAR ISLANDS (INDIA) 846

AFGHANISTAN, PAKISTAN, CHINA, TIBET, NEPAL, BHUTAN, BANGLADESH, MYANMAR (BURMA), SRI LANKA

ARABIAN SEA, LAKSHADWEEP SEA, BAY OF BENGAL, ANDAMAN SEA, INDIAN OCEAN

P - PONDICHERRY

NUMBER OF FEMALES PER 1000 MALES

- 880 AND BELOW
- 881 - 915
- 916 - 950 (National Average 933)
- 951 - 985
- 986 AND ABOVE

Based upon Survey of India map with the permission of the Surveyor General of India

The territorial waters of India extend into the sea to a distance of twelve nautical miles measured from the appropriate base line.

The interstate boundaries between Arunachal Pradesh, Assam and Meghalaya shown on this map are as interpreted from the North-Eastern Areas (Reorganisation) Act, 1971 but have yet to be verified.

भारत की जनगणना 2001 के अनुसार देश में प्रति 1000 पुरूष महिलाओं की संख्या 933 है। इसकी तुलना में 1991 की जनगणना के अनुसार देश का लिंगानुपात 927 था। उल्लेखनीय है कि 1971 की अपेक्षा 1981 में लिंगानुपात बढ़ा था जबकि 1991 में यह घट गया और 2001 में पुनः बढ़ गया है। इस प्रकार लिंगानुपात में बढ़ती विषमता तालिका 1.7 चित्र 1.3 (A) एवं चित्र 1.3(B) से स्पष्ट है।

तालिका १.७
भारत के विभिन्न वर्षों में (प्रति एक हजार पुरूषों पर स्त्रियों की संख्या)

वर्ष	1901	1911	1921	1931	1941	1951	1961	1971	1981	1991	2001
पुरूष	1000	1000	1000	1000	1000	1000	1000	1000	1000	1000	1000
स्त्रियां	972	964	955	950	945	946	941	930	934	927	933

***Source :** Census of India 2001, Series-1, Paper-1, Page-92*

जनगणना के ताजा परिणामों के अनुसार 1991–2001 के दौरान देश की कुल जनसंख्या में 21.34 प्रतिशत की वृद्धि हुई है पुरुषों में यह वृद्धि जहाँ 20.93 प्रतिशत रही है वही महिला जनसंख्या में इस दशक के दौरान 21.79 प्रतिशत वृद्धि दर्ज की गई है। 1991–2001 के दशक में जनसंख्या की वार्षिक वृद्धि दर 1.95 प्रतिशत रही है जो 1981–91 में 2.16 प्रतिशत तथा 1971–81 में 2.22 प्रतिशत रही थी।

स्त्री पुरूष अनुपात के सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि यह अनुपात देश के विभिन्न हिस्सों में भिन्न–भिन्न है। जहाँ केरल में महिलाओं की संख्या पुरूषों से अधिक है वही हरियाणा में सबसे कम है। केरल के अतिरिक्त छत्तीसगढ़, तमिलनाडु, आन्ध्रप्रदेश, मणिपुर में स्त्री पुरूष अनुपात सर्वाधिक है और हरियाणा के अतिरिक्त पंजाब, सिक्किम, जम्मू व कश्मीर, उत्तर प्रदेश, में स्त्री पुरूष अनुपात कम है पाण्डिचेरी तथा दादर व नागर हवेली में न्यूनतम है।

सन् 1901 में बिहार, केरल व उड़ीसा आदि राज्यों में महिलाधिक्य था जब कि सन् 1981 में केवल केरल में ही था बिहार में 1981 में लिंगानुपात 947 और उड़ीसा 982 था। लिंगानुपात में जो परिवर्तन इसी सदी में आये है वे सभी राज्यों में एक

भारत में लिंगानुपात १९०१-२००१

पैमाना :

OY अक्ष पर .....प्रति हजार पुरूषों पर महिलाओं की संख्या

OX अक्ष पर .....जनगणना वर्ष
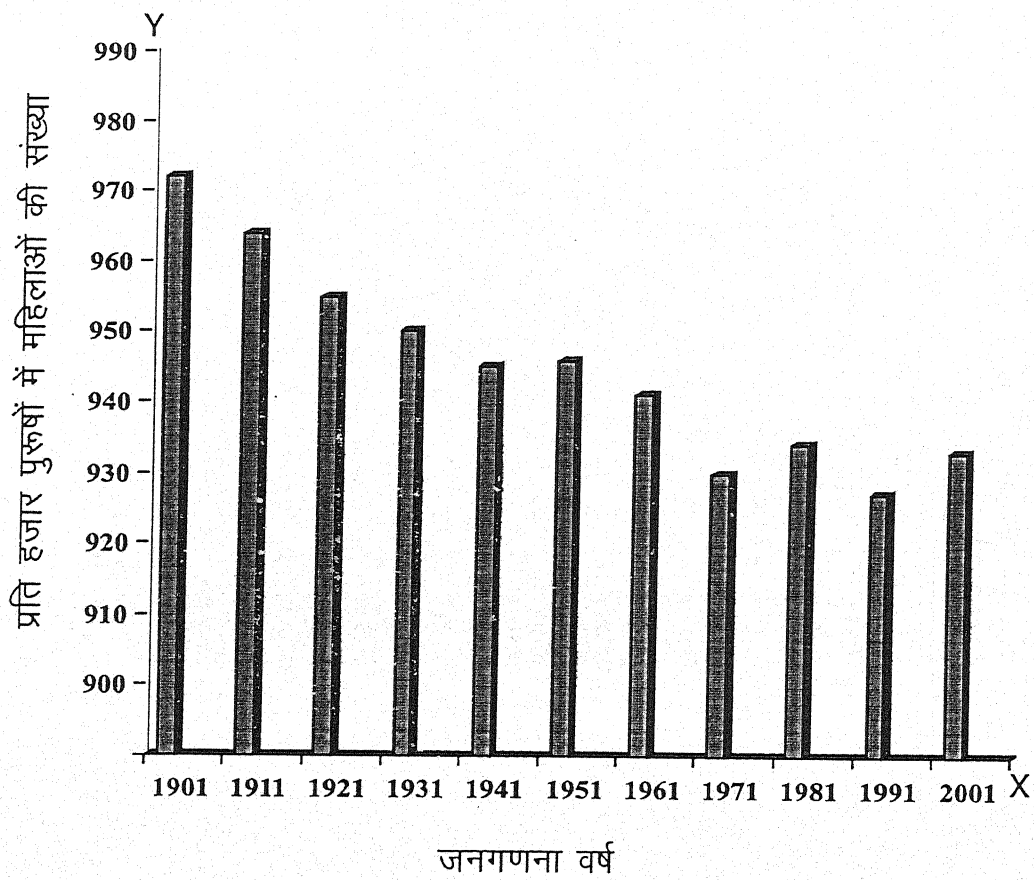
चित्र 1.3 (A)

लिंगानुपात में बढ़ती विषमता

सन् 2001 की जनगणना –लिंगानुपात करोड़ में
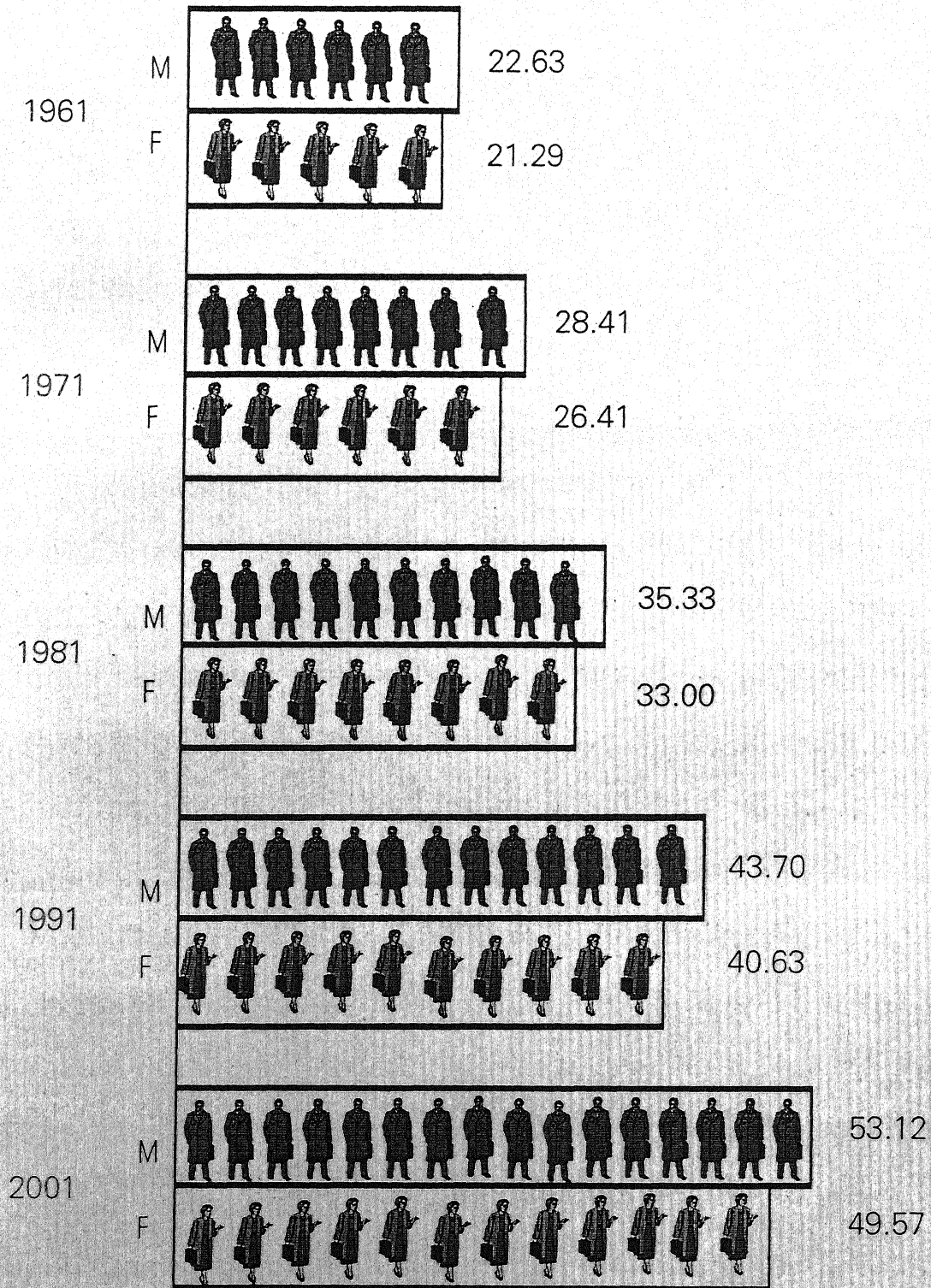
चित्र 1.3 (B)

समान नहीं है। अधिकांशता सभी राज्यों में महिला अनुपात कम है यह पुरूषों की अधिकता समाज के प्रायः प्रत्येक आयु वर्ग में है। बड़े शहरों में यह असन्तुलन अधिक है। यह असन्तुलन इतना अधिक हो गया है कि इससे समाजिक कुरीतियाँ पनपने लगी हैं।

"प्रो0 विसारिया ने इस असन्तुलन के लिए जिन तत्वों को जिम्मेदार ठहराया उनमें प्रमुख है – जैविकीय दृष्टि, निर्धनता, बाल विवाह, लड़कियों की उपेक्षा, दहेज प्रथा, पर्दाप्रथा, शिशु कन्याओं की हत्या, मृत्युदर में अन्तर आदि"। डा0 एस0पी0जैन ने प्रो0 विसारिया के अध्ययन पर टिप्पणी करते हुये लिखा है कि "प्रजनन आयु वर्ग में महिलाओं की ऊँची मृत्युदर पुरूषाधिक्य का प्रमुख कारण है तथा मृत्युदर में क्षेत्रीय भिन्नता के कारण राज्यों में लिंगानुपात में इतना अधिक अन्तर है।"8

भारत में लिंगानुपात की विषमता को एक गम्भीर जनांकिकीय घटना बताते हुये कहा जाता है कि इतनी महत्वपूर्ण समस्या के प्रति न केवल जनांकिकीविद् वरन् समाजशास्त्री तथा जीवशास्त्री भी अनभिज्ञ है। वास्तव में इस समस्या की गम्भीरता को नजरदांज किया गया है। शहरों में इस अनुपात में अधिक विषमता होने से सामाजिक समस्याओं ने विकट रुप धारण कर लिया है। डा0 ज्ञानचन्द्र के शब्दों में "सबसे महत्वपूर्ण बिन्दु यह है कि हम इस तथ्य से अनभिज्ञ है कि यह भी कोई समस्या है जिसको गम्भीरता से लिया जाना चाहिए। अभी तक महिलाओं की संख्या में कमी केवल सांख्यिकीय रूचि का विषय मात्र है। समाजशास्त्रियों, अनुवांशिक विशेषज्ञ और यहाँ तक कि जनसंख्याशास्त्री भी अंधेरे में है। जनगणना रिपोर्ट में भी लिंगानुपात का जो विवरण दिया जाता है उसे पूरी गम्भीरता तथा सारगर्भिता से प्रस्तुत नहीं किया जाता है। शहरी क्षेत्रों में यह लैंगिग विषमता और भी प्रखर हो उठती है तथा अनेक सामाजिक तनावों को उत्पन्न करती है।"9

४. आयु संरचना -:

किसी देश की जनसंख्या में विद्यमान आयु संरचना का विशेष महत्व होता है। आयु संरचना से बहुत सी बातों की जानकारी होती है यथा–देश में शिशुओं

एवं वृद्धों की संख्या, अशिक्षता अनुपात, स्कूल जाने योग्य बच्चों की संख्या, कार्यशील जनसंख्या, विवाह योग्य जनसंख्या तथा मतदाताओं की संख्या आदि। आयु संरचना के आधार पर प्रजनन योग्य स्त्रियों की संख्या का अनुमान लगाया जा सकता है। इससे जनसंख्या वृद्धि दर तथा भविष्य में जनसंख्या के अनुमान लगाये जा सकते है। किसी देश की जनसंख्या की आयु संरचना वहाँ के आर्थिक एवं व्यावसायिक ढ़ाँचे के साथ–साथ सांस्कृतिक एवं राजनैतिक ढाँचे को भी प्रभावित करती है।

डॉ0 चन्द्रशेखर के शब्दों में "व्यक्ति की आयु उसके स्कूल प्रवेश, श्रम बाजार में प्रवेश, मत देने का अधिकार, विवाह आदि का समय निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। आयु संरचना का मृत्यु तथा विवाह दर, जनसंख्या के आर्थिक एवं व्यावसायिक संगठन तथा सामाजिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों पर गहरा प्रभाव पड़ता है।"

भारत की जनसंख्या की आयु संरचना में विगत वर्षों में किस प्रकार परिवर्तन आये है, इसका अध्ययन तालिका 1.8 में किया जा सकता है –

तालिका १.८
विगत वर्षों में आयु संरचना

वर्ष	आयु वर्ग		
	0–14	15–59	60 या अधिक
1911	38.8	60.2	1.0
1921	39.2	59.6	1.2
1931	38.3	60.2	1.5
1941	38.0	60.0	2.0
1951	37.4	57.1	5.5
1961	41.0	53.3	5.7
1971	42.0	52.0	6.0
1981	39.7	54.05	6.25
1991	36.5	57.1	6.4
2001	33.0	62.0	5.0

***Source** : Census of India 2001, Series-1. Paper-2*

यदि आँकड़ों का विश्लेषण किया जाये तो पता चलता है कि भारत में जन्मदर तो कम नहीं हुई। बल्कि अनेक सुविधाओं के कारण मृत्युदर में निरन्तर कमी आयी है। यहाँ तक 59 वर्ष और 60 वर्ष की आयु से अधिक वाले व्यक्तियों की आयु में वृद्धि हुई है। इस तथ्य से यह स्पष्ट होता है कि मृत्युदर घटने से जनसंख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है। 1991 में 60 वर्ष से ऊपर की आयु का प्रतिशत 6.4 हो गया है। और 2001 में 60 वर्ष से ऊपर की आयु का प्रतिशत 5 हो गया है। यदि भारत की तुलना विश्व के अन्य देशों से की जाये तो ज्ञात होता है कि हमारे देश में आश्रित अनुपात विकसित देशों की तुलना में अधिक है किन्तु अनेक अरब राष्ट्रों की तुलना में कम है। यू. एन. ओ. के प्रकाशनों के अनुसार विभिन्न देशों में जनसंख्या का आयुवार प्रतिशत विवरण तालिका 1.9 से स्पष्ट है।

तालिका १.९

प्रमुख देशों में जनसंख्या का आयुवार प्रतिशत विवरण

देश	आयु वर्ग		
	0–14	15–64	65 +
फिजी	33	64	4
पाकिस्तान	41	55	4
भारत	33	62	5
इरान	35	61	4
श्रीलंका	25	68	7
आस्ट्रेलिया	20	68	12
जापान	15	69	18

स्रोत : आशा ए. भेडे एवं तारा कानित्करः प्रिन्सिपल्स ऑफ पापुलेशन स्टडीज पृ. 1361।

भारत में जनसंख्या–पिरामिड पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि हमारे पिरामिड का आधार अन्य देशों की अपेक्षा बड़ा है किन्तु ऊँचाई अन्य देशों से कम है तथा इसकी आकृति एक समत्रिबाहु त्रिभुज की भांति बन जाती है। इस प्रकार का पिरामिड अनेक तथ्यों को प्रकाश में लाता है। प्रथम इस पिरामिड से ज्ञात होता है कि जीवन प्रत्याशा कम है, जन्म के समय बच्चों की संख्या अधिक है किन्तु इस आधार रेखा का आधार शीघ्रता से घटता है जो ऊँची शिशु मरणदर को प्रकट करता है। भारत की जनसंख्या के पिरामिड की आकृति चित्र 1.4 से स्पष्ट है।

जनसंख्या पिरामिड
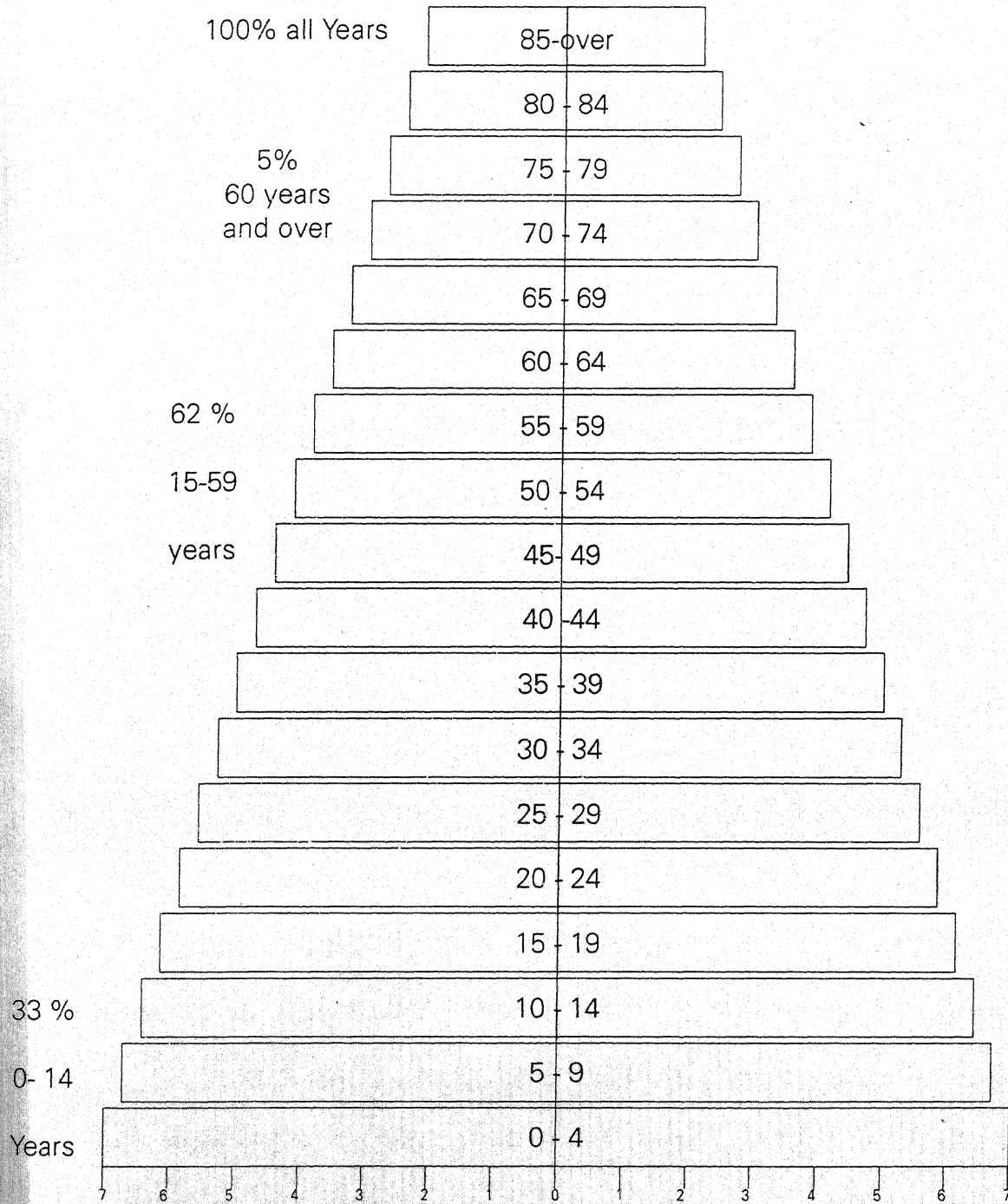
चित्र – 1.4

५. व्यावसायिक संरचना -:

विश्व के विकसित देशों की जनसंख्या से भारतीय जनसंख्या की व्यावसायवार संरचना की तुलना की जाये तो पता चलता है कि भारत में 64 प्रतिशत व्यक्ति कृषि में लगे है जबकि जापान में केवल 19.4 प्रतिशत, ब्रिटेन में 5.0 प्रतिशत तथा संयुक्त रा0 अमेरिका में 12.5 प्रतिशत। हमारे देश में उद्योगों में लगे व्यक्तियों का प्रतिशत 14 है जबकि सं0 रा0 अमेरिका में 30 प्रतिशत एवं ब्रिटेन में 43 प्रतिशत है। तालिका 1.10 में भारत, स0रा0अमेरिका, ब्रिटेन एवं जापान की तुलनात्मक स्थिति व्यक्त की गयी है।

तालिका १.१०

कुछ देशों के व्यावसायवार जनसंख्या का प्रतिशत विवरण

व्यवसाय	सं0रा0 अमेरिका	ब्रिटेन	जापान	भारत
कृषि	12.5	5.0	19.4	64
उद्योग	30.6	43.0	29.3	14
निर्माण उद्योग	6.2	6.2	6.6	2
यातायात एवं संवाद वाहन	19.0	14.1	16.5	6
सेवायें	23.8	23.8	2.8	14

स्रोत : बी0 एन0 सिंह समाजशास्त्र पृ0 81

गत वर्षो में भारत के व्यावसायिक ढाँचे में कोई मौलिक अन्तर नहीं आ पाया है। जनसंख्या का उद्योगवार दबाब करीब–करीब समान है। उद्योगों में सन् 1901 में 1.17 प्रतिशत व्यक्ति लगे हुए थे जबकि 1971 में 4.2 प्रतिशत ही लगे थे। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि उद्योगों में पहले से कम आदमी लगे हैं, वरन् इसका आशय है कि जिस दर से जनसंख्या की वृद्धि हुई है उस दर से उद्योगों में रोजगार नहीं बढ़ा है अथवा बढ़ती राष्ट्रीय आवश्यकताओं को देखते हुए औद्योगिक विकास अत्यन्त धीमा है। 20वीं सदी में हमारे व्यावसायवार रोजगार में जो परिवर्तन आए है उन्हें तालिका 1.11 एवं चित्र 1.5 में देखा जा सकता है।

तालिका १.११

भारतीय जनसंख्या का व्यावसायवार विभाजन

व्यावसाय	कुल कार्यशील जनसंख्या का प्रतिशत
कृषक	64
उद्योग, निर्माण उद्योग	16
व्यापार तथा वाणिज्य	5
परिवहन	3
अन्य	12

स्रोत : इकानॉमिक सर्वे 2001–02।

तालिका 1.11 से स्पष्ट है कि भारत की अधिकांश जनसंख्या औद्योगीकरण के पश्चात् भी कृषि व्यावसाय को करती है जिससे व्यक्तियों का रहन–सहन का स्तर बहुत ही निम्न है। यद्यपि देश की आर्थिक संरचना में परिवर्तन आये है किन्तु उससे जनसंख्या के व्यावसायवार संरचना में अन्तर नहीं आया। पांचवी पंचवर्षीय योजना में इस बात को स्वीकार किया गया था कि विद्यमान औद्योगीकरण की दर पर निकट भविष्य में भी कृषि से गैर कृषि की ओर जनसंख्या के स्थानान्तरण की सम्भावना बहुत कम है और कृषि क्षेत्र में जो जनसंख्या बढ़ रही है उसे कृषि में ही रोजगार देना आवश्यक है। अतः भूमि सुधार के आधार पर भारत की कुल कार्यशील जनसंख्या का प्रतिशत विवरण विभिन्न वर्षों में तालिका 1.12 में दिखाया गया है।

तालिका १.१२

जनसंख्या का व्यावसायिक वितरण (प्रतिशत)

वर्ष	प्राथमिक	द्वितीयक	तृतीयक
1901	71.8	12.6	15.6
1051	72.1	10.6	17.3
1961	72.3	11.7	16.0
1971	72.1	11.2	16.7
1981	69.4	13.0	17.6
1991	67.4	12.1	20.5
2001	64.0	16.0	20.0

स्रोत : इकनॉमिक सर्वे 2001–02।

भारतीय जनसंख्या का व्यावसायवार विभाजन

पैमाना :

OY अक्ष पर .....कुल कार्यशील जनसंख्या का प्रतिशत

OX अक्ष पर .....व्यावसाय
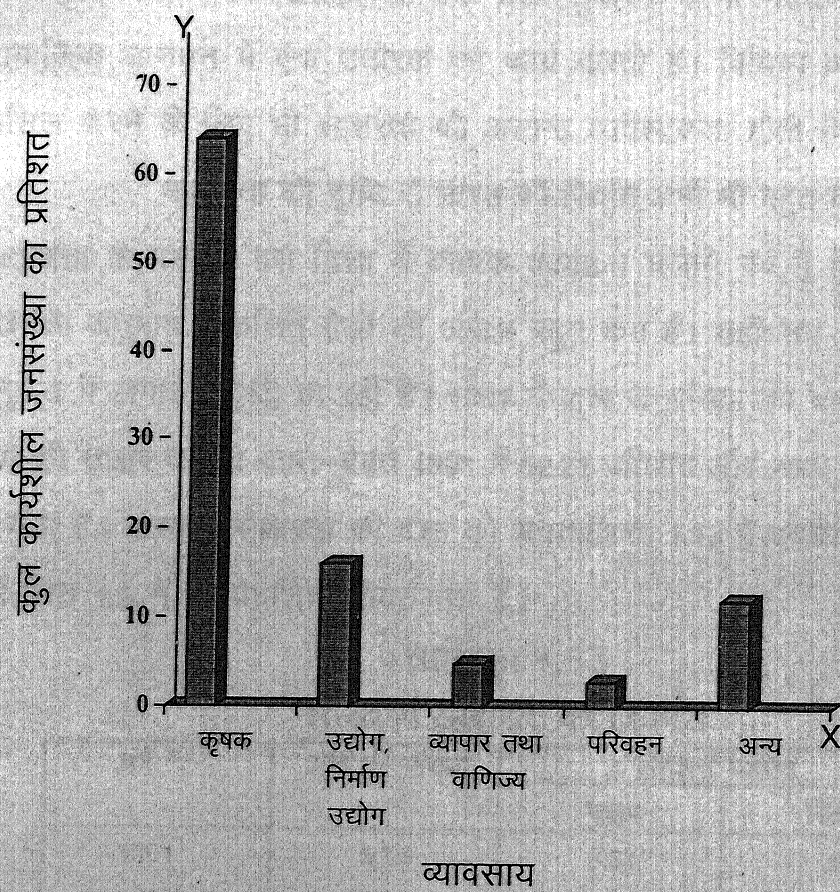
चित्र 1.5

६. साक्षरता एवं शिक्षा के आधार पर जनसंख्या संरचना -:

साक्षरता और शिक्षा किसी भी समाज के विकास के महत्वपूर्ण सूचक होते है। साक्षरता के प्रसार को साधरणतया, आधुनिकता, शहरीकरण, औद्योगीकरण, संचार और वाणिज्य से जोड़ कर देखा जाता है। साक्षरता किसी भी व्यक्ति के सम्पूर्ण विकास का अविभाज्य हिस्सा है जिससे वह अपने सामाजिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक परिवेश की बेहतर तरीके से समझ सकता है। शिक्षा का उच्च स्तर और साक्षरता व्यक्ति में जागृति पैदा करके उसकी आर्थिक दशा सुधारने में भी मदद देता है। साक्षरता सामाजिक उन्नयन में एक उत्प्रेरक का कार्य करती है। विभिन्न व्यवसायों में दक्षता हासिल करने के लिए भी साक्षरता की अत्यन्त आवश्यकता होती है।

साक्षरता की दृष्टि से भारत की स्थिति अभी भी बहुत कमजोर है। यद्यपि स्वतन्त्रता के पश्चात् इस दिशा में व्यापक कार्यक्रम चलाये गए है फिर भी अभी यहाँ साक्षरता अनुपात विकसित देशों की अपेक्षा बहुत कम है। यहाँ सन् 1901 से साक्षरता अनुपात में लगातार वृद्धि हो रही है। 1901 में कुल जनसंख्या का केवल 5.35 प्रतिशत भाग की साक्षर था जो बढ़ते–बढ़ते 1991 में 52.21 प्रतिशत और 2001 में 65.38 प्रतिशत हो गया है। भारत में साक्षरता की दशा को अग्रतालिका 1.13 में प्रदर्शित किया गया है। इसे चित्र 1.6 में भी प्रदर्शित किया गया है।

तालिका १.१३
भारत में साक्षरता का विकास

वर्ष	कुल जनसंख्या	प्रतिशत व्यक्ति	
		पुरूष	स्त्रियां
1901	5.35	9.83	.60
1911	5.92	19.56	1.05
1921	7.16	12.21	1.81
1931	9.50	15.59	2.93
1941	16.10	24.90	7.30
1951	18.33	27.16	8.86
1961	28.30	40.40	15.35
1971	34.45	45.96	21.97
1981	43.57	56.38	29.76
1991	52.21	64.13	39.29
2001	65.38	75.85	54.16

स्रोत : सेन्सस ऑफ इण्डिया 2001 सिरिज –1, पेपर–1

भारत में साक्षरता का प्रतिशत

पैमाना :

OY अक्ष पर .....साक्षरता प्रतिशत में

OX अक्ष पर .....वर्ष

कुल जनसंख्या

पुरुष

स्त्री

Y

साक्षरता प्रतिशत में

80 70 60 50 40 30 20 10 0

1901 1911 1921 1931 1941 1951 1961 1971 1981 1991 2001

X

वर्ष
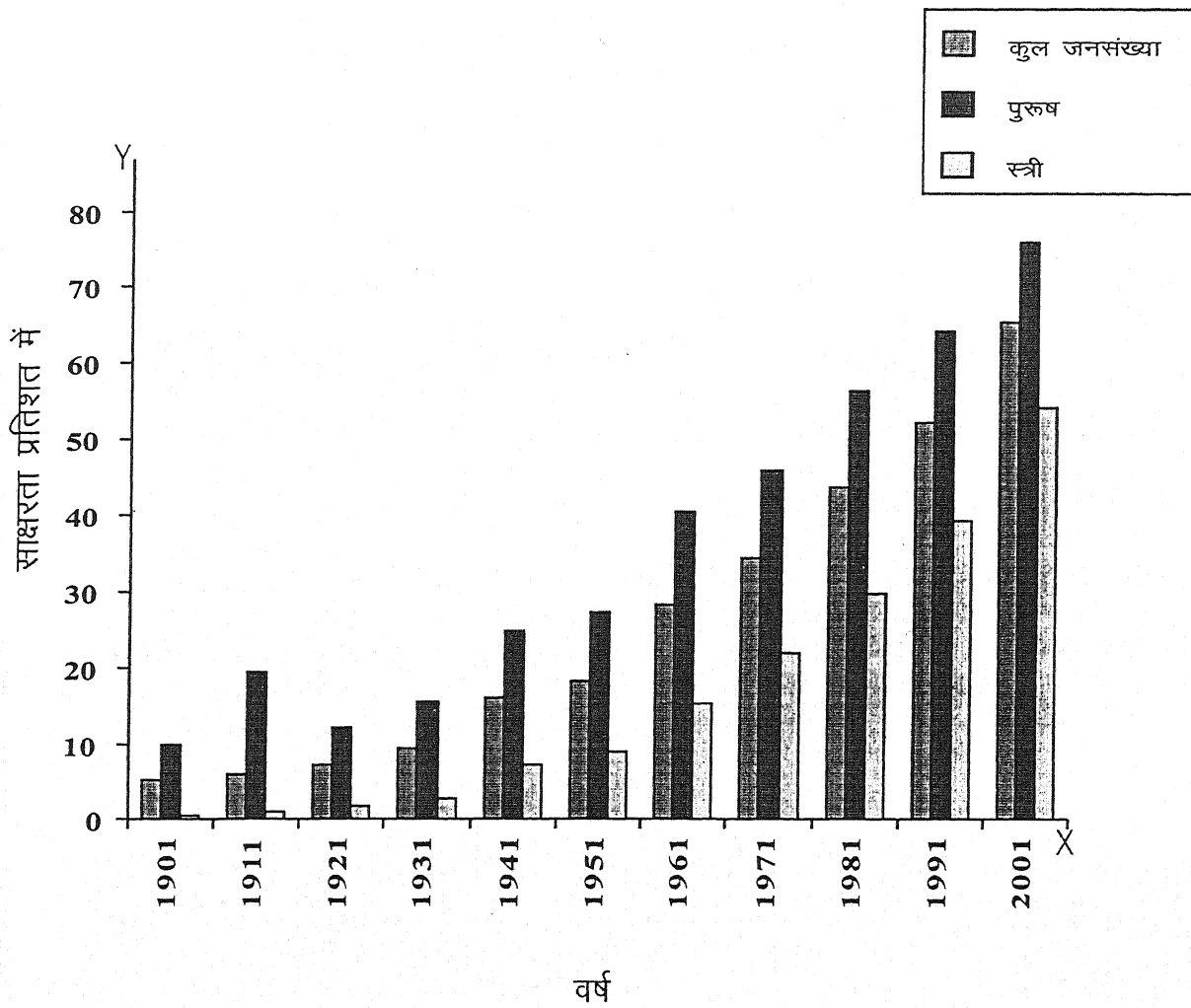
चित्र 1.6

तालिका 1.13 से स्पष्ट है कि सन् 2001 की जनगणना के अनुसार साक्षरता 65.38 प्रतिशत है। जिसमें पुरुषों व स्त्रियों में साक्षरता क्रमशः 75.85, 54.16 प्रतिशत है। यद्यपि महिलाओं में साक्षरता का प्रतिशत अभी भी कम है किन्तु महिलाओं में साक्षरता में वृद्धि की दर पुरूषों से भी अधिक है। इतनी सफलता के बाबजूद अभी तक एक चौथाई पुरूष व आधी महिलायें अब भी निरक्षर है।

साक्षरता का पता लगाने के लिए जनगणना में 7 वर्ष या उससे अधिक आयु के व्यक्तियों की गणना की जाती है, जो किसी भी भाषा में लिख पढ़ सकता है।

सैकड़ों वर्षों की गुलामी के इतिहास ने भारतवासियों के विश्व के सबसे अधिक निरक्षर देश के रुप में परिणित कर दिया तथा 21वीं सदी में आकर जो कुछ भी शिक्षा की व्यवस्था की गई, वह एक ऐसी शिक्षा थी जिसने हमें सफेदपोश–वेतनभोगी–क्लर्कों के रूप में परिणित कर दिया। यही शिक्षा की लकीर आज तक पीटी जा रही है। परन्तु विगत कुछ वर्षों से व्यावसायिक शिक्षा में भी काफी प्रगति हुई है। एक महत्वपूर्ण बात यह भी है कि भिन्न–भिन्न राज्यों में साक्षरता का प्रतिशत भी भिन्न–भिन्न है और इसलिए वहाँ की समस्या का स्वभाव एवं गम्भीरता भी भिन्न भिन्न हो जाती है। इसे तालिका 1.14 एवं मानचित्र 1.2 में दिखाया गया है।

तालिका १.१४
देश के विभिन्न राज्यों में साक्षरता का प्रतिशत

राज्य	कुल	पुरुष	स्त्रियां
केरल	90.92	14.20	87.86
मिजोरम	88.49	90.69	86.13
लक्षद्वीप*	87.52	93.15	81.56
गोवा	82.32	88.88	75.51
दिल्ली*	81.82	87.37	75.00
चण्डीगढ़*	81.76	85.65	76.65
पाण्डिचेरी*	81.49	88.89	74.13
अण्डमान व निकोबार द्वीपसमूह*	81.18	86.07	75.29
दमन व द्वीप*	81.09	88.40	70.37
महाराष्ट्र	77.27	86.27	67.51

हिमाचल प्रदेश	77.13	86.02	68.08
त्रिपुरा	73.66	81.47	65.41
तमिलनाडु	73.47	82.33	64.55
उत्तरांचल	72.28	84.01	60.26
गुजरात	69.97	80.50	58.60
पंजाब	69.95	75.63	63.55
सिक्किम	69.68	76.73	61.46
पश्चिम बंगाल	69.22	77.58	60.22
मणिपुर	68.87	77.87	59.70
हरियाणा	68.59	79.25	56.31
नागालैण्ड	67.11	71.77	61.92
कर्नाटक	67.04	76.29	57.45
छत्तीसगढ़	65.18	77.86	52.40
असम	64.28	71.93	56.03
मध्यप्रदेश	64.11	76.80	50.28
उड़ीसा	63.61	75.95	50.97
मेघालय	63.31	66.14	60.41
आन्ध्र प्रदेश	61.11	70.85	51.17
राजस्थान	61.03	76.46	44.34
दादर व नगर हवेली*	60.03	73.32	42.99
उत्तर प्रदेश	53.36	70.23	42.98
अरूणाचल प्रदेश	54.74	64.02	44.24
जम्मू व कश्मीर	54.46	65.75	41.82
झारखण्ड	54.13	67.94	39.38
बिहार	47.53	60.32	33.57

स्रोत : प्रतियोगिता दर्पण 2003/भारतीय अर्थव्यवस्था/पृष्ठ–53

उपर्युक्त तालिका 1.14 से स्पष्ट है कि राज्य में साक्षरता के मामले में केरल 90.12 प्रतिशत के साथ प्रथम स्थान पर है। इसके पश्चात् क्रमशः मिजोरम 88.49 प्रतिशत और लक्षद्वीप 87.52 प्रतिशत का स्थान है। अन्तिम स्थान पर बिहार है जिसकी साक्षरता दर 47.53 प्रतिशत है जिसके ऊपर झारखण्ड 54.13 प्रतिशत और जम्मू व कश्मीर 54.46 प्रतिशत का स्थान है। सात राज्य/केन्द्र शासित प्रदेश ऐसे है जहाँ महिला साक्षरता 50 प्रतिशत से कम है। इन राज्यों में राजस्थान 44.34 प्रतिशत, अरूणाचल प्रदेश 44.24 प्रतिशत, दादर व नागर हवेली, 42.99 प्रतिशत, उत्तर प्रदेश 42.
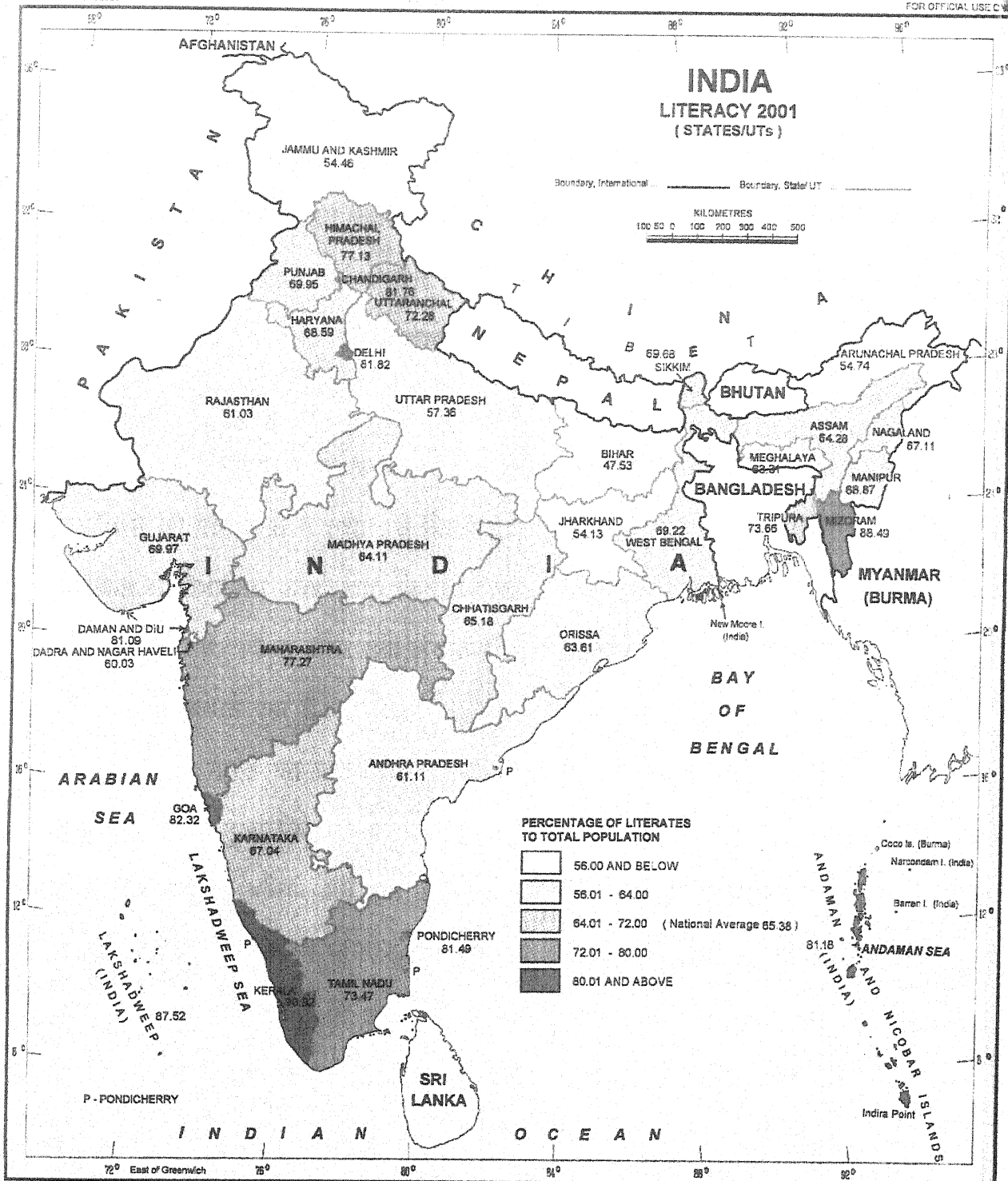
Based upon Survey of India map with the permission of the Surveyor General of India.

The territorial waters of India extend into the sea to a distance of twelve nautical miles measured from the appropriate base line.

The interstate boundaries between Arunachal Pradesh, Assam and Meghalaya shown on this map are as interpreted from the North-Eastern Areas (Reorganisation) Act, 1971 but have yet to be verified.

98 प्रतिशत, जम्मू व कश्मीर 41.82 प्रतिशत, झारखण्ड 39.38 प्रतिशत और बिहार 33. 57 प्रतिशत शामिल है।

७. आश्रित अनुपात -:

आश्रितता अनुपात निकालने के लिये 15 वर्ष से कम आयु के व्यक्तियों की संख्या में 15 से अधिक आयु के व्यक्तियों की संख्या से भाग दिया जाता है। 1980 में यह अनुपात .66 का था जबकि 1990 में यह घटकर .06 हो गया तथा सन् 2000 तक इसके .46 हो जाने का अनुमान है। आर्श्रित अनुपात के लगातार घटने की प्रवृति जीवन स्तर में वृद्धि होने की सम्भावनाओं को बताती है।

८. घनत्व -:

जनसंख्या के घनत्व से तात्पर्य प्रति वर्ग किलोमीटर में निवास करने वाले व्यक्तियों की संख्या से है तथा इसे किसी देश या क्षेत्र की कुल जनसंख्या को वहाँ के क्षेत्रफल से विभाजित करके ज्ञात किया जा सकता है। चूंकि भारत का क्षेत्रफल लगभग स्थिर सा रहा है। किन्तु जनसंख्या लगातार बढ़ती रहने के कारण जनसंख्या का घनत्व भी लगातार बढ़ता रहा है।

भारत का जनसंख्या घनत्व 2001 में 324 व्यक्ति प्रतिवर्ग कि0मी0 है। इसका अर्थ यह हुआ कि एक दशक पूर्व जितने व्यक्ति एक वर्ग कि0मी0 में रहते थे। उससे 57 व्यक्ति अधिक अब इस क्षेत्रफल में रहते है। 20वीं शताब्दी के आरम्भ में अर्थात् 1901 में भारत का जनसंख्या घनत्व 77 था, जो कि 2001 में बढ़कर 324 हो गया है। 1991 की तुलना में 2001 में जनसंख्या घनत्व 21.3 प्रतिशत बढ़ गया है। उपर्युक्त तालिका 1.15 व चित्र 1.7 में विगत दशकों में जनसंख्या घनत्व दिखाया गया है।

तालिका १.१५

विगत दशकों में जनसंख्या घनत्व

व्यक्ति प्रतिवर्ग किलो मीटर

वर्ष	घनत्व
1901	77
1911	82
1921	81
1931	90
1941	103
1951	117
1961	142
1971	177
1981	216
1991	267
2001	324

स्रोत : जनसंख्या रिपोर्ट, जनगणना कार्यालय, नई दिल्ली।

देश के अन्दर ही घनत्व की दृष्टि से विभिन्न राज्यों में काफी असमानता पायी जाती है जिसे तालिका 1.16 एवं मानचित्र 1.3 में प्रदर्शित किया गया है।

तालिका १.१६

राज्यों तथा केन्द्र शासित प्रदेशों का जनसंख्या घनत्व २००१

व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर

क्रम संख्या	राज्य/केन्द्र शासित प्रदेश	जनसंख्या घनत्व
1.	दिल्ली*	9,294
2.	चण्डीगढ़*	7,903
3.	पाण्डिचेरी*	2,029
4.	लक्षद्वीप*	1,894
5.	दमन व द्वीप*	1,411
6.	पश्चिम बंगाल	904
7.	बिहार	880
8.	केरल	819
9.	उत्तर प्रदेश	689
10.	पंजाब	482
11.	तमिलनाडु	478
12.	हरियाणा	477

विगत वर्षों में जनसंख्या घनत्व
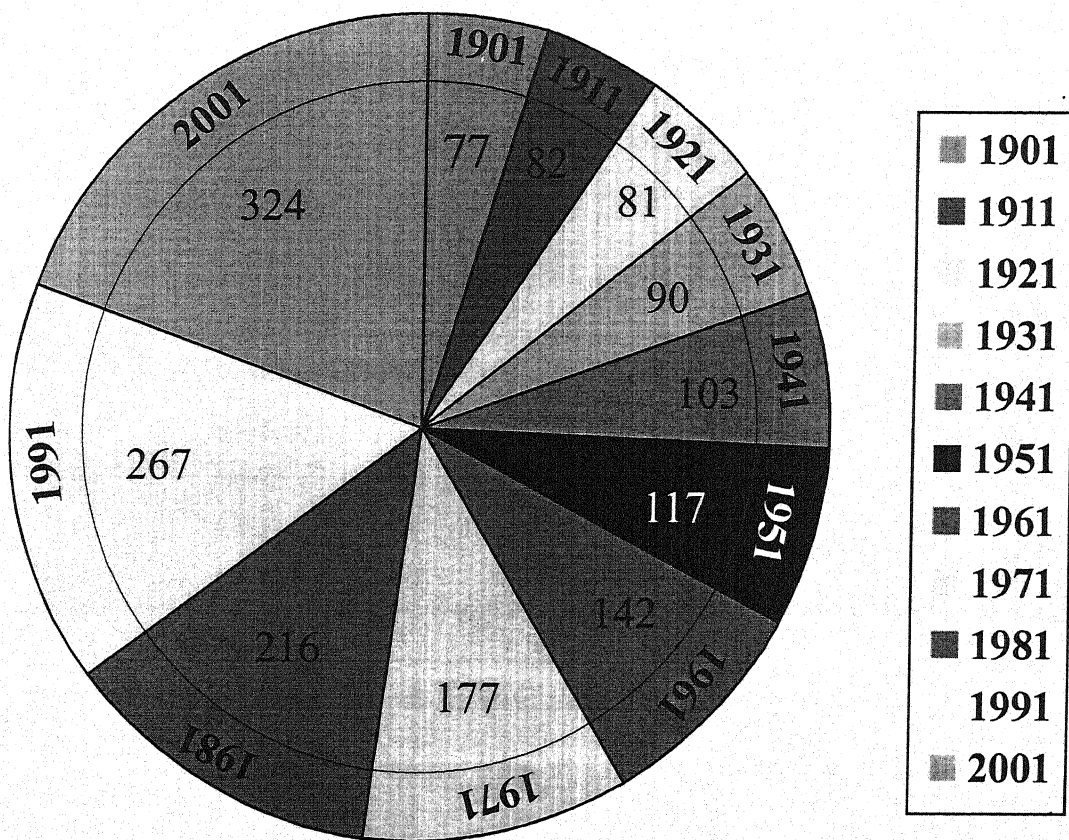
चित्र 1.7

13.	दादर व नागर हवेली*	449
14.	गोवा	363
15.	असम	340
16.	झारखण्ड	338
17.	महाराष्ट्र	314
18.	त्रिपुरा	304
19.	आन्ध्र प्रदेश	275
20.	कर्नाटक	275
21.	गुजरात	258
22.	उड़ीसा	236
23.	मध्य प्रदेश	196
24.	राजस्थान	165
25.	उत्तरांचल	159
26.	छत्तीसगढ़	154
27.	नागालैण्ड	120
28.	हिमाचल प्रदेश	109
29.	मणिपुर	107
30.	मेघालय	103
31.	जम्मू व कश्मीर	99
32.	सिक्किम	76
33.	अण्डमान व निकोबार द्वीप समूह*	43
34.	मिजोरम	42
35.	अरूणाचल प्रदेश	13

Source : *census of India Series1, Paper2 of 2001 final population total.*

उपर्युक्त तालिका 1.16 से स्पष्ट है कि देश के राज्यों और केन्द्र शासित क्षेत्रों में काफी अन्तर है जहाँ अरूणाचल प्रदेश में जनसंख्या घनत्व 13 है, वही दिल्ली के लिए यह 9,242 है। बड़े राज्यों में पं0 बंगाल आज भी सर्वाधिक घनत्व वाला राज्य है। इसका जनसंख्या घनत्व 904 है। अन्य राज्यों में बिहार केरल की पीछे छोड़ते हुए दूसरा स्थान ग्रहण कर लिया है। घनत्व में विभिन्नता के बहुत से कारण है। जैसे भूमि की बनावट, मिट्टी की किस्म, जलवायु, खनिज पदार्थ, शक्ति के साधन, सिंचाई व अन्य प्राकृतिक साधन तथा आर्थिक विकास की अवस्था आदि।

INDIA

DENSITY OF POPULATION 2001

(STATES/UTs)

AFGHANISTAN

PAKISTAN

CHINA

TIBET

NEPAL

BHUTAN

BANGLADESH

MYANMAR (BURMA)

SRI LANKA

JAMMU AND KASHMIR

HIMACHAL PRADESH 109

PUNJAB 482

CHANDIGARH 7903

UTTARANCHAL 159

HARYANA 477

DELHI 9294

RAJASTHAN 165

UTTAR PRADESH 689

BIHAR 880

SIKKIM 76

ARUNACHAL PRADESH 13

ASSAM 340

NAGALAND 120

MEGHALAYA

MANIPUR 107

TRIPURA 304

MIZORAM 42

JHARKHAND 338

WEST BENGAL 904

GUJARAT 258

MADHYA PRADESH 196

CHHATISGARH 154

ORISSA 236

DAMAN AND DIU 1411

DADRA AND NAGAR HAVELI 449

MAHARASHTRA 314

ANDHRA PRADESH 275

GOA 363

KARNATAKA 275

KERALA 819

TAMIL NADU 478

PONDICHERRY 2029

LAKSHADWEEP (INDIA) 1894

ANDAMAN AND NICOBAR ISLANDS (INDIA)

ARABIAN SEA

LAKSHADWEEP SEA

BAY OF BENGAL

ANDAMAN SEA

INDIAN OCEAN

Indira Point

P - PONDICHERRY

NUMBER OF PERSONS PER Km^2

- 100 AND BELOW
- 101 - 250
- 251 - 500 (National Average 324)
- 501 - 1000
- 1001 AND ABOVE

72° East of Greenwich

Based upon Survey of India map with the permission of the Surveyor General of India.

The territorial waters of India extend into the sea to a distance of twelve nautical miles measured from the appropriate base line.

The interstate boundaries between Arunachal Pradesh, Assam and Meghalaya shown on this map are as interpreted from the North-Eastern Areas (Reorganisation) Act, 1971 but have yet to be verified.

९. सन् १९९६-२०१६ तक भारत की जनसंख्या का प्रेक्षपण -:

योजना आयोग ने आगामी 20 वर्षों के लिए परिवार नियोजन के निष्पादन सम्बन्धी अद्यतन आंकड़ो और जनन एवं मृत्यु-दरों के वर्तमान स्तरों और प्रवृत्तियों को ध्यान में रखते हुए, एक तकनीकी ग्रुप की नियुक्ति की जो कि नमूना पंजीकरण प्रणाली से प्राप्त सामग्री के आधार पर 1996 से 2016 की अवधि के लिए जनसंख्या के प्रक्षेपण तैयार करें। इस तकनीकी ग्रुप ने अपनी रिपोर्ट अगस्त 1996 में प्रस्तुत की।

प्रक्षेपण से सम्बन्धित मान्यताएँ -:

1. अन्तराष्ट्रीय प्रवसन की मात्रा नाम मात्र मानी गयी।
2. शुद्ध प्रजनन दर-1 को आधार बनाने की अपेक्षा इन प्रक्षेपणों में सकल जनन दर के साथ विस्थापित करने का निर्णय लिया गया ताकि इसका 2.1 का स्तर प्राप्त किया जा सके।
3. चूंकि 15 मुख्य राज्यों की जनसंख्या कुल देश की जनसंख्या के 95.7 प्रतिशत के बराबर है। इसलिए इन राज्यों के आधार पर किए गए प्रक्षेपण जनांककीय दृष्टि से उचित अनुमान होगें।
4. जन्म पर पुरूषों की प्रत्याशित आयु जो 1996-2001 के दौरान 62.3 वर्ष थी बढ़कर 2011-2016 की अवधि के दौरान 67 वर्ष हो जाएगी और इसी अवधि के दौरान स्त्रियों की प्रत्याशित आयु 65.3 वर्ष से बढ़कर 69.2 वर्ष हो जाएगी।
5. पुरूषों के लिए शिशु मृत्युदर जो 1996-2001 के दौरान 78 प्रति हजार थी गिरकर 2011-2016 के दौरान 58 हो जाएगी और स्त्रियों के लिए इसी अवधि के दौरान यह गिरकर 80 से 59 तक पहुँच जाएगी।

इस प्रकार भारत की जनसंख्या जो 1996 में 93.4 करोड़ थी जो 2006 तक बढ़कर 109.4 करोड़ होने का अनुमान लगाया गया, जो सन् 2016 तक और बढ़कर 126.4 करोड़ हो जाएगी। इस प्रकार 1996-2006 को दशक के दौरान

जनसंख्या की चक्रवृद्धि दर 1.58 प्रतिशत वर्ष आंकी गयी जिसके 2006 से 2016 के दशक के दौरान गिर कर 1.45 प्रतिशत के स्तर पर पहुँच जाने की आशा है।

तालिका १.१७
भारत की प्रक्षेपित जनसंख्या १९९६-२०१६

वर्ष	करोड़ व्यक्ति			प्रतिशत वितरण	
	पुरूष	स्त्रियां	व्यक्ति	पुरूष	स्त्रियां
1996	48.5	44.9	93.4	51.9	48.1
2001	52.4	48.8	101.2	51.8	48.2
2006	56.4	53.0	109.4	51.6	48.4
2011	60.7	67.2	117.9	51.5	48.5
2016	64.9	61.5	126.4	51.3	48.7

स्रोत : भारतीय अर्थव्यवस्था रूद्र दत्त एवं सुन्दरम्, पेज–73

उपर्युक्त तालिका 1.17 से स्पष्ट है कि 20 वर्षों की अवधि 1996–2016 के दौरान भारत की जनसंख्या 93.4 करोड़ से बढ़कर 126.4 करोड़ हो जाएगी अर्थात् इसमें 35.3 प्रतिशत की वृद्धि होगी। जबकि पुरूषों में 33.8 प्रतिशत और स्त्रियों में 37 प्रतिशत की वृद्धि होगी।

0–14 आयु वर्ग में जनसंख्या का अनुपात जो 1996 में 37.7 प्रतिशत था गिर कर 2016 में 27.7 प्रतिशत हो जायेगा। 15–59 आयु–वर्ग में जनसंख्या का अनुपात जो 1996 में 55.6 प्रतिशत बढ़कर 2016 में 63.3 प्रतिशत हो जाने की प्रत्याशा है। वृद्ध व्यक्तियों का (60 वर्ष से अधिक) जनसंख्या में अनुपात जो 1996 में 6.7 प्रतिशत था, बढ़कर 2016 में 9 प्रतिशत हो जाएगा।

तालिका १.१८
जनसंख्या की प्रक्षेपित आयु संरचना

आयु वर्ग	1996		2016	
	करोड़ व्यक्ति	प्रतिशत	करोड़ व्यक्ति	प्रतिशत
0–14	35.27	37.7	35.04	27.7
15–59	51.92	55.6	80.01	63.3
60 से अधिक	6.23	6.7	11.30	9.0
कुल	93.4	100.0	126.35	100.00

स्रोत : भारतीय अर्थव्यवस्था रूद्र दत्त एवं सुन्दरम् पेज 74

नगरीय जनसंख्या में प्रक्षेपित वृद्धि -:

नगर जनसंख्या जो 1996 में 27.23 प्रतिशत थी, बढ़कर 2016 में 33.67 प्रतिशत हो जाएगी। कुल रुप में नगर जनसंख्या जो 1996 में 25.43 करोड़ थी बढ़कर 2016 में 42.56 करोड़ हो जायेगी।

जनसंख्या के राज्यवार प्रक्षेपण और वृद्धि दरें (१९९६-२०५१) -:

अगले 50 वर्षों के लिए जनसंख्या के संशोधित प्रक्षेपणों से पता चलता है कि भारतीय जनसंख्या के सन् 2001 तक 101.2 करोड़ और सन् 2021 तक 134.5 करोड़ तक बढ़ जाने की प्रत्याशा है अर्थात् 1.44 प्रतिशत औसत वार्षिक वृद्धि दर। यह आशा की जाती है। सन् 2051 तक भारत की जनसंख्या बढ़कर 164.6 करोड़ हो जाएगी अर्थात् 2021–और 2051 की 30 वर्षीय अवधि में औसत वृद्धि–दर .68 प्रतिशत रहेगी।

जनसंख्या प्रक्षेपणों के राज्यवार विश्लेषण में पता चलता है कि बीमारू राज्यों अर्थात् बिहार, मध्यप्रदेश, राजस्थान और उत्तर प्रदेश में 1996 से 2051 के दौरान 47.2 करोड़ जनसंख्या की वृद्धि होगी। समग्र भारत में 71.2 करोड़ की कुल वृद्धि में इन चार राज्यों का भाग 66.2 प्रतिशत होगा। केवल उत्तर प्रदेश द्वारा 28.4 करोड़ का योगदान किया जाएगा जो कि कुल वृद्धि का 39.9 प्रतिशत होगा।

अतः यदि परिवार नियोजन कार्यक्रम का संकेन्द्रण इन राज्यों की ओर किया जाए, विशेषकर उत्तर प्रदेश की ओर, तभी देश अपने जनसंख्या स्थरीकरण के लक्ष्य की ओर बढ़ सकता है और इसमें सफलता प्राप्त कर सकता है। 1996 में इन राज्यों का कुल जनसंख्या में भाग 40 प्रतिशत था अर्थात् देश की 93.4 करोड़ कुल जनसंख्या में 37.4 करोड़। सन् 2051 में देश की 164.6 करोड़ जनसंख्या में इन चार राज्यों का भाग 84.6 करोड़ हो जाएगा अर्थात् 51.3 प्रतिशत। इससे यह बात पुष्ट होती है कि देश को इन चार राज्यों की ओर अपना ध्यान केन्द्रित करना होगा जो जनसंख्या नीति के कार्यान्वयन में बहुत पिछड़ गए हैं।

तालिका १.१९
भारत और १५ बड़े राज्यों में जनसंख्या प्रक्षेपण

1996–2051 के बीच वृद्धि करोड़ में						
राज्य	1996	2001	2021	2051	कुल करोड़	प्रतिशत
उत्तर प्रदेश	15.7	17.4	26.9	44.1	28.4	181.2
बिहार	9.3	10.3	14.0	16.3	7.0	75.5
मध्य प्रदेश	7.4	8.1	11.0	12.8	5.4	72.3
राजस्थान	5.0	5.5	8.2	11.4	6.4	129.7
महाराष्ट्र	8.7	9.3	11.6	12.4	3.7	42.9
आन्ध्र प्रदेश	7.2	7.6	9.0	9.3	2.1	28.1
पं० बंगाल	7.5	7.9	9.5	9.7	2.2	30.6
तमिलनाडु	5.9	6.2	7.1	6.9	1.0	16.4
कर्नाटक	4.9	5.3	6.6	7.0	2.1	42.7
गुजरात	4.6	4.9	5.8	6.0	1.4	31.8
उड़ीसा	3.4	3.7	4.5	4.6	1.2	34.9
केरल	3.1	3.3	3.8	3.9	0.8	25.9
असम	2.5	2.7	3.4	3.7	1.2	48.3
पंजाब	2.2	2.4	2.8	2.8	0.6	26.2
हरियाणा	1.9	2.0	2.4	2.6	0.7	39.7
अखिल भारत	93.4	101.2	134.5	164.6	71.2	76.2

स्रोत : भारतीय अर्थव्यवस्था रूद्र दत्त एवं सुन्दरम्, पेज 75

भारत में जनसंख्या विस्फोट -:

1 मार्च 2001 के सूर्योदय के समय भारत की जनसंख्या (2001 की जनगणना के अनुसार) 1,02,70,15,247 थी। 1991–2001 की अवधि में भारत की जनसंख्या में 18.10 करोड़ व्यक्तियों की वृद्धि हुई जो फ्रांस, ब्रिटेन या इटली की कुल आबादी से भी अधिक है। इसी अवधि में भारत की जनसंख्या 1.95 प्रतिशत की वार्षिक दर से बढ़ी है जबकि 1971–81 और 1981–91 की अवधियों में वार्षिक जनसंख्या वृद्धि दर क्रमशः 2.22 व 2.14 प्रतिशत रही थी। पिछले दशक के प्रतिवर्ष एक आस्ट्रेलिया जितनी आबादी का इजाफा भारत की जनसंख्या में हो जाता है। हम अब तक जनसंख्या की वार्षिक दर को 1 प्रतिशत के स्तर तक पहुँचने का लक्ष्य पूरा करने में भी असफल रहे है। जहाँ विश्व की कुल जनसंख्या का 16 प्रतिशत भाग भारत के हिस्से में है। वहाँ विश्व के कुल क्षेत्रफल का भाग 2.4 प्रतिशत ही भारत के हिस्से में पड़ता है।

भारत में विस्फोट जनसांख्यिकीय परिदृश्य को चीन से तुलनात्मक विश्लेषण करके सबसे स्पष्ट रेखाकिंत किया जा सकता है। विश्लेषण के केन्द्र बिन्दु बनते है, जनसंख्या घनत्व, जनसंख्या वृद्धि की दर तथा जनसंख्या वृद्धि में परिवर्तन की दर। विश्व के सर्वाधिक जनसंख्या वाले देश चीन का कुल क्षेत्रफल 9,561,000 वर्ग किलोमीटर है और जनसंख्या घनत्व 134 व्यक्ति प्रतिवर्ग किलो मीटर वही भारत का कुछ क्षेत्रफल 3,287,263 वर्ग किलो मीटर है जबकि जनसंख्या घनत्व 324 व्यक्ति प्रति वर्ग किलो मीटर है। यानी चीन का जनसंख्या घनत्व भारत से आधा है। विश्लेषण का दूसरा बिन्दु है जनसंख्या दर जो चीन में 1.07 प्रतिशत से भी कम है, जबकि भारत में 1 प्रतिशत की जनसंख्या वृद्धि दर को अभी तक लाने में असफलता ही हाथ लगी है। विश्लेषण का तीसरा महत्वपूर्ण बिन्दु है जनसंख्या वृद्धि दर में परिवर्तन की दर। एक अनुमान के अनुसार सन् 2050 तक भारत चीन को पीछे कर विश्व का सर्वाधिक जनसंख्या वाला देश बन जायेगा। सन् 2050 में भारत की जनसंख्या कुल विश्व की जनसंख्या की 17.2 प्रतिशत होगी।

तालिका 1.20 से स्पष्ट है कि जब हम भू–क्षेत्र के संदर्भ में जनसंख्या की तुलना करते है तो भारत की जनसंख्या विश्व के चुने हुए देशों से बहुत ही अधिक है। यह इतनी अधिक है कि यह अमेरिका, जापान आदि के जोड़ से भी अधिक है। परन्तु जब हम भू–क्षेत्र को देखते है तो ज्ञात होता है कि अकेले अमेरिका का ही भू–क्षेत्र भारत के भू–क्षेत्र से तीन गुना अधिक है।

तालिका १.२०
विश्व के चुने हुए देशों में जनसंख्या का आकार एवं भू-क्षेत्र

देश	भू–क्षेत्र हजार वर्ग किमी	जनसंख्या मिलियम में
समस्त विश्व	135970	6.55.0
चीन	9597	1277.6
भारत	3280	1027.0
अमेरिका	9363	281.4
जापान	372	126.9

Source : *Census of India 2001, Series-1, Paper-1, Page 29*

भारत की जनसंख्या का लगभग 27 प्रतिशत भाग शहरी क्षेत्रों में बसता है और शहरी आबादी का लगभग 60 प्रतिशत हिस्सा बड़े महानगरों में रहता है। भारत में विभिन्न राज्यों की जनसंख्या वृद्धि दर में भी पर्याप्त विषमता है। चार हिन्दी भाषी राज्यों, उत्तर प्रदेश (25.8), बिहार (28.43), मध्य प्रदेश (24.34), तथा राजस्थान (28.33) प्रतिशत में दस वर्षों की जनसंख्या राँष्ट्रीय वृद्धि से काफी कम है। अब चूंकि भारत की कुल जनसंख्या में चार हिन्दी भाषी राज्यों का भाग 49 प्रतिशत है, अतः भविष्य में जनसंख्या सम्बन्धी होने वाला कोई भी परिवर्तन काफी कुछ इन्हीं चार राज्यों पर निर्भर करेगा। भारत की जनसंख्या में लिंगानुपात भी एक चिन्ता का विषय है। मुख्य रूप से हिन्दी भाषी राज्यों में पिछले दशक के दौरान लिंगानुपात में उससे पूर्व के दशक की तुलना में काफी कमी आयी है। उत्तर प्रदेश में यह 898 तथा बिहार में 921 के स्तर पर पहुँच गया, जबकि केरल में स्थिति काफी अच्छी है। केरल में प्रतिहजार पुरूषों पर 1058 महिलायें है।

जनसंख्या विस्फोट का विध्वंस -:

जनसंख्या विस्फोट से त्रस्त भारत जैसे विकासशील देश में सामाजिक आर्थिक परिदृश्य लगातार विध्वंसक परिणामों की ओर बढ़ता जा रहा है। भारत की प्रति व्यक्ति आय में उस अनुपात में वृद्धि नहीं हुई जिस अनुपात में राष्ट्रीय आय बढ़ी है। कारण स्पष्ट है कि विभिन्न योजनाकालों में किये गये विकास कार्यक्रमों के द्वारा राष्ट्रीय आय में जो वृद्धि हुई, उसे तेजी से बढ़ती आबादी ने महत्वहीन कर दिया। विश्व बैंक की एक रिपोर्ट के अनुसार भारत में प्रति व्यक्ति आय केवल 450 डालर थी, जब कि अमेरिका में यह 21,790 जापान में 25,430 डालर थी। देश के मात्र 1 प्रतिशत व्यक्ति देश की कुल आय का लगभग 10 प्रतिशत भाग प्राप्त कर लेते हैं, जबकि 50 प्रतिशत व्यक्तियों को कुल आय का केवल 22 प्रतिशत भाग ही प्राप्त होता है।

आर्थिक असमानता से अपनी इस सामाजिक विसंगति के लिए अंतिम रूप से एक ही चीज उत्तरदायी है जनसंख्या विस्फोट। एक कृषि प्रधान देश होने के

बाबजूद भारत खाद्यान्न संकट और कुपोषण की समस्या से त्रस्त है। एक ओर रिकार्ड खाद्यान्न उत्पादन के दावे है तो दूसरी ओर यह तथ्य है। विश्व में कुपोषण के शिकार 19 करोड़ बच्चों में अकेले भारत में 7.2 करोड़ बच्चे है, यानी 36 प्रतिशत। भोजन और पोषण की समस्या के साथ ही आवास समस्या भी जनसंख्या विस्फोट के परिप्रेक्ष्य में काफी गम्भीर है। सारी दुनिया में लगभग एक अरब बेघरों में 23 करोड़ भारत में ही है। 21वीं सदी की शुरुआत के साथ 41 करोड़ भारतीय आवास विहीन होगें। वर्तमान में यह आंकड़े 15.5 मिलियन शहरी क्षेत्र में और 25.5 मिलियन ग्रामीण क्षेत्र में पहुँच चुके होगें लेकिन इसके बाबजूद 41 करोड़ जनसंख्या बेघर ही रह जायेगी।

REFERENCES

1. Davis, Kingslay : Population of India and Pakistan, Princeton University Press, Princeton, 1950, P. 26
2. Pran Neth : A study in the economic condition of Ancient India 1926, P.120
3. Chandrashekhar : Infant mortality in India, P.25
4. Moreland : India at the Death of Akber, Machmillan & Co. London, 1920, P.9
5. Shirras F : Poverty and kendered economic Problems of India 1931, P.26
6. Mukarjee, R.K. : Food Planning for 400 millians, 1938, P.3
7. Davis Kingslay : Population of India and Pakistan Princetion University Press, Princetion 1950, P. 32
8. Jain, S.P. : Demography. P. 99
9. Gyanchand : Population in Perspective, P. 361

अध्याय - द्वितीय

भारत में जनाधिक्य की समस्या का स्वभाव

किसी विशिष्ट समय में जब किसी देश या प्रदेश के सम्पूर्ण संसाधनों के अधिकतम एवं समुचित उपयोग के पश्चात भी जनसंख्या का जीवन–स्तर निम्न रहता है तो वहाँ जनाधिक्य की दशा होती है। जनसंख्या वृद्धि के साथ–साथ प्रति व्यक्ति आय और उत्पादन घटने लगता है। निम्न जीवन स्तर के साथ–साथ समाज में बेरोजगारी और अशांति पाई जाती है, तो कहा जाता है कि वहाँ जनसंख्या की समस्या है और यही स्थिति भारत में है। प्रो0 क्लार्क के शब्दों में,

"Over population may take place where resources davelopment does not go hand in hand with population growth, and where groawth of tertiory services lags behind technical progress."

परन्तु, वास्तव में जनसंख्या की समस्या के कई पहलू हो सकते है जैसे, निरपेक्ष रूप से जनसंख्या का अधिक होना, जनसंख्या का वितरण असमान होना, विभिन्न क्षेत्रों में जनसंख्या वृद्धि दर में असमानता होना, कुछ क्षेत्रों में जनाभाव होना, कुल जनसंख्या में आश्रितों का प्रतिशत अधिक होना इत्यादि। अतः जनसंख्या की समस्या के वास्तविक स्वभाव के अध्ययन के लिये यह आवश्यक होता है कि जनसंख्या की समस्या को विभिन्न पहलुओं की दृष्टि से ही देखा जायें। इसी आधार पर भारत में जनसंख्या की समस्या के वास्तविक स्वभाव का अध्ययन दो मुख्य पहलुओं के आधार पर किया जा सकता है। प्रथम, 'संख्यात्मक पहलू' द्वितीय 'गुणात्मक पहलू'।

जनसंख्या की समस्या का संख्यात्मक पहलू :-

जनसंख्या की समस्या के संख्यात्मक पहलू के अन्तर्गत कई बिन्दु आते है जैसे– भू क्षेत्र की तुलना में जनाधिक्य एवं घनत्व का अधिक होना, जनसंख्या का वितरण असमान होना एवं जनसंख्या वृद्धि दर का अनियन्त्रित होना इत्यादि। भारत में कुल भूक्षेत्र की लगभग 328.7 हजार वर्ग किलोमीटर है जो कि विश्व के कुल–भूक्षेत्र का

लगभग 2.4 प्रतिशत है जबकि भारत में 2001 की जनगणना के अनुसार जनसंख्या 102.7 करोड़ है जो कि समस्त विश्व जनसंख्या का लगभग 16.7 प्रतिशत है। यदि भारत की स्थिति की तुलना में विश्व के चुने हुये देशों से की जाये तो चीन को छोड़कर भारत की स्थिति बड़ी दयनीय है। उदाहरण के लिये जहाँ भारत में विश्व के कुल भू–क्षेत्र का 2.4 प्रतिशत है वहीं जनसंख्या विश्व की कुल जनसंख्या का लगभग 16.7 प्रतिशत है जबकि अमेरिका में ये आकड़े क्रमशः 6.9 प्रतिशत तथा 4.63 प्रतिशत ही है। यह तुलना चित्र 2.1 में दिखायी गयी है।

परिणाम स्वरूप 2001 की जनगणना के अनुसार भारत में जनसंख्या का घनत्व 324 है जबकि अमेरिका में लगभग 3 तथा आस्ट्रेलिया में लगभग 2 ही है। भारत में जनसंख्या के घनत्व की समस्या दूसरे देशों की तुलना में अधिक है, परन्तु भारत के अन्दर विभिन्न राज्यों में इसमें बड़ी भिन्नता है उदाहरण के तौर पर पं0 बंगाल में लगभग 904 व्यक्ति प्रतिवर्ग किलोमीटर में निवास करते है वहीं उत्तर प्रदेश में 689, सिक्किम में 76 तथा अरूणाचल प्रदेश में मात्र 13 व्यक्ति। देश में क्षेत्रवार जनघनत्व में भिन्नता कुछ इस प्रकार है कि उत्तरी क्षेत्र में 223, मध्य क्षेत्र में 347, पूर्वी क्षेत्र में 525, उत्तर पूर्वी क्षेत्र में 151 तथा पश्चिमी क्षेत्र में 293।

भारत में जनसंख्या समस्या के संख्यात्मक पहलू की एक मुख्य बात यह भी है कि जहाँ 1981–91 की जनगणना के अनुसार प्रति हजार 31.5 की जन्मदर है वही 1991–2001 में 20.1 की जन्म–दर है जो अन्य देशों की तुलना में बहुत अधिक है। देश के अन्दर प्रान्तों में भी यह जन्मदर भिन्न–भिन्न है। उदाहरण स्वरूप आन्ध्र प्रदेश में 21.7, असम में 27.0 बिहार में 30.4 उत्तर प्रदेश में 20.7 व केरल में 18.0 प्रतिशत है। जहाँ एक ओर प्रान्तों में काफी भिन्नता है, वही जाति समूहों में भी जन्मदर भिन्न–भिन्न है। उदाहरण के लिये हरिजनों में यह दर 7.24, बाह्मणों में 7.19 बौद्धों में 4.9 और ईसाइयों में 2.7 ही है। इसका कारण इन विभिन्न वर्गों में पायी जाने वाली जैविक संरचना एवं सामाजिक, सांस्कृतिक विभिन्नतायें है। कुल मिलाकर भारत में

प्रतिशत भू-क्षेत्र एवं प्रतिशत जनसंख्या
(सम्पूर्ण विश्व के सन्दर्भ में)

पैमाना
OY अक्ष पर .....प्रतिशत भू–क्षेत्र एवं प्रतिशत जनसंख्या
OX अक्ष पर ..... भारत, अमेरिका
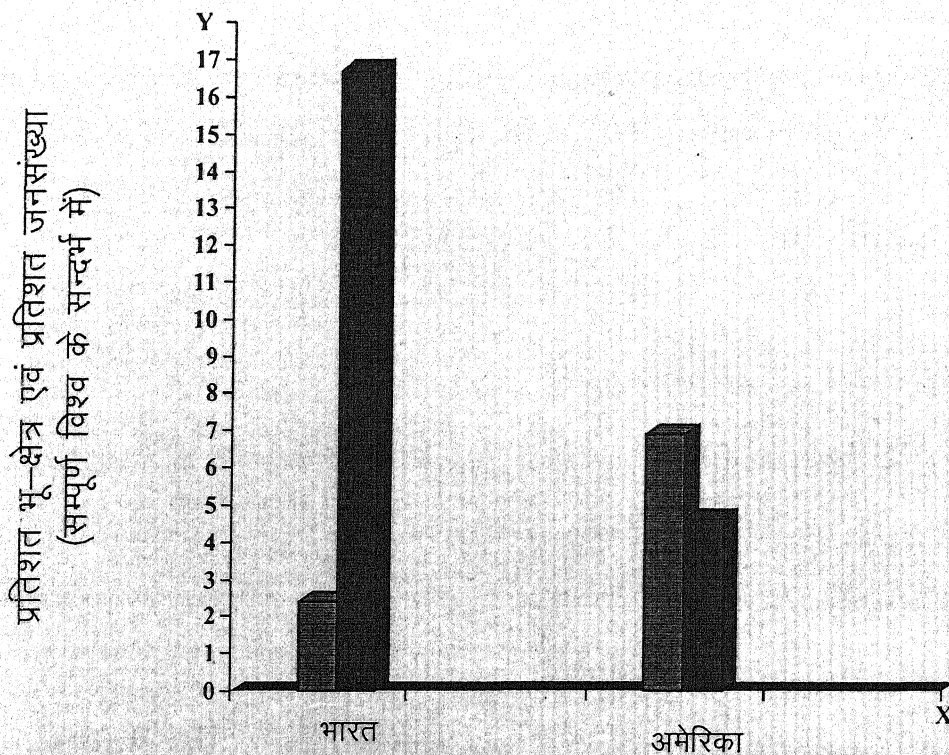
चित्र – 2.1

जन्मदर ऊँची होने के भिन्न कारण उत्तरदायी है जैसे उष्ण जलवायु, धर्म एवं रीति–रिवाज, भाग्यवादिता, रूढिवादिता, विवाह की अनिवार्यता, कम उम्र में विवाह, शिक्षा का अभाव इत्यादि। जन्मदर में उच्च प्रवृत्ति और उसका मुत्युदर में ऊँचा रहना ही भारत में जनसंख्या विस्फोट का कारण है। यद्यपि 1901 से लेकर अब तक भारत में जन्मदर में गिरावट ही आयी है और 1961 के बाद से तो परिवार नियोजन के सफल और कारगर उपायों के कारण यह और तेजी से गिरी है किन्तु दूसरी ओर स्वास्थ्य सुविधाओं के विकास के परिणामस्वरूप मृत्युदर भी काफी तेजी से गिरी है। उदाहरण के लिये 1911 में दोनों के मध्य धनात्मक अंतर 6.6 था वहीं आगे 50 सालों में बढ़कर यह 12.5 हो गया।

1951 के पश्चात् मृत्युदर में आने वाली अति तीव्र गिरावट के परिणामस्वरूप यह अन्तर बढ़ता गया और 1961 में 18.1, 1971 में 22.2, 1981 में 22.5, 1991 में 16.1 तथा 1999 में 17.4 हो गया।

भारत में जनसंख्या से सम्बन्धित तीसरी समस्या यह है कि देश में काफी बड़े हिस्से में जनसंख्या बहुत कम है तथा कुछ क्षेत्र निर्जन पड़े हुये है। उदाहरण के लिये हिमाचल प्रदेश में भारत के कुल भू–क्षेत्र का 1.69 प्रतिशत भाग है वही जनसंख्या का 0.59 प्रतिशत भाग है। मध्य प्रदेश कुल क्षेत्रफल का 13.49 प्रतिशत और जनसंख्या का 5.88 प्रतिशत, राजस्थान में क्रमशः 10.41 प्रतिशत एवं 5.50 प्रतिशत और अरूणाचल प्रदेश में 2.54 प्रतिशत एवं 0.11 प्रतिशत ही है। यद्यपि इन क्षेत्रों के खाली भागों में वातावरण एवं जलवायु की कटुता ने ही मानव को आकर्षित नहीं किया है परन्तु इसके परिणामस्वरूप देश के विभिन्न क्षेत्रों में जनसंख्या संसाधन अनुपात का सन्तुलन बिगड़ता जा रहा है और इस दृष्टि से देश के दो बड़े भाग हो गये है। प्रथम उष्ण जलवायु प्रदेश जैसे केरल, पश्चिम बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश, तमिलनाडु, महाराष्ट्र इत्यादि वास्तव में इन दोनों ही क्षेत्रों में जनसंख्या की समस्यायें हैं, चाहे उनका स्वरूप धनात्मक हो अथवा ऋणात्मक। द्वितीय निम्न जनसंख्या क्षेत्र जैसे –सिक्किम, मिजोरम,

अरूणाचल प्रदेश, लक्षद्वीप इत्यादि।

देश के विभिन्न प्रान्तों में प्रतिव्यक्ति कृषि भूमि अनुपात में भी अन्तर दिखायी देता है। सघन जनसंख्या के क्षेत्रों में तो जनसंख्या में लगातार वृद्धि के कारण यह अनुपात बहुत न्यून हो गया है जिस कारण जनसंख्या के पोषण की क्षमता बहुत गिर गयी है।

जनसंख्या समस्या का एक महत्वपूर्ण पहलू यह है कि देश के संसाधनों का उचित उपयोग नहीं हो पा रहा है। देश में जनसंख्या विस्फोट की स्थिति के कारण अधिकांश संसाधनों का अनुचित उपयोग हो रहा है।

जनसंख्या की समस्या का गुणात्मक पहलू :-

जहाँ जनसंख्या की समस्या के संख्यात्मक पहलू का सम्बन्ध मुख्य रूप से जनसंख्या का वर्तमान विशाल आकार, इसमें लगातार होने वाली वृद्धि की खतरनाक दर, जनसंख्या के धनात्मक इत्यादि से है वही जनसंख्या की समस्या के गुणात्मक पहलू का सम्बन्ध वर्तमान में विद्यमान, कुल जनसंख्या के लिये वस्तुओं और सेवाओं का पर्याप्त एवं कुशल उत्पादन, उत्पादित वस्तुओं व सेवाओं के न्याययुक्त वितरण, जनसंख्या के जीवन–स्तर से होता है। यही कारण है कि सामान्य तौर पर यह कहा जाता है कि भारत में जनसंख्या की समस्या केवल आकार की समस्या नहीं है बल्कि यह कुशल उत्पादन एवं न्याययुक्त वितरण की समस्या भी है।

वास्तव में पिछले चार–पांच दशकों में जिस तीव्रता के साथ हमारी जनसंख्या में वृद्धि हुयी है, उस गति से देश में आवश्यक वस्तुओं और सेवाओं की पूर्ति नहीं बढ़ी है। यदि माल्थस के सिद्धान्त को ध्यान में रखा जाये तो ऐसा होना स्वाभविक ही है, क्योंकि माल्थस के अनुसार जहाँ जनसंख्या में ज्यामितीय वृद्धि होती है, वही खाद्य पदार्थों में अंकगणितीय वृद्धि होती है। आज भारत में 102.7 करोड़ की जनसंख्या है। उसके लिये जिन वस्तुओं एवं सेवाओं की जितनी मात्रा में आवश्यकता है, हमारे यहाँ उन समस्त वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन नहीं हो रहा है इसी कारण देश में मांग

और पूर्ति के मध्य असन्तुलन बना हुआ है। जिसके कारण वस्तुओं की कीमतों में लगातार वृद्धि मौजूद है। यद्यपि इस स्थिति से निपटने के लिये प्रतिवर्ष भारी मात्रा में विभिन्न वस्तुओं के आयात किये जाते है किन्तु इसकी भी एक सीमा है। अतः आयातों के बावजूद अभी भी यह नहीं कहा जा सकता है, कि देश की कुल जनसंख्या के लिये सभी कुछ पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त इन भारी आयातों के कारण देश का भुगतान सन्तुलन भी प्रतिकूल रूप से प्रभावित हो रहा है। इस समस्या का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि जहाँ जनसंख्या में स्वतंत्रता के पश्चात् अब तक 5.68 प्रतिशत वार्षिक की औसत दर से वृद्धि हुयी है, वहीं देश में आर्थिक वृद्धि की दर 3.5 प्रतिशत ही रही है। जनसंख्या की बढ़ती हुयी मांग के कारण भारी मात्रा में आयात होता रहा है, जिसके परिणामस्वरूप हमारे देश का भुगतान–सन्तुलन घाटे पर रहने के लिये मजबूर रहा है। यद्यपि योजना के 50 वर्षों के दौरान देश में बहुत कुछ पहले से बहुत अधिक मात्रा में उत्पन्न किया जाने लगा है तथापि जनसंख्या के विशाल आकार को देखते हुये वह अपर्याप्त ही है। यही कारण है कि भारत में अधिकांश जनसंख्या का जीवन–स्तर आज भी बहुत निम्न है। अभी भी एक अनुमान के अनुसार 20 प्रतिशत जनसंख्या को केवल एक समय का ही भोजन मिल पाता है। यदि विश्व के कुछ अन्य देशों के उपयोग के स्तरों से एक औसत भारतीय के उपयोग स्तर की तुलना करे तो स्थिति बड़ी शोचनीय नजर आती है। 1956 से 2001 के दौरान जहाँ खाद्यान्नों का नेट उत्पादन 627 लाख टन से बढ़कर 2000 लाख टन हुआ अर्थात् लगभग 318.98 प्रतिशत की वृद्धि। वही इसी दौरान जनसंख्या में लगभग 284.41 प्रतिशत की वृद्धि हो जाने के कारण 1956 में खाद्यान्नों की प्रति व्यक्ति उपलब्धता 431 ग्राम थी जो 1999 में 467 ग्राम हो सकी अर्थात् मात्र 18 प्रतिशत की वृद्धि। भारत में कुछ प्रमुख वस्तुओं की प्रतिव्यक्ति उपलब्धता का निम्न स्तर तालिका 2.1 एवं ग्राफ 2.1 में स्पष्ट है।

तालिका २.१

भारत में वस्तुओं की प्रतिव्यक्ति उपलब्धता (किलोग्राम)

वर्ष	खाद्य तेल	वनस्पति	चीनी	कपड़ा मी0
1960—61	3.2	0.8	4.8	15.6
1970—71	3.5	1.0	7.4	15.6
1980—81	3.8	1.2	7.3	14.7
1990—91	5.4	1.0	12.5	18.6
2000—01	7.3	1.5	14.7	23.9

स्रोत :— इकनॉमिक सर्वे 2001—02

जनसंख्या की समस्या के गुणात्मक पहलू का एक पक्ष यह भी है कि जो कुछ भी कुल उत्पादन है उसका समस्त जनसंख्या के मध्य न्यायोचित वितरण नहीं हो पा रहा है। यद्यपि पिछले कुछ दशकों से देश की सरकार ने सार्वजनिक वितरण व्यवस्था को बनाये रखते हुये जनसंख्या के निम्न एवं मध्यम वर्ग की समस्त आवश्यक वस्तुओं को पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध कराने के असफल प्रयास किये है परन्तु जनसंख्या के विशाल आकार के सम्मुख यह व्यवस्था असफल ही रही है और आज भी स्थिति यह है कि जनसंख्या के एक छोटे से भाग के पास तो देश के उत्पादन का एक बहुत बड़ा भाग पहुँचता है जबकि जनसंख्या के एक बड़े भाग के पास उत्पादन का बहुत कम भाग पहुँच रहा है जिससे अमीरी और गरीबी के बीच की खाई और ज्यादा बढ़ती जा रही है।

आज भारत के सामने जनसंख्या की जो समस्या है, उसका सर्वाधिक गंभीर भाग यह है कि जनसंख्या में अधिकांश वृद्धि निचले वर्ग द्वारा हो रही है। 'वंश बढ़े डफाली होय' की कहावत चरितार्थ हो रही है। अतः हमें केवल संख्या के नियंत्रण के लिये राष्ट्रीय स्तर पर प्रयास की ही आवश्यकता नहीं अपितु वंश—सुधार की भी आवश्यकता है। इस बात की नितांत आवश्यकता है कि जनसंख्या में गुणात्मक पहलू पर अधिक ध्यान केन्द्रित किया जाये।

भारत में वस्तुओं की प्रतिव्यक्ति उपलब्धता (किलो ग्रा०)

पैमाना

OY अक्ष पर .....वस्तुओं की प्रतिव्यक्ति उपलब्धता (कि0ग्रा0 में)

OX अक्ष पर .....वर्ष
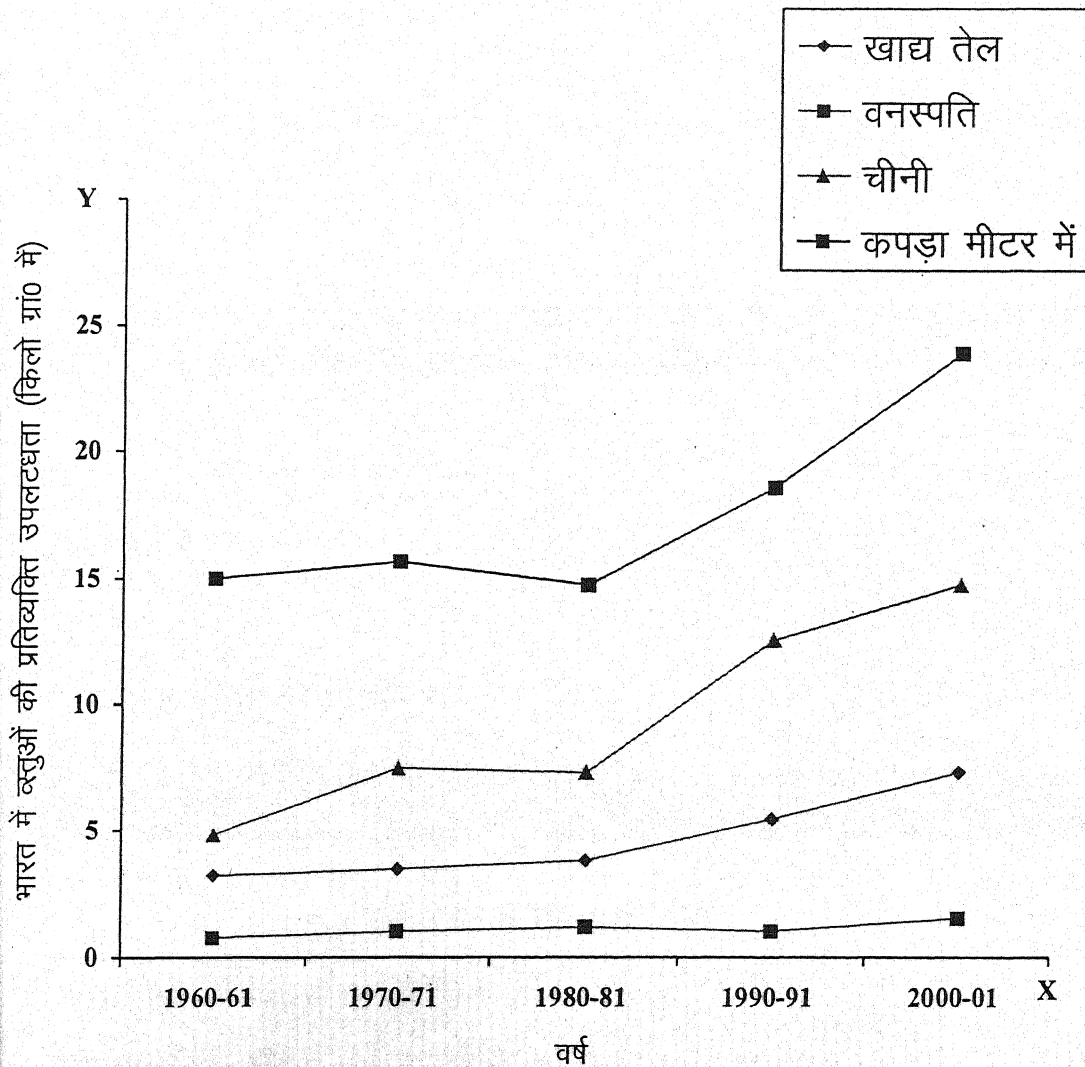
ग्राफ – 2.1

किसी देश की जनसंख्या का प्रमाण या किस्म के संकेतक उस देश के निवासियों की प्रत्याशित आयु, साक्षरता के स्तर और तकनीकी प्रशिक्षण के स्तर आदि होते है। आजकल स्वास्थ, शिक्षा, सामाजिक सुरक्षा तथा अन्य समाज सेवाओं पर किया गया व्यय, मानव–पूँजी संबंधी विनियोग कहा जाता है।

भारत वर्ष में जनसंख्या के हीन प्रमाण के स्पष्ट संकेत निम्नलिखित है–

1. स्वास्थ्य का स्तर।
2. साक्षरता का स्तर।

१. स्वास्थ्य का स्तर –:

स्वास्थ्य जीवन के प्रत्येक पहलू पर मानव को प्रभावित करता है। केवल स्वस्थ्य मनुष्य ही धन कमा सकता है, जातीय, सामाजिक, नैतिक, वैयक्तिक और सब प्रकार के कर्तव्यों का पालन कर सकता है, अतः मानव की सर्वांगीण उन्नति तथा विकास का आधार स्वास्थ्य ही है। "बीमारियां किसी समुदाय के हष्ट–पुष्ट और शक्तिवान् लोगों को मारकर और काम करने वालों की संख्या में न काम करने वालों को अधिक बढ़ाकर विनाश कर सकती है। दूसरे, यदि बीमारों के प्राण नहीं लेती, तो उन्हें अशक्त अवश्य कर देती है, और इस प्रकार श्रमिकों की संख्या ही में कमी नहीं, वरन् श्रम की शक्ति में भी कमी कर देती है।"1

स्वास्थ्य की दृष्टि से भी भारत की स्थिति अत्यंत शोचनीय है, जिसका स्पष्ट ज्ञान निम्नलिखित दो तत्वों से होता है :–

अ. निम्न प्रत्याशित आयु।

ब. बीमारियों की व्यापकता।

अ. निम्न प्रत्याशित आयु –:

मानव शक्ति की उपयोगिता अन्य बातों के साथ–साथ नागरिकों की प्रत्याशित आयु पर निर्भर करती है। यदि मृत्यु–दर ऊँची रहती है, तो प्रत्याशित आयु का अनुपात नीचा रहता है। और ज्यों–ज्यों मृत्यु–दर कम होती जाती है, औसत

प्रत्याशित आयु बढ़ती जाती है। सन् 1911 के उपरान्त भारत में स्त्री और पुरूष की प्रत्याशित आयु मंद गति से किन्तु निश्चय पूर्वक बढ़ती जा रही है, क्योंकि इधर कई दशकों से मृत्यु–दर निरन्तर गिर रही है, जैसा कि निम्न तालिका 2.2 से स्पष्ट होता है।

तालिका २.२

भारत में जन्म के समय प्रत्याशित आयु (वर्षो में)

वर्ष	व्यक्ति	पुरूष	स्त्री
1911	20.1	22.59	23.31
1921	24.7	24.80	24.70
1931	26.8	26.91	26.50
1941	31.8	32.09	31.37
1951	32.0	32.45	31.66
1961	41.2	41.9	40.60
1971	46.35	47.10	45.60
1981	54.0	54.1	53.8
1991	59.9	55.9	59.9
99–2001	61.1	62.30	65.27
01–2006 } अनुमानित	–	63.87	66.91
06–2011 } अनुमानित	–	65.65	67.67
11–2016 } अनुमानित	–	67.04	69.18

स्रोत :– अरूणेश सिंह : भारतीय अर्थव्यवस्था एक झलक, पेज 2.7

उपरोक्त तालिका 2.2 से स्पष्ट होता है कि 1921 से पूर्व भारत में जीवन प्रत्याशा बहुत निम्न एवं उसमें उतार–चढ़ाव होता रहता था। परन्तु 1921 के पश्चात् भारत में स्त्रियों तथा पुरूषों की प्रत्याशित आयु मन्द गति से किन्तु लगातार बढ़ती जा रही है। 1991 में पुरूषों एवं स्त्रियों में जन्म के समय जीवन प्रत्याशा क्रमशः 55.9 वर्ष

एवं 59.9 वर्ष थी। अनुमान है कि सन् 2006 तक भारत में पुरूषों एवं स्त्रियों की जन्म के समय प्रत्याशित आयु क्रमशः 63.87 वर्ष तथा 66.91 वर्ष हो जायेगी।

प्रत्याशित आयु मृत्यु–दर पर निर्भर करती है और मृत्यु–दर स्वयं, महामारी, रोग, जीवन दशाओं, स्त्रियों की देखभाल, शिशु–मरण दर और पोषण–तत्व पर निर्भर करती है। भारत में बहुत समय तक प्रत्याशित आयु कम रहने का मुख्य कारण यह है कि यहाँ मृत्यु–दर की अधिकता थी।

यद्यपि भारत में प्रत्याशित आयु में वृद्धि हुयी है, फिर भी अन्य देशों की तुलना में वह बहुत कम है। प्रत्याशित आयु की दृष्टि से भारत अब भी बहुत से देशों से पिछड़ा हुआ है। उदाहरण के लिये भारत में प्रत्याशित आयु 62.3 वर्ष है। जबकि जापान में 80.5, स्वीडन में 79.3, हांगकांग में 79.1, आइसलैण्ड में 78.9, आस्ट्रेलिया में 78.7 वर्ष रंही है। तालिका 2.3 एवं चित्र 2.2 से स्पष्ट है –

तालिका २.३

जन्म के समय प्रत्याशित आयु वर्षो में

देश	वर्षों में (1995–2015)
जापान	80.5
स्वीडन	79.3
हांगकांग	79.1
आइसलैण्ड	78.9
आस्ट्रेलिया	78.7
भारत	62.3

स्रोत :– अरूणेश सिंह : भारतीय अर्थव्यवस्था एक झलक, पेज 3.12

तालिका 2.3 में विभिन्न देशों की जन्म के समय प्रत्याशित आयु की प्रवृत्ति दर्शायी गयी है। जिससे स्पष्ट पता चलता है कि भारत में औसत जीवन अवधि अपेक्षाकृत कम है। भारत में प्रत्याशित आयु के संबंध में एक उल्लेखनीय बात यह है कि यहाँ स्त्रियों की जीवन–अवधि पुरूषों से कम है, जबकि पश्चिमी देशों में यह लगभग

प्रत्याशित आयु (वर्षों में)
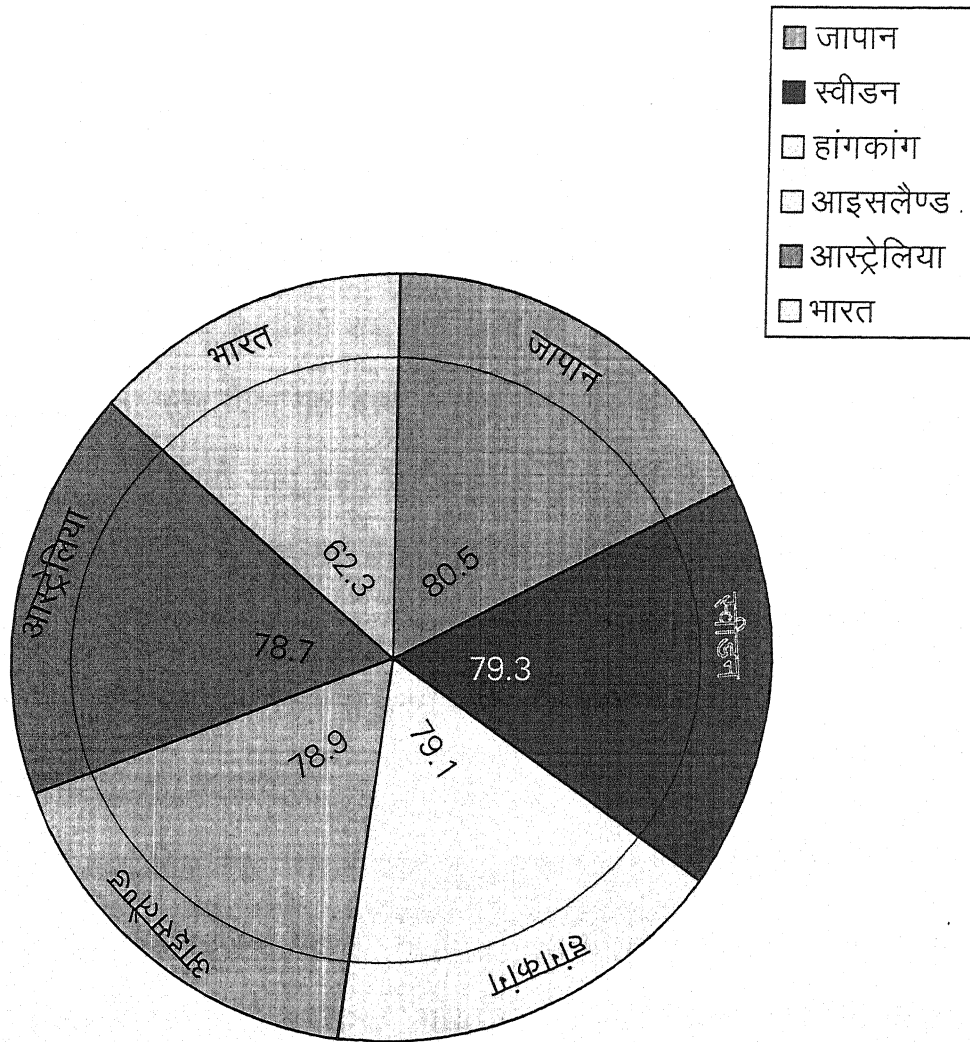
चित्र – 2.2

बराबर अथवा पुरूषों से अधिक है। भारत वर्ष में स्त्रियों की जीवन–अवधि अपेक्षाकृत कम होने का मुख्य कारण स्त्रियों की आसामयिक मृत्यु है। इसके भी कुछ कारण जैसे, बाल विवाह, पर्दा–प्रथा, मातृत्व व्यवस्था का अभाव, प्रसव सम्बन्धी सुविधाओं के ज्ञान का अभाव, निर्धनता आदि कुछ ऐसी बातें हैं, जिनके कारण भारतीय स्त्रियों की अधिक मुत्यु होती है। हमारे देश में अविवेकपूर्ण मातृत्व के कारण भी स्त्रियों की अधिक मृत्यु होती है फलतः भारत वर्ष में स्त्रियों की जीवन–अवधि पुरूषों की अपेक्षा कम है।

विगत वर्षों में भारत में प्रत्याशित आयु में वृद्धि प्रतिवर्ष एक की दर से हो रही है। यह शुभ प्रवृत्ति है, जिसे तब तक जारी रहना चाहिये जब तक कि भारत में प्रत्याशित आयु का स्तर विकसित देशों में विद्यमान स्तर के बराबर न हो जाये।

अतः औसत आयु बढ़ने से देश के आर्थिक विकास पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। बहुत से विद्धानों का तो यह मत है कि आर्थिक विकास में औसत जीवन–अवधि का जितना महत्व है, उतना जनसंख्या वृद्धि का भी नहीं है। भारत जैसे अर्द्ध विकसित देशों में औसत जीवन–अवधि कम रहने से बचत अनुपात भी काफी नीचा है।

ब. बीमारियों की व्यापकता –:

अर्द्ध विकसित देशों में खाद्यान्न का अभाव रहता है और लोगों को भरपेट भोजन नहीं मिल पाता। जिन्हें पेट भर भोजन मिलता भी है, उन्हें पौष्टिक भोजन नहीं मिल पाता। सर जॉन मेगा के अनुसार, " भारत में केवल 39 प्रतिशत लोगों को पौष्टिक एवं 41 प्रतिशत लोगों को अपौष्टिक भोजन मिल पाता है, शेष 20 प्रतिशत व्यक्तियों को तो बिल्कुल ही भोजन नहीं मिलता है।" पोषक आहार सलाहकार समिति के अनुसार भारत में 30 प्रतिशत परिवारों में भोजन में कैलोरी आवश्यक मात्रा में नहीं मिल पाती और यदि भोजन वजन में काफी मिल जाता है, तो भी भोजन निश्चित ही असंतुलित रहता है जिसमें अन्न की प्रधानता रहती है और उत्तम पोषक तत्व वाले स्वास्थ्य–वर्धक तत्व का अभाव रहता है। दूध, दाले, गोश्त, अण्डा, मछली, सब्जी तथा फलों का अंश बहुधा बहुत कम होता है। इसका परिणाम यह होता है कि भोजन में पर्याप्त मात्रा में

विटामिन, चर्बी, क्षार, प्रोटीन तथा अन्य आवश्यक तत्वों का अभाव रह जाता है और अर्द्धविकसित देश के निवासियों का स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता, श्रम–शक्ति दुर्बल रहती है।

यही नहीं अर्द्ध विकसित देशों में सामान्य चिकित्सा सुविधाओं का अभाव रहता है और अनेक प्रकार की बीमारियां जैसे – मलेरिया, हैजा, चेचक आदि व्यापक रूप से फैली रहती है। अर्द्ध विकसित देशों में आय का स्तर कम होने के कारण सार्वजनिक स्वास्थ्य पर राष्ट्रीय आय का बहुत ही अल्प भाग व्यय किया जाता है। उदाहरणार्थ अमेरिका में प्रतिवर्ष प्रतिव्यक्ति के पीछे 140 रूपये सार्वजनिक स्वास्थ्य पर व्यय किये जाते है जबकि भारत में केवल 2 रूपये ही व्यय किये जाते है। जैसा कि तालिका 2.4 से स्पष्ट है।

तालिका २.४
सार्वजनिक स्वास्थ्य पर व्यय

देश	कुल राष्ट्रीय उत्पादन का प्रतिशत	प्रति व्यक्ति प्रतिवर्ष व्यय
भारत	0.6	2
वर्मा	0.9	3
श्री लंका	2.8	17
मलाया	1.5	12
स्वीडन	3.2	190
अमेरिका	1.2	140

स्रोत :– वी0 सी0 सिन्हा, जनांकिकी के सिद्धान्त पृष्ठ–363

विकसित देशों की तुलना में भारत में जन्म लेने वाले बच्चों की बहुत कम समय तक जीने की आशा की जाती है। स्वयं आयु–प्रत्याशा, महामारी, शिशु मरण–दर आदि अनेक तत्वों पर निर्भर होती है। भारत की अधिकांश ग्रामीण जनता मलेरिया, हैजा, चर्म और कुष्ठ आदि रोगों से पीड़ित है। भारत में पुरूषों की अपेक्षा स्त्रियों में अंधापन अधिक है। भारतीय चिकित्सा शोध–परिषद के सर्वेक्षण के अनुसार भारत में मैसूर राज्य में अंधों की संख्या सबसे अधिक है। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि विश्व के एक तिहाई नेत्रहीन व्यक्ति भारत में ही निवास करते हैं।

डॉ0 मारिया एगबेन्स के अनुमानानुसार विकसित और अर्द्ध विकसित देशों में जनसंख्या का 40 प्रतिशत भाग मानसिक दृष्टि से दुर्बल है। ऐसा अनुमान है कि भारत में लगभग 20 लाख व्यक्ति मानसिक विकृतियों से ग्रस्त है, भारत में असम, पश्चिमी बंगाल, उत्तर प्रदेश के तराई भाग में पागलपन का अधिक प्रकोप है। मानसिक दुर्बलता के कारण जो अगली संतानें, उत्पन्न होती है वे भी मन्द–बुद्धि, झक्की एवं पागल होती हैं, अतः ऐसे लोगों का बन्ध्याकरण होना आवश्यक है, ताकि समाज में ऐसे लोगों का भार न बढ़ सके।

भारत में लगभग 37.2 लाख व्यक्ति कुष्ठ रोग से पीड़ित हैं, लगभग 20 प्रतिशत रोगी संक्रामक कुष्ठ के शिकार है। कुष्ठरोग असंतुलित आहार, गरीबी, घनी बस्ती आदि के कारण उत्पन्न होता है। एक अनुमान के अनुसार भारत में 1 लाख जनसंख्या के पीछे 70 पुरूषों और 50 महिलाओं में बहरापन व गूगांपन पाया जाता है। बहरापन के प्रमुख कारण मलेरिया, तेजबुखार, टाइफाइड, टांसिल्स, असंतुलित आहार व संक्रामक रोग आदि। भारत वर्ष में इसे नियन्त्रित करने के लिये पर्याप्त प्रयास किये जा रहे है।

परन्तु फिर भी यहाँ स्वास्थ्य सेवायें अपर्याप्त है अतः इस बात की आवश्यकता है कि स्वास्थ्य पर अधिक व्यय किया जाय, जिससे कि औसत जीवन बढ़े, बीमारियों से छुटकारा मिले, लोगों के स्वास्थ्य में सुधार हो सके और उनकी कार्यकुशलता बढ़ सके।

२. साक्षरता का स्तर –:

जनसंख्या के प्रमाण का एक अन्य महत्वपूर्ण संकेतक साक्षरता का स्तर है। सन् 1951 की जनगणना के अनुसार साक्षर व्यक्ति का तात्पर्य सात वर्ष के ऊपर ऐसे व्यक्ति से है, जो कम से कम साधारण पत्र लिख–पढ़ सके। साक्षरता के अध्ययन से किसी देश के लोगों की शिक्षा, संस्कृति, बुद्धि का अनुमान लगाया जा सकता है। शिक्षा किसी भी देश के निवासियों की भावनाओं और उनके सामाजिक मूल्यों की प्रतीक होती है। पुराने समय में शिक्षा को मात्र नैतिक विकास का साधन समझा जाता था और सामाजिक कल्याण में शिक्षित व्यक्ति का योगदान एक अच्छे नागरिक के नाते ही विचारणीय होता था, परन्तु आज के युग में शिक्षा का उद्देश्य केवल यह नहीं होना चाहिये कि उसकी

सहायता के कोई भी व्यक्ति अपने व्यक्तित्व, चरित्र और बुद्धि का विकास कर सके, बल्कि उससे व्यक्ति की उत्पादन क्षमता बढ़ाने में भी सहायता मिलनी चाहिये।

अतः शिक्षा राष्ट्र के लिये एक सर्वोपरि साधन है जो आर्थिक विकास की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण योगदान कर सकता है। डॉ0 वी0 के0 आर0 वी0 राव के शब्दों में "हमारे देश में जहां आर्थिक विकास का वृहद कार्यक्रम चल रहा है और जिसके अन्तर्गत विभिन्न कार्यक्रम आ जाते है, वहाँ यह आवश्यक है कि शिक्षा–प्रणाली वर्तमान तथा नवोदित व्यवसायिक पद्धति के अनुकूल हो।"2 शिक्षा के पुराने व नवीन दृष्टिकोण की तुलना करते हुये डॉ0 राव लिखते है–"एक समय वह भी था जब भारतीय विश्व विद्यालयों में उप–कुलपतियों की यह धारणा थी कि शिक्षा को आर्थिक दृष्टि से देखना ऐसा ही है, जैसे बाजार–भाव के अनुसार उसका महत्व आंकना। जबकि वस्तु–स्थिति यह है कि शिक्षा अपने में साध्य ही है और उसका संबंध ज्ञान प्राप्त करने और व्यक्तित्व के विकास करने से है, न कि उसे रोजगार योग्य बनाने से है। किन्तु अब स्थिति बदल गयी है।"

शिक्षा पर होने वाला व्यय मानवीय साधनों में एक उत्पादक व्यय है। "शिक्षा मानव साधन में विनियोग जैसा है, जो आर्थिक विकास में योग देने वाले साधनों के बीच महत्वपूर्ण कार्य करता है।" शिक्षा पर किस सीमा तक व्यय किया जाना चाहिये। इस सम्बन्ध में स्टोनियर एवं हेग का विचार है," राष्ट्रीय दृष्टिकोण से शिक्षा पर किया जाने वाला व्यय, चाहे वह स्कूल पर किया जाय या कॉलेज पर या विश्वविद्यालय पर किया जाय, उस समय तक बढ़ता जाना चाहिये जब तक कि सीमा पर प्राप्त किया गया प्रतिफल अर्थव्यवस्था में अन्यत्र दूसरे विनियोगों से प्राप्त होने वाले प्रतिफल के बराबर न हो जाय।"3

शिक्षा पर विशुद्ध आर्थिक दृष्टिकोण से विचार करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि शैक्षणिक कार्यक्रम उसी आधार पर बनने चाहिये जिस आधार पर औद्योगिक योजनाये बनायी जाती है। शिक्षा में किये जाने वाले विनियोग के संबंध में लागत एवं लाभ का एक युक्तिसंगत हिसाब लगाया जाना चाहिये। यह एक निश्चित उत्पादक विनियोग है।

भारत के संदर्भ में डा0 राव ने लिखा है "आज हमारे देश पर चरित्र–संकट मंडरा रहा है और इसका मुकाबला हम केवल इस तरह की शिक्षा देकर कर सकते हैं, जो मानवता और चरित्र–निर्माण की दिशा में प्रवृत्त हो। निःसन्देह अर्थव्यवस्था की अवस्थायें पूरी करना शिक्षा का कर्त्तव्य है और हमारे विश्वविद्यालयों में उन कौशलों और मनोवृत्तियों तथा अनुसंधान कार्यों को प्रश्रय दिया जाना चाहिये, जिनकी हमारी सुनियोजित अर्थव्यवस्था की आवश्यकता पूरी करने तथा आर्थिक–वृद्धि की दर तीव्रतर करने के लिये आवश्यक है।"4 अतः आज के लिये योजनाकारों, शिक्षाविदों, अध्यापकों, माता–पिता और युवकों सभी को शिक्षा के नवीनतम दृष्टिकोण के प्रति सजग होने की आवश्यकता है। तभी सामाजिक और आर्थिक विकास सुचारू और समन्वित रूप से हो सकेगा। इस प्रकार शिक्षा के महत्व को विस्मृत नहीं किया जा सकता है।

जे0 आर0 रेले और तारा कानितकर द्वारा 1966 में वृहत्तर बम्बई क्षेत्र का फर्टिलिटी एण्ड फैमिली प्लानिंग सर्वे किया गया जिसकी उपलब्धियों से साक्षरता के महत्व पर प्रकाश पड़ता है, जो निम्नलिखित हैं –

1. उच्च शिक्षा प्राप्त महिलाओं में जन्म–दर कम थी।
2. जिन महिलाओं ने स्नातक या उससे ऊपर के स्तर की शिक्षा पाई थी, उनके विवाह के समय आयु निरक्षर या अर्द्ध–शिक्षित महिलाओं से अधिक थी।
3. हाई स्कूल या इससे ऊपर शिक्षा प्राप्त माताओं में बाल मुत्यु–दर न्यूनतम थी।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि साक्षरता किसी देश के आर्थिक विकास, सामाजिक उत्थान और प्रजातांत्रिक स्थायित्व के लिये आवश्यक है।

भारत में साक्षरता –:

भारत में शिक्षा के विस्तार का प्रमुख उद्देश्य, देश में तकनीकि प्रगति करने के अलावा यह भी है कि ऐसे समाज की स्थापना की जाय, जिसकी आधारशिला स्वतंत्रता सामाजिक न्याय तथा सभी को समान अवसर पर आधारित हो। साक्षरता के सम्बन्ध में हमारे देश की स्थिति अत्यन्त दयनीय है। देश की अधिकांश जनसंख्या

साक्षरता से अनभिज्ञ है। अभी भी लगभग जनसंख्या का केवल 65 प्रतिशत ही साक्षर है तथा शेष 35 प्रतिशत निरक्षर है। निरक्षरता का इतना बड़ा प्रतिशत देश की विशालकाय जनसंख्या को न केवल उत्पत्ति का एक महत्वपूर्ण साधन एवं सार्थक साधन बनने से रोक रहा है बल्कि व्यापक रूप से फैली अशिक्षा विभिन्न सामाजिक समस्या को भी पैदा कर रही है। तालिका 2.5 में 1901 से 2001 तक पुरुष एवं महिला साक्षरता को दर्शाया गया है।

तालिका २.५

१९०१-२००१ के बीच पुरूष एवं महिला साक्षरता की प्रगति

वर्ष	पुरूष	महिला
1901	9.83	0.60
1911	19.56	1.05
1921	12.21	1.81
1931	15.59	2.93
1941	24.90	7.30
1951	27.16	8.86
1961	40.40	15.35
1971	45.96	21.97
1981	56.38	29.76
1991	64.13	39.29
2001	75.86	54.16

स्रोत :– सेन्सस ऑफ इण्डिया 2001 सिरीज 1 पेपर 1

तालिका 2.5 ग्राफ 2.2 एवं चित्र 2.3 से स्पष्ट है कि 1951 तक महिलाओं में साक्षरता पुरूषों के अनुपात में बहुत कम थी। 1961 से 2001 में इसमें थोड़ा सुधार हुआ है। इस विषमता को दूर करने हेतु स्त्रियों को साक्षर बनाने के लिये विशेष कार्यक्रम को मजबूत बनाना होगा।

१९०१ से २००१ के बीच पुरूष एवं महिला साक्षरता की प्रगति

पैमाना

OY अक्ष पर .....साक्षरता का प्रतिशत
OX अक्ष पर .....वर्ष
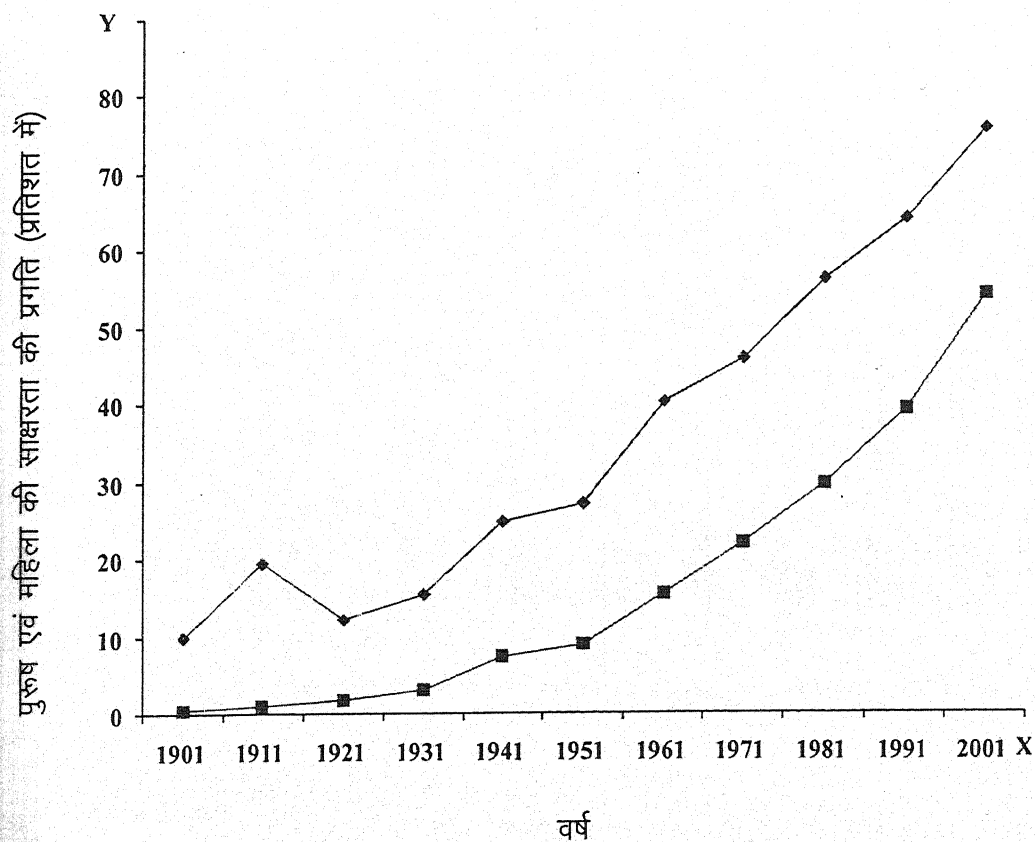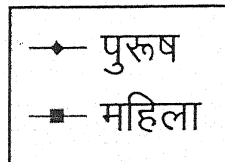
ग्राफ – 2.2

पुरूष एवं महिला की साक्षरता प्रगति

पुरूष
महिला

Y
80
70
60
50
40
30
20
10
0

साक्षरता प्रतिशत में

1901 1911 1921 1931 1941 1951 1961 1971 1981 1991 2001 X

वर्ष
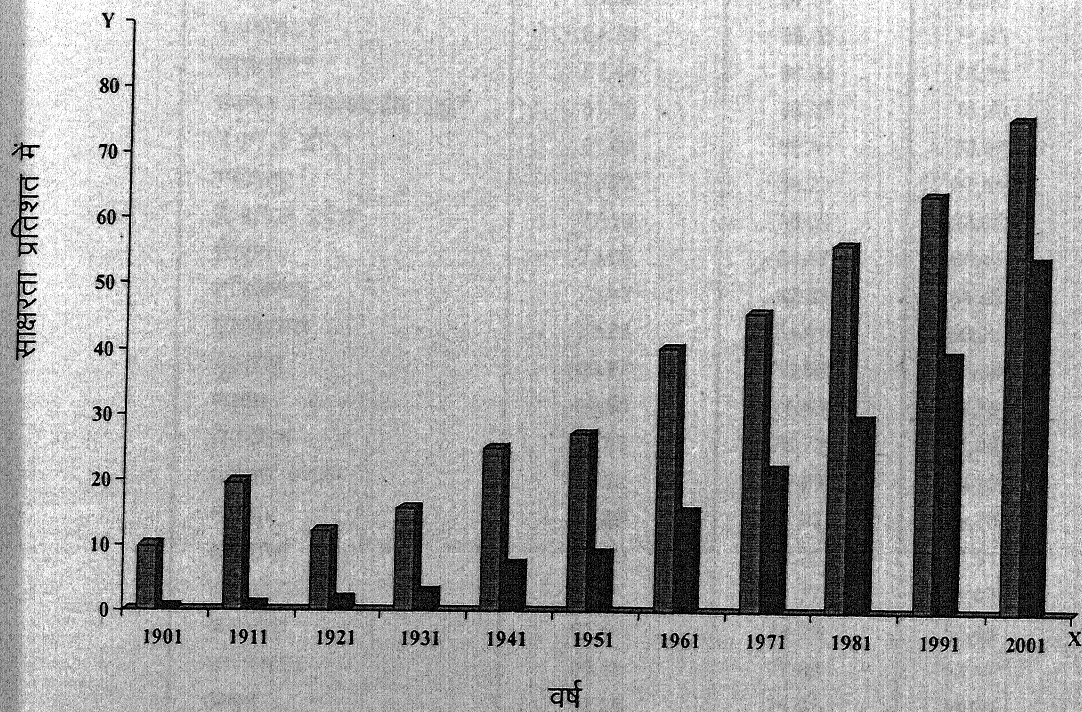
चित्र – 2.3

उपलब्ध आँकडों के आधार पर महिला साक्षरता के अनुसार यदि राज्यों को क्रमवार रखा जाये तो उससे यह पता चलेगा कि राज्य भी महिला साक्षरता के हिसाब से उतने ही पीछे है। तालिका 2.6 एवं मानचित्र 2.1 (A) व मानचित्र 2.1 (B) से देश के विभिन्न राज्यों में पुरुषों एवं महिला साक्षरता का प्रतिशत स्पष्ट हो जाता है।

तालिका २.६
देश के विभिन्न राज्यों में पुरूष एवं महिला साक्षरता का प्रतिशत

राज्य	कुल	पुरूष	महिला
केरल	90.92	94.20	87.86
मिजोरम	88.49	90.69	86.13
लक्षद्वीप*	87.52	93.15	81.56
गोवा	82.32	88.88	75.51
दिल्ली*	81.82	87.37	75.00
चण्डीगढ*	81.76	85.65	76.65
पांडिचेरी*	81.49	88.89	74.13
अंडमान व निकोबार द्वीप समूह*	81.18	86.07	75.29
दमन व द्वीप*	81.09	88.40	70.37
महाराष्ट्र	77.27	86.27	67.51
हिमाचल प्रदेश	77.13	86.02	68.08
त्रिपुरा	73.66	81.47	65.41
तमिलनाडु	73.47	82.33	64.55
उत्तरांचल	72.28	84.01	60.26
गुजरात	69.97	80.50	58.60
पंजाब	69.95	75.63	63.55
सिक्किम	69.68	76.73	61.46
पश्चिम बंगाल	69.22	77.58	60.22
मणिपुर	68.87	77.87	59.70
हरियाणा	68.59	79.25	56.31
नागालैण्ड	67.11	71.77	61.92
कर्नाटक	67.04	76.29	57.45
छत्तीसगढ़	65.18	77.86	52.41
असम	64.28	71.93	56.03
मध्य प्रदेश	64.11	76.80	50.28
उड़ीसा	63.61	75.95	50.97
मेघालय	63.31	66.14	60.41
आन्ध्र प्रदेश	61.11	70.85	51.17
राजस्थान	61.03	76.46	44.34
दादर व नगर हवेली*	60.03	73.32	42.99
उत्तर प्रदेश	53.36	70.23	42.98
अरूणाचल प्रदेश	54.74	64.02	44.24
जम्मू व कश्मीर	54.46	65.75	41.82
झारखण्ड	54.13	67.94	39.38
बिहार	47.53	60.32	33.57

स्रोत :– प्रतियोगिता दर्पण 2003 / भारतीय अर्थव्यवस्था, पृष्ठ 53

Based upon Survey of India map with the permission of the Surveyor General of India.

The territorial waters of India extend into the sea to a distance of twelve nautical miles measured from the appropriate base line.

The interstate boundaries between Arunachal Pradesh, Assam and Meghalaya shown on this map are as interpreted from the North-Eastern Areas (Reorganisation) Act, 1971 but have yet to be verified.

…sed upon Survey of India map with the permission of the Surveyor General of India.

…e territorial waters of India extend into the sea to a distance of twelve nautical miles measured …m the appropriate base line.

…e interstate boundaries between Arunachal Pradesh, Assam and Meghalaya shown on this map …as interpreted from the North-Eastern Areas (Reorganisation) Act, 1971 but have yet to be verified.

तालिका 2.6 से स्पष्ट है कि भारत में न केवल महिला साक्षरता का स्तर निम्न है बल्कि साक्षरता के स्तर में अत्यधिक विषमता है। जहाँ एक ओर केरल ऐसा राज्य है जहाँ महिला साक्षरता का स्तर 87.86 प्रतिशत है वही बिहार में 33.57 प्रतिशत, झारखण्ड में 39.38 प्रतिशत जैसे राज्य है। तालिका से स्पष्ट है कि साक्षरता की दृष्टि से केरल प्रथम स्थान पर है, और मिजोरम व लक्षद्वीप क्रमशः द्वितीय व तृतीय स्थान पर है। भारत में शिक्षा की कमी के कारण यहाँ के अधिकांश लोग परम्परावादी, भाग्यवादी और निराशावादी है। निरक्षरता विकास की अवरोधक है। सामाजिक समस्याओं के ज्ञान के लिये शिक्षा का न्यूनतम स्तर आवश्यक है, शिक्षा के अभाव में लोग जनसंख्या की वृद्धि के परिणाम को भी अनुभव नहीं कर पाते। अतः देश के आर्थिक विकास एवं जनसंख्या वृद्धि को रोकने के लिये साक्षरता का प्रसार होना नितान्त आवश्यक है।

जनसंख्या, राष्ट्रीय आय एवं आर्थिक कल्याण

जनसंख्या वृद्धि का राष्ट्रीय आय एवं आर्थिक कल्याण के मध्य परस्पर घनिष्ट सम्बन्ध है। जनसंख्या में होने वाली प्रत्येक वृद्धि प्रत्यक्ष रूप से राष्ट्रीय आय को प्रभावित करती है और राष्ट्रीय आय, आर्थिक कल्याण को।

समाज के कुल कल्याण को दो भागों में विभाजित किया जाता है – 1. आर्थिक कल्याण 2. गैर–आर्थिक कल्याण। ये दोनों प्रकार के कल्याण अन्तर्वर्तित है और इन्हें एक–दूसरे से पृथक करना कठिन है। फिर भी प्रो0 पीगू, आर्थिक कल्याण एवं गैर–आर्थिक कल्याण में भेद करते है। उनके शब्दों में –

"Economics welfare is that part of social welfare that can be brought directely or indirectely to be relation with the messing red of money."5

यदि आर्थिक कल्याण में वृद्धि होती है तो कुल कल्याण अनिवार्य रूप में बढ़ जाता है क्योंकि आर्थिक कल्याण कुल कल्याण का ही भाग है। जो कारण आर्थिक कल्याण में वृद्धि करते है, यह आवश्यक नहीं कि वह कुल कल्याण में भी वृद्धि करें। परिणामतः कुल कल्याण अपरिवर्तित ही रहता है। यह भी सम्भव है कि वह विशेष

कारण आर्थिक कल्याण में वृद्धि की अपेक्षा गैर–आर्थिक कल्याण में अधिक कमी कर देता है। उस दशा में आर्थिक कल्याण में हुई वृद्धि के बावजूद कुल कल्याण में कमी हो जायेगी। जैसा कि 19 वीं शताब्दी में ग्रेट ब्रिटेन में हुआ था जब उत्पादन की तीव्र वृद्धि के परिणामस्वरूप लोगों के आर्थिक कल्याण में निसंदेह वृद्धि हुई थी लेकिन निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि उनके कुल कल्याण में भी उसी अनुपात में वृद्धि हुई थी। इसका कारण यह है कि उस देश के तीव्र औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप वहाँ आध्यात्मिक मूल्यों का ह्यास हो गया था। इससे लोगों के गैर–आर्थिक कल्याण पर निश्चय ही प्रतिकूल प्रभाव पड़ा था।

यह मानकर चला जा सकता है कि आर्थिक कल्याण एवं कुल कल्याण के मध्य धनात्मक सहसम्बन्ध पाया जा सकता है। देश का आर्थिक कल्याण निःसन्देह कई तत्वों पर निर्भर करता है और इसके कई सूचकांक या पैमाने हो सकते है। परन्तु इनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण राष्ट्रीय आय का विचार ही है। सामान्य तौर पर यह माना जाता है कि जब राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है तो इसका धनात्मक प्रभाव होता है अर्थात् लोग अधिक वस्तुओं और सेवाओं का उपयोग कर सकते हैं, जिससे आर्थिक कल्याण में वृद्धि होती है। इसके विपरीत, राष्ट्रीय आय का आकार घटने पर आर्थिक कल्याण कम हो जाता है। परन्तु जनसंख्या वृद्धि एक ऐसा तत्व है जो राष्ट्रीय आय को आर्थिक कल्याण का अधिक विश्वसनीय सूचक बनने देती है। यदि किसी देश की राष्ट्रीय आय बढ़ती है लेकिन जनसंख्या उससे भी अधिक तीव्र गति से बढ़ जाती है तो प्रति व्यक्ति आय निश्चय ही गिर जायेगी और उसके साथ ही साथ लोगों के आर्थिक कल्याण में भी ह्यास हो जायेगा। इसके बाबजूद यदि जनसंख्या में वृद्धि नहीं होती है तो वह अपनी अतिरिक्त आय को श्रमिकों पर, मशीनों, शिक्षा, स्वास्थ्य तथा आधुनिक उपकरणों पर व्यय करता है, जिससे राष्ट्रीय आय ही नहीं बढ़ती बल्कि प्रति व्यक्ति आय में भी वृद्धि होती है, और आर्थिक कल्याण भी बढ़ता है। लेकिन जब जनसंख्या में वृद्धि तीव्र गति से होती है, तब अतिरिक्त पूँजी का उपयोग श्रमिकों को केवल आधुनिक उपकरण

उपलब्ध कराने में व्यय हो जाता है। जिससे पूँजीगत वस्तुओं के त्वरित उत्पादन के परिणामस्वरूप राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है लेकिन प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि नहीं होती है।

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि जनसंख्या वृद्धि के परिणामस्वरूप माँग एवं श्रमशक्ति दोनों के बढ़ने के कारण कुल उत्पादन में वृद्धि की दर जनसंख्या में वृद्धि की दर से कम रह जाये तो राष्ट्रीय आय बढ़ने के बावजूद प्रति व्यक्ति आय नहीं बढ़ती अर्थात् समाज का आर्थिक कल्याण नहीं बढ़ता। भारत जैसे विकासशील देश में यही स्थिति है। यहाँ तेजी से बढ़ने वाली जनसंख्या राष्ट्रीय आर्थिक विकास में अवरोधक बनती रही है। इसका अनुमान तालिका 2.7 में एवं चित्र 2.4 में आंकड़ों के तुलनात्मक अध्ययनों से लगाया जा सकता है।

तालिका २.७

दशक के दौरान जनसंख्या, राष्ट्रीय आय तथा प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि की दर

दशक वर्ष	दशक के दौरान जनसंख्या वृद्धि की दर	दशक के दौरान राष्ट्रीय आय में वृद्धि की दर	दशक के दौरान प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि की दर
1951—60	2.1	3.5	1.4
1961—70	2.5	3.3	0.9
1971—80	2.5	2.5	0.2
1981—90	2.4	5.8	3.0
1991—2000	1.95	6.6	4.8

स्रोत : आर्थिक समीक्षा 2001

उपर्युक्त तालिका 2.7 डा0 चन्द्रशेखर की इस बात का पूर्ण समर्थन करती है कि "जनसंख्या की दृष्टि से हमारे भागने की रफ्तार इतनी तीव्र है कि आर्थिक दृष्टि से परिवर्तनों एवं प्रगति के बावजूद हम एक ही स्थान पर स्थिर है।"6

संक्षेप में, यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि जनसंख्या में वृद्धि समान्य तौर पर राष्ट्रीय आय को धनात्मक आय से प्रभावित करती है, परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि आर्थिक कल्याण को भी इसी प्रकार प्रभावित करें। वास्तव में

जनसंख्या राष्ट्रीय आय एवं प्रतिव्यक्ति आय में वृद्धि की दर

पैमाना

OY अक्ष पर .....वृद्धि की दर

OX अक्ष पर ..... वर्ष
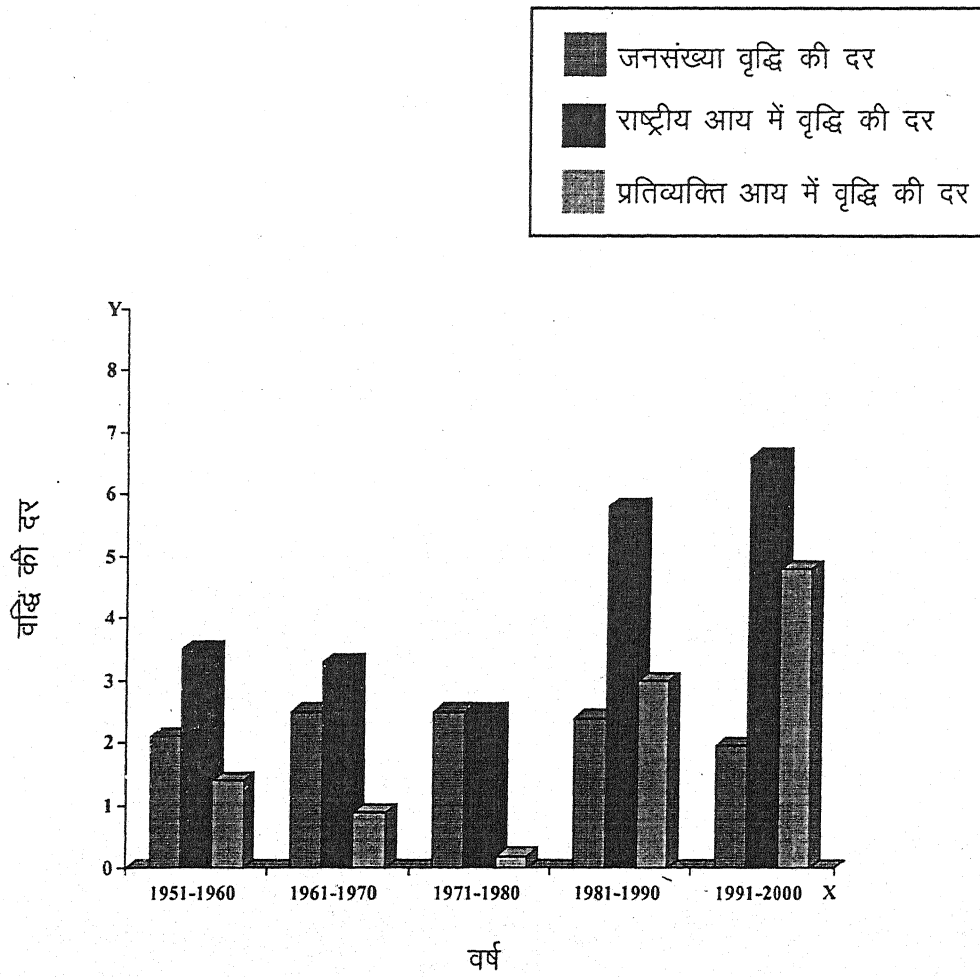
चित्र – 2.4

जनसंख्या वृद्धि के परिणामस्वरूप राष्ट्रीय आय में वृद्धि के माध्यम से आर्थिक कल्याण अनुकूल या प्रतिकूल रूप से प्रभावित होगा। यह इस बात पर निर्भर करता है कि जनसंख्या में वृद्धि का स्वभाव क्या है।

जनाधिक्य एवं सामुदायिक जीवन

जीवन–स्तर किसी व्यक्ति, वर्ग या देश की आर्थिक उन्नति का सूचक होता है। जीवन–स्तर की माप, उपभोग की जाने वाली वस्तुओं की मात्रा तथा रूप द्वारा की जाती है। इसलिये जीवनस्तर किसी व्यक्ति, वर्ग या देश की आर्थिक उन्नति का परिचायक होता है। जीवन–स्तर, जीवन–शैली, सुख–सुविधा के साधनों, उपयोग में लायी जाने वाली वस्तुओं , सम्पन्न निवास स्थानों, वाहन सुविधाओं, शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाओं आदि से आंका जाता है। जीवन–स्तर भिन्न–भिन्न देशों में अलग–अलग होता है, और एक ही देश में भिन्न–भिन्न स्थलों पर पृथक हो सकता है। जीवन–स्तर का मुख्य आधार प्रति व्यक्ति आय होती है, जिससे वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। व्यक्ति की आय जितनी अधिक या कम होगी, उसका जीवन–स्तर उसी अनुपात में उच्च या निम्न होगा। इसी प्रकार राष्ट्रीय आय द्वारा एक राष्ट्र के जीवन–स्तर का अनुमान लगता है।

प्रत्येक देश का यह उद्देश्य होता है। कि वह अपने देश का जीवन–स्तर ऊँचा उठा कर देश की राष्ट्रीय आय में वृद्धि करें। राष्ट्रीय आय का उत्पादन व्यक्तियों की उत्पादकता पर निर्भर करता है और उत्पादकता अन्य अनेक बातों के अतिरिक्त अधि ाक सीमा तक जीवन–स्तर पर निर्भर करती है। साधारणतया एक भारतीय मजदूर का जीवन–स्तर बहुत नीचा है। नीचे जीवन–स्तर (अर्थात् निर्धनता) के कारण लोग अपनी आवश्यक तथा आरामदायक आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पाते। उनका स्वास्थ्य खराब रहता है, उनकी कार्य–क्षमता गिरती जाती है, परिणाम स्वरूप देश में उत्पादन और राष्ट्रीय आय कम रहती है। एक व्यक्ति के जीवन–स्तर का अर्थ है कि वह अपने दैनिक जीवन में किस मात्रा में तथा किस प्रकार की वस्तुओं का उपयोग करता है।

किसी भी देश की आर्थिक स्थिति, उसका स्तर, उसके नागरिक का जीवन–स्तर, उसकी उत्पादन क्षमता, खाद्य–सामग्री की उपलब्धि, वाहन, परिवहन, शिक्षा एवं स्वास्थ्य की सुविधा तथा मनोरंजन के साधनों आदि पर निर्भर करता है। उसके साथ एक महत्वपूर्ण विषय है – जनसंख्या संरचना, जिस पर देश का सारा ढ़ाँचा निर्धारित होता है। जब किसी देश की जनसंख्या का प्रमाण उस देश में प्राप्त प्राकृतिक साधनों की तुलना में अधिक हो जाता है, तो भुखमरी, बेरोजगारी, खाद्य समस्या, आवासीय समस्या तथा अन्य सभी मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति की समस्या उग्र रूप धारण कर लेती है। लेकिन जब देश के आर्थिक तथा जनसंख्यात्मक घटकों में सन्तुलन हो तो देश में समृद्धि होती चली जाती है।

जीवन-स्तर का अर्थ –:

जीवन–स्तर से अभिप्राय केवल प्रति–व्यक्ति वस्तुओं तथा सेवाओं का उपयोग ही नहीं है, बल्कि इसमें और चीजें जैसे कि किसी देश में प्रति व्यक्ति चिकित्सकों की संख्या, चिकित्सा सम्बन्धी सुविधाओं की उपलब्धि, शिक्षा के अवसर, जीवन की औसत आयु आदि भी सम्मिलित होते है। अतः जीवन–स्तर के कई अर्थ होते है। किसी देश में किसी विशेष सुविधा को विशेष महत्व दिया जाता है तो दूसरे देश में किसी दूसरी सुविधा को, अतएव जीवन स्तर की कोई भी सर्वमान्य व्यवस्था करना असम्भव भले ही न हो, परन्तु निश्चित रूप से कठिन अवश्य है। अपनी पुस्तक 'जनसंख्या शिक्षण' में श्रीमती पुष्पा दुबे ने प्रसिद्ध नगरीय शास्त्री जेविस मेक्फोर्ड की धारणा का उल्लेख करते हुये कहा है कि "किसी भी देश की आर्थिक सम्पन्नता का मूल्यांकन, उनके द्वारा उत्पादित स्टील के टनों की संख्या, खनिज तेल के गैलनों, बैरलों की अमर्यादित संख्या और वस्त्रों के मीटरों की संख्या से नहीं होता, बल्कि वहाँ के निवासियों के सर्वागीण जीवन की विशिष्ट शैली, उनकी संस्कारिता, प्रबुद्धता, अनुशासनप्रियता और उच्च जीवन के सौन्दर्य बोध की प्रवृत्ति से आंका जाना चाहिये।"[7]

आधुनिक युग में किसी देश का जीवन–स्तर तब उच्च माना जाता है, जब वहाँ के लोग आरामदायक जीवन–यापन कर रहे हो। उन देशों के लोग शारीरिक श्रम को बहुत ही हेय समझते हो। उनके दृष्टिकोण में भारत के एक श्रमिक का श्रम करना नारकीय यातना है, कार्य नहीं। आधुनिक सभ्यता एवं संस्कृति वाले देश का परम्परावादी संस्कृति वाले देश के जीवन–स्तर से उच्च गिना जायेगा, उनके नागरिकों का जीवन–स्तर भी उच्च होगा। उदाहरणस्वरूप अमरीका में जो वस्तुयें आवश्यक आवश्यकताओं में गिनी जाती है, वहीं परम्परावादी देशों में आरामदायक मानी जाती है।

जीवन–स्तर व्यय के बजट द्वारा भी जाना जा सकता है यदि एक भारतीय परिवार अपनी आय का अधिकांश भाग भोजन सामग्री पर व्यय करता है तो उसके पास अन्य आवश्यकताओं वस्त्र, आवास, शिक्षा तथा अन्य सामाजिक कार्यों के लिये धन कम रह जायेगा। फलतः उसका जीवन–स्तर निम्न होगा। जीवन–स्तर की विशिष्टता को पता लगाने के लिये आवश्यकताओं को दो भागों में विभाजित किया गया है। प्रथम, जीवन की मूलभूत आवश्यकतायें जैसे भोजन, आवास, शुद्ध पेयजल, वस्त्र आदि की मात्रा एवं विशिष्टतायें और द्वितीय, आर्थिक, सामाजिक आवश्कयतायें जैसे शिक्षा, चिकित्सा, रोजी–रोटी के अवसर, सुरक्षा, यातायात सुविधा, मनोरंजन के साधन, मानव स्वतन्त्रता का स्तर। संक्षेप में जिस देश में हर व्यक्ति अपनी मूलभूत एवं आर्थिक, सामाजिक आवश्यकताओं को भली प्रकार सन्तुष्ट कर सके, उस देश का और उस व्यक्ति का जीवन–स्तर उच्च होगा।

जनसंख्या वृद्धि का सामुदायिक जीवन पर प्रभाव –:

जनसंख्या वृद्धि का जीवन–स्तर पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। तीव्र गति से बढ़ती हुई जनसंख्या का परिणाम होता है, जनसंख्या का विस्तार। मानव अपने जीवन का अस्तित्व बनाये रखने के लिये अपनी मूलभूत आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिये सदैव प्रयत्नशील रहता है। इन आवश्यकताओं में भरपेट भोजन, निवास करने

योग्य आवास, शुद्ध जल, स्वस्थ्य वायु, तन ढकने के लिये वस्त्र आदि सम्मिलित है। इन सब आवश्यकताओं की हर समय उचित मात्रा में पूर्ति हो, यह तभी सम्भव होगा जब मानव की संख्या सीमित होगी। जैसे–जैसे मानव की संख्या बढ़ती जायेगी वैसे–वैसे निश्चय ही सभी मनुष्यों की आवश्यकतायें पूर्ण रूप से पूरी नहीं हो सकेगी और उस स्थिति में मानव जीवन दुखी एवं सघर्षमय बन जायेगा और अनेक समस्याओं से ग्रस्त हो जायेगा।

वास्तव में मानव आवश्यकताओं की पूर्ति का मुख्य आधार प्राकृतिक साधनों की मात्रा है। इन प्राकृतिक साधनों को कुछ समय तक तो बढ़ाया जा सकता है, उसका अधिकाधिक विदोहन किया जा सकता है, परन्तु एक बिन्दु ऐसा आ जायेगा जबकि कुल जनसंख्या एवं कुल प्राकृतिक साधनों की मात्रा में सन्तुलन नहीं रहेगा। जैसे–जैसे जनसंख्या में वृद्धि होती जायेगी, उसी अनुपात में आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये मांग भी बढ़ती जाती है, जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव प्रत्येक व्यक्ति पर व्यक्तिगत रूप से पड़ता है जैसे –

1. यदि जनसंख्या वृद्धि, साधनों से अपेक्षाकृत अधिक हो, तो प्रति व्यक्ति भाग (हिस्सा) कम होगा।
2. यदि जनसंख्या और प्राकृतिक साधन एक ही मात्रा में बढ़ते है, तो प्रति व्यक्ति भाग समान होगा।
3. यदि जनसंख्या वृद्धि की अपेक्षा साधन तीव्रता से बढ़ते है, प्रति व्यक्ति भाग बढ़ जायेगा।

इस प्रकार व्यक्तिगत भागीदारी, साधनों पर निर्भर करती है और यह जनसंख्या वृद्धि द्वारा निश्चिय होती है। देश में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति का जीवन एक दूसरे को प्रभावित करता है। उदाहरणस्वरूप एक व्यक्ति 10 एकड़ जमीन का स्वामी है उसके दो पुत्र होते है। जो 5–5 एकड़ जमीन के स्वामी बनते है। यदि इसी व्यक्ति के दो और पुत्र हो जाये तो 10 एकड़ जमीन का भाग ढाई एकड़ हो जायेगा, और प्रति

व्यक्ति प्रति एकड़ जमीन कम हो जायेगी। फलतः प्रति व्यक्ति आय कम होती जायेगी, इससे जीवन–स्तर निम्नतर होता जायेगा और असन्तोष की मात्रा बढ़ती जायेगी। भोजन, वस्त्र, आवास, सुरक्षा आदि की समस्या बढ़ती जायेगी। इसका साधारण व सरल सा उपाय है कि परिवार में नये शिशु के जन्म को रोका जाय, ताकि परिवार का जीवन–स्तर उच्च बना रहे। परिवार पर घटित यह घटना पूरे राष्ट्र पर इसी प्रकार फलित होती है।

अधिकांश विकासशील देश भारत सहित उपरोक्त समस्या का अनुभव बड़ी तीव्रता से कर रहे है। भारत जिन कठिन आर्थिक परिस्थितियों से गुजर रहा है, जनसंख्या–वृद्धि के कारण हमारी कठिनाइयां उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है, भारत की जनसंख्या प्रतिवर्ष की दर से बढ़ रही है जिसके लिये हर वर्ष अतिरिक्त साधनों की आवश्यकता होगी, तालिका 2.8 में बढ़ती हुई जनसंख्या के लिये अतिरिक्त आवश्यकताओं को दर्शाया गया है।

तालिका २.८

बढ़ती जनसंख्या के लिये अतिरिक्त आवश्यकतायें

संख्या	प्रतिवर्ष अतिरिक्त आवश्यकतायें
1,25,46,000	अतिरिक्त खाद्य सामान
18,87,740	अतिरिक्त घर
25,09,000	अतिरिक्त बेरोजगारों को रोजगार
40,00,000	अतिरिक्त कपड़ा
1,26,000	अतिरिक्त स्कूल
3,72,000	अतिरिक्त अध्यापक

Sources : *Government of India population facts and figures*

आज हमारी आवश्यकताओं की मांग के अनुपात में पूर्ति बहुत कम है। हर वर्ष बढ़ती हुई जनसंख्या की आवश्यकताओं की व्यवस्था करना आसान कार्य नहीं है। अतएव पंचवर्षीय योजनाओं में हुई प्रगति के बाद भी बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण हमारी आवश्यकताओं की मात्रा हर समय बढ़ती जा रही है। फलस्वरूप देश में भोजन, वस्त्र, आवास, जल पूर्ति, शिक्षा, स्वास्थ्य सेवा, बेरोजगारी, गरीबी आदि की अनेक

समस्यायें दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। आज जीवन में असन्तोष, निराशा, चिड़चिडापन, विद्रोह, अपराध, भ्रष्टाचार आदि तेजी से बढ़ रहा है।

श्री एस0 चन्द्रशेखर ने भारतीय जीवन–स्तर के सम्बन्ध में अपनी पुस्तक "एसियाज पापुलेशन प्रॉम्ब्लम" में उल्लेख किया है कि "भारतवासियों का जीवन–स्तर इतना नीचा है कि निर्धन परिवारों की संख्या में और अधिक वृद्धि धातक सिद्ध हो सकती है। इन परिवारों की संख्या इतनी अधिक है कि यह साधारणीकरण किया जा सकता है कि सभी व्यक्तियों के लिये जनसंख्या में वृद्धि एक गम्भीर समस्या सिद्ध होगी।"[8] दिसम्बर 1958 में अखिल भारतीय चिकित्सा–परिषद में भारत सरकार के तत्कालीन स्वास्थ्य मंत्री डॉ0 करमकर ने इसी प्रकार का विचार व्यक्त किया था "जनसंख्या में साधारण वृद्धि राष्ट्र के समक्ष गम्भीर समस्यायें उत्पन्न कर रही है।"

इस प्रकार स्पष्ट है कि जनसंख्या वृद्धि का कुप्रभाव देश के आर्थिक स्तर पर पड़ता है और आर्थिक स्तर का प्रति–व्यक्ति आय और राष्ट्रीय आय पर, प्रति व्यक्ति आय का व्यक्ति के जीवन–स्तर पर और समुदाय के जीवन–स्तर का राष्ट्र के जीवन–स्तर पर पड़ता है।

REFERENCES

1. Jathar&Beri : Indian Economics. P. 206.
2. Rao V.K.R.V. : Essays in Economics Development. P. 1 58
3. Stonior & Hage : Principles of Economics. P. 635
4. Rio V.K.R.V. : Essays in Economics Development. P. 1 62
5. Pigau A.C. : Economics of welfare. P. 11
6. Chandrashekhar S. : Population and law in India. P. 121
7. Dubey Puspa S. : Population Education. P. 52
8. Chandrashekhar S. : Ashia's Population Problems. P. 64

अध्याय - तृतीय

जनसंख्या वृद्धि, माल्थस एवं अन्य विचार धारायें

किसी देश में जनाधिक्य शब्द का अभिप्राय यह लगाया जाता है कि उस देश में जनसंख्या उपलब्ध भू–क्षेत्र एवं खाद्यान्न की तुलना में आवश्यकता से अधिक हो गयी है। परन्तु वास्तव में कितने भू–क्षेत्र एवं कितने उत्पत्ति के साधन के साथ कितनी जनसंख्या अनुकूलतम होगी यह अत्यधिक विवादास्पद विषय है, किसी देश में जनसंख्या क्यों बढ़ती है ? कैसे बढ़ती है ? कितनी जनसंख्या किस समय अनुकूलतम होगी और कितनी आवश्यकता से अधिक ? कम जनसंख्या से क्या हानियां हो सकती है और जनाधिक्य के क्या दुष्परिणाम हो सकते है ? इस सम्बन्ध में प्राचीनकाल से ही विभिन्न विचारकों ने भिन्न–भिन्न समयों पर भिन्न–भिन्न दृष्टिकोण प्रस्तुत किये हैं। वर्तमान में हमारे देश में निसंदेह जनाधिक्य है लेकिन वास्तव में इस जनाधिक्य का क्या स्वभाव एवं कारण है इसके ज्ञान के लिये पृष्ठभूमि में जनसंख्या सम्बन्धी दृष्टिकोणों का जानना अति आवश्यक है। भारत के अलावा यदि हम अन्य देशों के भी प्राचीन ग्रंथों का अध्ययन करें तो आधुनिक काल में प्रचलित जनसंख्या सम्बन्धी विचारों की कड़ियाँ यत्र–तत्र अपने भिन्न–भिन्न स्वरुपों में परिलक्षित होती है।

माल्थस से पूर्व जनसंख्या सम्बन्धी विचार

कन्फ्यूशस एवं अन्य चीनी विचारक -:

कन्फ्यूशस एवं चीनी विचारकों ने कृषि के लिये आदर्श जनसंख्या की कल्पना की थी। जिसके असन्तुलित होते ही अर्थव्यवस्था अस्त–व्यस्त हो जायेगी। उनका विचार था कि असन्तुलन से उत्पन्न होने वाली अस्त – व्यस्तता को बचाने के लिये सरकार को प्रयत्न करना चाहिये। जब किसी स्थान में जनसंख्या का दबाव बढ़ जाता है तो कृषि पर जनसंख्या का आदर्श अनुपात बनायें रखने के लिये सरकार को अधिक आबादी वाले क्षेत्र से हटाकर कम आबादी वाले क्षेत्र की ओर जनसंख्या स्थानान्तरित कर देनी चाहिये। इसके अतिरिक्त चीनी साहित्य में जनसंख्या वृद्धि पर

रोक लगाने का भी उल्लेख मिलता है। उन विचारकों के अनुसार खाद्यान्न की अपर्याप्तता के कारण मृत्यु–दर बढ़ती है। बाल–विवाहों के कारण शिशु–मृत्यु की दर अधिक होती है। युद्ध के कारण भी जनसंख्या कम हो जाती है। विवाह पर अधिक खर्च होने के कारण विवाह की दर कम होती है, परन्तु यह विचारक यह स्पष्ट नहीं कर सके कि प्रजननशीलता, मृत्युक्रम, वैवाहिकता तथा प्रवास जनसंख्या और उपलब्ध संसाधनों के मध्य सन्तुलन को किस प्रकार प्रभावित करते हैं। कन्फ्यूशस विवाह एवं प्रजननता को अवांछनीय नहीं मानते थे और न ही जनसंख्या की वृद्धि में रोक लगाने के पक्षपाती थे। अपनी पुस्तक "हिस्ट्री ऑफ इकोनॉमिक्स थाट" में एरिकरोल ने प्रो0 चाइल्ड की धारणा का उल्लेख किया। चाइल्ड के कथन से उस समय के जनसंख्या सम्बन्धी विचारों का आभास होता है। "जो बातें किसी देश की जनसंख्या को घटाने का कार्य करती है वे बाते उस देश को नष्ट करने के लिये उत्तरदायी है, देश की समृद्धि और निर्धनता क्रमशः वहाँ की जनसंख्या की अधिकता और न्यूनता पर निर्भर होती है न कि वहाँ की भूमि के उपजाऊपन अथवा अउपजाऊपन पर।"1

ग्रीक विचारधारा –:

प्लेटो एवं अरस्तु ने उतनी ही जनसंख्या को वांछनीय माना जितनी कि किसी समाज को आर्थिक दृष्टि से आत्म निर्भर बनाने तथा अपनी सुरक्षा के लिये आवश्यक हो। इससे कम होने पर निर्धनता आयेगी तथा अधिक होने पर आर्थिक समस्यायें उत्पन्न होगी। दोनों ही विचारकों ने जनसंख्या में कमी लाने के लिये आत्म संयम पर बल दिया तथा उपनिवेशों की स्थापना का सुझाव दिया। उनके अनुसार जनसंख्या वृद्धि को प्रोत्साहित करने के लिये पुरस्कारों एवं पदकों का सहारा लेना चाहिये। इन लोगों ने राज्य में जनसंख्या के सन्तुलन को बनायें रखने के लिये आवास एवं प्रवास की रीति को उचित माना। अरस्तु जनसंख्या के सम्बन्ध के बारे में लिखते है, "उन सब राष्ट्रों में जहाँ जनसंख्या को सीमित रखने के लिये प्रत्येक परिवार के लिये बच्चों की संख्या को निर्धारित किया जाना चाहिये और यदि विवाहित दम्पत्तियों के

निर्धारित संख्या से अधिक बच्चे हो जाये तो गर्भगत बच्चे में चेतना और जीवन संचार के पूर्व ही गर्भपात करा देना चाहिये।"2

वणिकवादी विचारधारा –:

मध्यवर्ती ईसाई विचारकों ने जनसंख्या को एक नैतिक विषय माना तथा उसमें लगाई जाने वाली रोक को अनुचित ठहराया। सत्रहवीं व अठारहवीं सदी के वणिकवादी अर्थशास्त्री जनसंख्या को आर्थिक विकास में सहायक, सुरक्षा की दृष्टि से उचित और किसी देश की सम्प्रभुता को बनायें रखने के लिये आवश्यक समझते थे। अतः उन्होंने जनसंख्या के बढ़ने को बुरा नहीं बताया। अधिक जनसंख्या, अधिक परिश्रम, अधिक उत्पादन होने से आर्थिक समृद्धि बढ़ेगी। दूसरी ओर सस्ते श्रम से उत्पादन लागत घटेगी जिससे विदेशी व्यापार को प्रोत्साहन मिलेगा और निर्यात बढ़ेगे, बदले में सोने–चांदी का देश में भण्डारण बढ़ेगा। प्रुमख वणिकवादी एनटायन डी मान्ट्रेशियन सर थॉमसमन, सर विलियम पेट्टी, चार्ल्स देवनान्त, सर डबलेड नार्थ, सर जोशिया चाइल्ड, सर जेम्स स्टुअर्ट जीन बैयटिस्ट कौलवर्ट, स्विर्ड कैन्टीलन एनटानियों खेरा, जॉनलॉक थे। इन विचारकों ने जनसंख्या के परिणात्मक एवं गुणात्मक दोनो पहलुओं की ओर ध्यान दिया। वणिकवादी दो कारणों से जनसंख्या वृद्धि के पक्ष में थे – प्रथम, युद्ध के लिये सेना का सरलता से विस्तार किया जा सकेगा। अधिक जनसंख्या होने पर अधिक एवं सस्ते सैनिक उपलब्ध हो सकेंगे। इस प्रकार सैन्य शक्ति बढ़ने से राज्य शक्तिशाली बनेगा। द्वितीय, उत्पादन में वृद्धि होगी। वणिकवादियों का नारा था – अधिक सेना, अधिक वैभव और अधिक शक्ति अर्थात् वे यह समझते थे कि देश की आर्थिक सम्पन्नता उस देश के पास होने वाले सोने, चाँदी व अन्य बहुमूल्य धातुओं की मात्रा पर निर्भर करती है। अपनी पुस्तक 'डेबलपमेन्ट ऑफ इकोनॉमिक डाक्टरिन्स' में एलेक्जेण्डर ग्रे ने प्रो0 चाइल्ड की धारणा का उल्लेख करते हुये कहा कि " किसी देश की समृद्धि की माप तथा स्तर वहाँ पाये जाने वाले सोने व चाँदी की मात्रा है।"3

अतः जो अपने को आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न बनाना चाहता है उसे चाहिये कि वह अधिक से अधिक सोना, चाँदी और बहुमूल्य धातुओं को अपने पास एकत्र करें। देश में अधिक जनसंख्या के विचार को वास्तविक रुप प्रदान करने के लिये उन्होंने विवाह करने तथा बच्चा पैदा करने पर पारितोषक देने और अविवाहितों को दण्ड देने का भी सुझाव दिया। विवाह तथा पैतृकता को प्रोत्साहित करने के लिये अनेक नियम तथा कानून बनाये गये।

वणिकवादियों ने जनसंख्या के परिमाणात्मक पक्ष के साथ–साथ गुणात्मक पहलुओं पर भी ध्यान दिया था। उन्होंने इस बात पर विशेष बल दिया कि देश में शिक्षा का समुचित प्रबन्ध होना चाहिये ताकि कुशल श्रमिक उपलब्ध हो सके। कुशल श्रमिकों की सहायता से उत्पादन में वृद्धि होगी तथा निर्यात भी बढ़ेगा। उन्होंने श्रमिकों की गुणवत्ता बनायें रखने के लिये उनकी चिकित्सा व्यवस्था पर भी बल दिया। वणिकवादियों ने सुझाव दिया कि बेरोजगारी को दूर करने का भरसक प्रयास किया जाना चाहिये।

निर्बाधवादी विचारधारा –:

निर्बाधवादी विचारधारा के प्रतिनिधि विचारक फ्रांसिस केने, एने राबर्ट, जैक्स तारगो, पेरी सैमुअल डूपोण्ट डी निभोर, मारक्विज डी मिराब्यू, मार्सियर डी ला रिबे पर, एम. मोरने, अब्बे निकोलस, जी0 एफ0 ट्राजने आदि थे। निर्बाधवादियों ने जनसंख्या सम्बन्धी कोई भी सिद्धान्त प्रतिपादित नहीं किया, परन्तु इन विचारकों का विचार था कि बढ़ती हुई जनसंख्या देश के लिये बुरी नहीं है। इस विचार का आधार इन अर्थशास्त्रियों का 'प्राकृतिक व्यवस्था' में दृढ़ विश्वास था। यह व्यवस्था पवित्र, सर्वव्यापी, शाश्वत और अपरिवर्तनीय है। इसमें किसी भी प्रकार का विघ्न डालना मनुष्य के हित में नहीं है।

निर्बाधवादी विचारधारा के समय जहाँ एक ओर कुछ विचारक बढ़ती हुई जनसंख्या को देश के लिये हितकारी समझते थे, वही दूसरी ओर कुछ विचारक ऐसे भी थे जिन्होंने बढ़ती हुई जनसंख्या को भय की दृष्टि से देखा और उसे देश के लिये

अहितकर समझा। सामाजिक समस्याओं के अध्ययन करने वाले यह सदा सोचते रहे कि जहाँ बढ़ती हुई जनसंख्या देश को शक्तिशाली बनाती है, वहीं मानव जाति के लिये दुखों एवं कष्टों को भी निमंत्रण देती है। प्रसिद्ध निर्बाधवादी अर्थशास्त्री केने ने अपने विचार प्रकट करते हुये लिखा है कि ''जनसंख्या के बढ़ाने की अपेक्षा राष्ट्रीय आय में वृद्धि करने की ओर अधिक ध्यान देना चाहिये क्योंकि वह स्थिति, इससे कहीं श्रेष्ठ है जिसमें जनसंख्या बढ़ने से आय के साधनों की खोज चलती रहती है।''4

इसी प्रकार टाउनसेण्ड ने कहा कि ''मनुष्य में अपने संतान की वृद्धि की भूख स्वाभाविक है, परन्तु यदि मनुष्य की इस भूख को नियन्त्रित नहीं किया जाता और इसकी अवहेलना की जाती है, तो जनसंख्या में इतनी अधिक वृद्धि हो जायेगी। कि उसके लिये भोजन प्राप्त करना भी दुष्कर हो जायेगा।''5

इस तरह हम देखते है कि प्राकृतिक व्यवस्था के समर्थक होने के कारण निर्बाधवादियों ने जनसंख्या के किसी विशिष्ट सिद्धान्त का प्रतिपादन तो नहीं किया, परन्तु उन लोगों ने अति जनसंख्या की समस्या का अनुमान अवश्य लगा लिया था और वे इसके सम्भावित परिणामों के प्रति सजग भी थे।

प्रतिष्ठित विचारधारा –:

निर्बाधवादियों के उपरान्त प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री आते है जिसमें एडम स्मिथ ने जनसंख्या सम्बन्धी तत्कालीन विचारों का सार निम्न शब्दों में व्यक्त किया ''प्रत्येक जाति के प्राणियों की स्वाभाविक वृद्धि उसी दर से होती है। जिस दर से उनके लिये भोजन की वृद्धि होती है कोई भी जाति अपने लिये भोजन में वृद्धि के अनुपात से तीव्र दर से अपनी वृद्धि नहीं कर सकती है।''6

स्मिथ की धारणा थी कि किसी देश में निवासियों की संख्या बढ़ने से उसकी समृद्धि में वृद्धि होती है क्योंकि उससे श्रमिकों की मजदूरी घटती है और लागतें गिरती है। इसी आधार पर स्मिथ ने मजदूरी का जीवन–निर्वाह लागत सिद्धान्त प्रतिपादित किया। जे0 बी0 से0 ने पूर्ति बढ़ाने से माँग के अपने आप बढ़ने की

विचारधारा को जन्म दिया जिसे 'से' का 'बाजार का नियम' कहा जाता है। इस नियम में भी श्रमपूर्ति एवं मजदूरी के बीच विपरीत सम्बन्ध की चर्चा की गयी है, और श्रमपूर्ति बढ़ना हितकर ठहराया गया है। 'से' का 'बाजर का नियम' इस बात पर आधारित था कि मजदूरी व जनसंख्या एक दूसरे से विपरीत रुप से सम्बन्धित है। जनसंख्या सिद्धान्तों के इतिहास में सबसे प्रथम व सबसे महान विचारक माल्थस है जिन्हें निराशावादी अर्थशास्त्री की संज्ञा दी जाती है तथा जिन्हें जनांकिकी का जनक भी माना जाता है।

माल्थस से पूर्व जनसंख्या सम्बन्धी विचारों के अध्ययन से स्पष्ट पता चलता है कि प्राचीनकाल से माल्थस के समय तक मनुष्यों ने जनसंख्या की वृद्धि को ही अधिक श्रेष्ठकर तथा हितकर माना। निरन्तर बनी रहने वाली सैनिको की माँग की पूर्ति जनसंख्या की वृद्धि के द्वारा ही सम्भव थी। इसके अतिरिक्त उस समय खाद्यान्न की मात्रा भी जनसंख्या की तुलना में अधिक थी, इसलिये मनुष्यों को जीवन–निर्वाह में किसी प्रकार की कठिनाइयों का अनुभव नहीं होता था। अतः बढ़ती हुई जनसंख्या को बुरा नहीं माना जाता था।

स्टेन्जलैण्ड ने पूर्व माल्थसवादी जनसंख्या सम्बन्धी समान दृष्टिकोण का इस प्रकार वर्णन किया है – "उस समय साधारण रुप में अधिक जनसंख्या को लाभदाययक समझा जाता था। लोग अधिक जनसंख्या से कभी भयभीत नहीं होते थे, क्योंकि लोगों को विश्वास था कि जनसंख्या देश के जीवन–निर्वाह साधनों द्वारा सीमित होती है।"7 एडम स्मिथ के अनुसार "अन्य वस्तुओं की भाँति मनुष्यों की माँग आवश्यक रुप से मनुष्यों की उत्पत्ति को नियन्त्रित करती है। यदि मनुष्य की उत्पत्ति इसकी माँग की अपेक्षा कम होने लगती है, तो माँग आवश्यकतानुसार जन्मदर को बढ़ा देती है इसके विपरीत यदि मनुष्यों की उत्पत्ति माँग की अपेक्षा अधिक हो जाती है, तो माँग आवश्यकतानुसार जन्मदर को कम कर देती है।"8 इस प्रकार जनसंख्या के स्वयं समायोजन चक्र में विश्वास करते थे।

समय के परिवर्तन के साथ–साथ परिस्थितियों में परिवर्तन हुआ। स्थान–स्थान पर बेरोजगारी, गरीबी, बीमारी फैलने लगी। प्राकृतिक संकटों जैसे– बाढ़, अकाल, बीमारी आदि की बाढ़ सी आ गई। जिससे विचारकों ने सर्वप्रथम स्पष्ट रुप से देखा कि इतनी बढ़ी हुई जनसंख्या ही इन सब दुखों की जड़ है। अतः वह जनसंख्या की समस्या पर विचार करने के लिये विवश हुये। विभिन्न विचारक यह खोज करने लगे कि किस प्रकार मानव जाति की रक्षा इस बढ़ती हुई जनसंख्या से की जा सकती है। इन विचारकों में प्रो0 माल्थस प्रमुख थे, जिनका जनसंख्या के सिद्धान्त पर निबन्ध आज इस विषय पर होने वाली वार्ता का प्रारम्भिक बिन्दु है।

९. माल्थस का जनसंख्या सिद्धान्त –:

माल्थस ने अपने अनुभव और निरीक्षण के आधार पर जो निष्कर्ष निकाले हैं वे 'माल्थस के जनसंख्या के सिद्धान्त' नाम से जाने जाते है। माल्थस का जनसंख्या सिद्धान्त निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है –

1. मानव की काम – वासना यथास्थिर है और इसका सन्तुष्टि के परिणामस्वरुप सन्तानोत्तपत्ति आवश्यक है अर्थात् काम–वासना और सन्तानोत्पत्ति में प्रत्यक्ष सम्बन्ध है।
2. आर्थिक सम्पन्नता और सन्तानोत्पत्ति के मध्य सीधा और घनिष्ट सम्बन्ध है अर्थात् आर्थिक सम्पन्नता की प्रत्येक वृद्धि सन्तान उत्पादन और जनसंख्या की वृद्धि को प्रोत्साहित करती है।
3. मनुष्य के जीवित रहने के लिये भोजन आवश्यक है।
4. कृषि में उत्पत्ति ह्यास नियम लागू होता है।

उपरोक्त मान्यताओं के आधार पर माल्थस ने जनसंख्या सिद्धान्त को इन शब्दों में व्यक्त किया है "उत्पादन की विधियों की एक दी हुई स्थिति के अन्तर्गत जनसंख्या जीवन निर्वाह के साधनों से अधिक तीव्र गति से बढ़ने की प्रवृत्ति दिखाती है।"

"इस रुप में बढ़ना जनसंख्या की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। यह वृद्धि इतनी

तीव्रता से होती है कि 25 वर्षों में जनसंख्या दोगुनी हो जाती है। जनसंख्या बढ़ने की इस तीव्र दर को माल्थस ने गुणोत्तर या ज्यामितीय दर में वृद्धि की संज्ञा दी।"9

माल्थस ने जनसंख्या वृद्धि के साथ–साथ खाद्यपूर्ति की वृद्धि पर विचार किया है। उनके अनुसार खाद्य सामग्री की पूर्ति जनसंख्या की अपेक्षा नीची दर से बढ़ती है। खाद्यपूर्ति की गणितीय व्याख्या करते हुये माल्थस ने कहा खाद्य सामग्री में वृद्धि अंकगणितीय दर में धीरे–धीरे बढ़ती है। माल्थस की यह अवधारण कृषि में उत्पत्ति ह्यास नियम की क्रियाशीलता पर आधारित है।

जनसंख्या में गुणोत्तर दर तथा खाद्य–सामग्री में समानान्तर दर के अनुसार वृद्धि होने से दोनों में असन्तुलन उत्पन्न हो जाता है। अतः प्रकृति जिसने मनुष्य के लिये भोजन को अनिवार्य बनाया है। वह सन्तुलन बनाने का प्रयास करती है। माल्थस के शब्दों में –

"By the law of our nature which makes food necessary to the life man, the effects of these two powers must be equal."10

इस प्रकार माल्थस ने जनसंख्या के सम्बन्ध में एक निराशामय दृष्टिकोण विश्व के सामने रखा कि यदि जनसंख्या को स्वतन्त्रतापूर्वक बढ़ने दिया जाये तो स्वाभाविक परिणाम यह निकलता है कि जनसंख्या खाद्य सामग्री की पूर्ति की तुलना में अधिक तेजी के साथ बढ़ जाती है जिससे संसार में भुखमरी, कष्ट और निर्धनता का साम्राज्य स्थापित हो जाता है। माल्थस ने कहा है कि "प्रकृति की मेज सीमित अतिथियों के लिये ही लगी है इसलिये जो बिना निमन्त्रण के आयेगा उसे अवश्य भूखा मरना पड़ेगा।'11 अर्थात् प्रकृति खाद्य सामग्री के अनुरुप ही जनसंख्या का समायोजन कर लेती है। जिसे उन्होंने "प्राकृतिक अवरोध" कहा है। इसके विपरीत जो मनुष्य स्वयं अपने आप प्रतिबन्ध लगाता है उसे 'प्रतिबन्धक अवरोध' कहा है।

प्रतिबन्धक अवरोध –:

कृत्रिम अथवा प्रतिबन्धक अवरोध के अन्तर्गत वे सारे उपाय आते है जिनका प्रयोग मनुष्य अपने विवेक से जन्मदर को रोकने के लिये करता है जैसे बड़ी उम्र में विवाह, संयम का जीवन, ब्रह्मचर्य, विभिन्न प्रकार के सन्तत्ति निग्रह के साधनों का प्रयोग आदि।

1. नैतिक प्रतिबन्ध अर्थात् संयम ब्रह्मचर्य आदि।
2. कृत्रिम साधन जैसे – सन्तति निग्रह का प्रयोग। इसे माल्थस ने पाप कहा है।

प्राकृतिक अवरोध –:

इस प्रकार के प्रतिबन्ध स्वयं प्रकृति द्वारा लगाये जाते है। इन प्रतिरोधों द्वारा समाज में जनसंख्या स्वतः कम हो जाती है। अकाल, महामारी, भूकम्प, बाढ़ आदि प्राकृतिक आपत्तियाँ, दैवी प्रकोप इनके अन्तर्गत आते हैं। माल्थस ने इन्हें 'कष्ट' की संज्ञा दी है। नैसर्गिक निरोध के द्वारा मृत्यु–दर में वृद्धि होकर जनसंख्या में कमी होती है और जनसंख्या का खाद्यान्न के साथ सन्तुलन स्थापित हो जाता है।

माल्थस का यह विश्वास है कि नैसर्गिक प्रतिबन्ध जनसंख्या के लिये अधिक कष्टदायक होते है परन्तु यदि मनुष्य स्वयं प्रतिबन्ध उपायों के द्वारा जनसंख्या को रोकने का प्रयत्न नहीं करता तो ये प्राकृतिक प्रतिबन्ध अवश्य क्रियाशील होगें। अतः माल्थस ने यह सुझाव दिया कि व्यक्ति को स्वयं सजगता से कार्य करना चाहिये, ताकि वह स्थिति ही उपस्थित न हो जबकि स्वयं प्रकृति जनसंख्या को कम करने के लिये क्रियाशील हो उठे।

माल्थस के शब्दों में, "प्रत्येक व्यक्ति को स्पष्ट समझ लेना चाहिये कि वह अपनी गरीबी का कारण स्वयं है। अतः प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्त्तव्य है कि वह प्राकृतिक अवरोध की भयंकरता से बचने के लिये प्रतिबन्ध निरोधो को अपनायें।"12

२. ईष्टतम जनसंख्या सिद्धान्त –:

इस शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम एडविन केनन ने किया। उन्होंने अपने जनसंख्या सिद्धान्त को 'अनुकूलतम या आदर्श जनसंख्या का सिद्धान्त' के नाम से प्रस्तुत करके इस सिद्धान्त की वैज्ञानिक व्याख्या भी की। आधुनिक समय में प्रो0 डाल्टन, प्रो0 रॉबिन्स और प्रो0 कार सांउडर्स ने इस सिद्धान्त को अधिक व्यापक और लोकप्रिय बनाया है। जिनकी व्याख्या निम्न है –

प्रो0 एडविन केनन ने आदर्श जनसंख्या की परिभाषा इस प्रकार की है – "किसी दिये हुये समय पर किसी देश में उत्पादन का एक अधिकतम बिन्दु होता है जहाँ पहुँचने पर जनसंख्या तथा प्राकृतिक साधनों का पूर्ण समन्वय हो जाता है। इस बिन्दु से जनसंख्या के अधिक या कम होने से राष्ट्रीय उत्पादन अनुपात में अधिक या कम हो जाता है। यदि सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था को इस बिन्दु पर लाने के लिये जनसंख्या अपर्याप्त हो तो उत्पादन जितना होना चाहिये उससे कम होगा। ऐसी परिस्थिति में जनसंख्या में वृद्धि करनी होगी। इसके विपरीत, यदि जनसंख्या इतनी अधिक है कि वह इस बिन्दु से आगे बढ़ गई है तो इसका तात्पर्य यह है कि देश में जनाधिक्य की स्थिति है और जनसंख्या में कमी द्वारा इस स्थित को दूर किया जा सकता है।"13

प्रो0 कार साण्उडर्स ने आदर्श जनसंख्या सिद्धान्त की परिभाषा देते हुये लिखा है – "आदर्श जनसंख्या वह जनसंख्या है जो अधिकतम आर्थिक कल्याण उत्पन्न करती है। अधिकतम आर्थिक कल्याण वही नहीं है जो प्रति व्यक्ति अधिकतम आय हैं परन्तु व्यवहारिक दृष्टि से उसे इसके समान माना जा सकता है।"14

आधुनिक समय में डाल्टन एवं रॉबिन्स के विचारों की अधिक चर्चा है। दोनों अर्थशास्त्रियों में अनुकूलतम जनसंख्या के लिये दो पृथक–पृथक आधार प्रस्तुत किये है, डॉल्टन ने अनुकूलतम जनसंख्या की परिभाषा इस प्रकार प्रस्तुत की है – "अनुकूलतम जनसंख्या वह जनसंख्या है जो प्रति व्यक्ति अधिकतम आय देती है।"15

राबिन्स ने अनुकूलतम जनसंख्या की परिभाषा देते हुये लिखा है – " वह जनसंख्या जो अधिकतम उत्पादन सम्भव करती है, अनुकूलतम जनसंख्या है।"16

अनुकूलतम बिन्दू स्थिर नहीं रहता –:

किसी भी देश की जनसंख्या जो किसी विशेष समय में अनुकूलतम जनसंख्या मानी जाती है सदैव के लिये अनुकूलतम नहीं बनी रह सकती। अनुकूलतम जनसंख्या की स्थिति उस समय जन्म लेती है जब देश के तत्कालीन संसाधनों – प्राकृतिक साधनों, उत्पादन की कला एवं पूँजी का पूर्णरूपेण उपयोग करती है। यदि संसाधनों में किसी प्रकार का परिवर्तन न हो, तब यह अनुकूलतम जनसंख्या स्थिर रहेगी। वास्तविक जगत में यह देखने में आता है कि देश के साधनों में भी बड़ी तीव्र गति से परिवर्तन होता रहता है। किसी देश की अनुकूलतम जनसंख्या निश्चित व स्थिर नहीं होती बल्कि यह देश के उत्पादन के साधनों, उसकी कार्यक्षमता, देश के प्राविधिक तथ्य, वैज्ञानिक ज्ञान एवं उत्पादन प्रणाली में सुधार व वृद्धि के साथ आगे बढ़ती है और इनमें कमी के साथ पीछे हटती है। जब एक ओर संसाधनों में परिवर्तन होगा तब निश्चय ही उन संसाधनों को पूर्णरूपेण उपयोग में लाने वाली जनसंख्या में भी परिवर्तन होगा। इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि किसी देश के लिये एक विशेष समय पर अनुकूलतम सिद्ध होने वाली जनसंख्या सदैव के लिये अनुकूलतम जनसंख्या नहीं मानी जा सकती है। सामान्य परिस्थितियों में प्रत्येक देश में आर्थिक रूप से प्रगति होती रहती है। अतः अनुकूलतम जनसंख्या भी उस प्रगति के साथ बढ़ती रहती है।

३. जैविकीय सिद्धान्त –:

जनसंख्या के नैसर्गिक या जैविकीय सिद्धान्तों के अन्तर्गत उन विचारों का अध्ययन किया जाता है जो प्रकृित प्रदत्त गुणों अथवा जैविकीय अवधारणाओं से सम्बद्ध है। इन सिद्धान्तों के अन्तर्गत यह विचार दिये गये है कि मनुष्य का जन्म एवं मरण उसी प्रकार होता है जैसा कि पेड़–पौधों एवं अन्य जीव–जन्तुओं का होता है। अर्थात् जनसंख्या को निर्धारित करने वाले घटक मुख्यतः जीवशास्त्र से सम्बन्धित हैं।

इनमें प्रमुख विचारधारायें निम्न हैं :–

1. माइकेल थामस सैडलर का घनत्व एवं सन्तानोत्पादक सिद्धान्त।
2. थामस डबलडे का आहार सिद्धान्त।
3. रेमण्ड पर्ल एवं रीड का लाजिस्टिक वक्र सिद्धान्त।
4. कोराडो गिनी का जैविक अवस्था सिद्धान्त।
5. हरबर्ट स्पैन्सर का प्रजनन फलन सिद्धान्त।
6. कैस्ट्रो का प्रोटीन उपयोग सिद्धान्त।

9. सैडलर का घनत्व सिद्धान्त –:

सैडलर के अनुसार "मानव की प्रजनन शक्ति उसके घनत्व का प्रतिलोमानुपाती होती है।" प्रजननता बनाये रखने के लिये शारीरिक श्रम एवं एकान्त दोनों आवश्यक है। जैसे–जैसे सभ्यता बढ़ती जा रही है शारीरिक श्रम घटता जा रहा है। विश्व का एक बड़ा भाग कार्य की कर्कशता से अपना पिण्ड छुड़ा चुका है तथा उनका अधिकांश कार्य मशीनें करने लगी हैं। उन देशों में मानव कार्य केवल बौद्धिक व्यायाम रह गया है। दूसरी ओर आवास उस दर से नहीं बढ़ पा रहा है जिस से जनसंख्या बढ़ रही है। अतः एकान्त वातावरण का धीरे–धीरे आभाव होता जा रहा है। जिसके परिणामस्वरूप जन्म दर का घटना अनिवार्य है। सैडलर की धारणा है कि जिस प्राकृतिक नियम के आधार पर माल्थस ने जनसंख्या की बेरोक टोक वृद्धि की कल्पना की तथा मनुष्य के अन्धकारमय भविष्य की कल्पना की। उसी प्राकृतिक नियम के आधार पर उन्होंने अधिकतम मानव कल्याण की सम्भावना की व्याख्या की है "प्रत्येक कदम पर जनवृद्धि का सिद्धान्त सिमट रहा है और मेरी धारणा है कि जब अधिकांश मनुष्य आनन्द की चरमावस्था पर होती जनवृद्धि स्वतः रूक जायेगी।"17

सैडलर का विचार है कि जनसंख्या बढ़ने के साथ प्रजननता घटती जाती है तथा जनसंख्या घटने के साथ प्रजननता बढ़ती जाती है अतः जनसंख्या स्वयंमेव वातावरण के साथ सामंजस्य स्थापित कर लेती है।

२. डबलडे का आहार सिद्धान्त –:

डबलडे ने जनसंख्या विकास को निर्धारित करने में खाद्य–पूर्ति को सबसे महत्वपूर्ण घटक माना। डबलडे का विचार था कि मनुष्य की संख्या में वृद्धि और खाद्यपूर्ति में विपरीत सम्बन्ध होता है। खाद्यपूर्ति जितनी अधिक होती है जनसंख्या की वृद्धि–दर उतनी ही कम होगी। अन्य शब्दों में अधिक भोजन सन्तानोत्पादन प्रवृत्ति में बाधक होता है। इस तरह, डबलडे का मत था कि जनसंख्या की प्रजनन–दर पर घनत्व आधारित न होकर जनसंख्या के आहार पर निर्भर करती है। उन्होंने इसे जनसंख्या का सामान्य नियम बताया।

उन्हीं के शब्दों में "जिस समाज में जीवन–यापन कठिन होता है तथा जीवित रहने के लिये संघर्ष करना पड़ता है वहाँ प्रकृति जन्म–दर को बढ़ाकर इस तरह होने वाली क्षति की पूर्ति कर देती है। इसके विपरीत यदि जीवन–यापन सहज है तथा मृत्यु का दबाव कम है तो वहाँ प्रकृति प्रजननशीलता में कमी लाकर स्वयं सन्तुलन बनाये रखती है। यह नियम जीव–जन्तुओं एवं वनस्पतियों सभी में क्रियाशील रहता है।"18

३. वृद्धिघाती वक्र सिद्धान्त –:

सन् 1920 में रेमण्ड पर्ल एवं जे0 रीड ने सन् 1970 में सं0 रा0 अमेरिका में जनसंख्या वृद्धि के संमको का अध्ययन कर एक गणितीय समीकरण दिया। उनका विचार था कि जनसंख्या में चक्रीय प्रवृत्ति से वृद्धि होती है। प्रो0 पर्ल फल की मक्खियों पर किये गये अपने प्रयोग के आधार पर जनसंख्या के व्यवहार सम्बन्धी इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे। उन्होंने फल की मक्खियों पर प्रयोग के समय यह देखा कि पहले फल–मक्खियों की संख्या तेजी से बढ़ती है, फिर उनकी वृद्धि–दर धीमी पड़ जाती है और अन्त में घट जाती है। फिर उनकी संख्या में वृद्धि की यह चक्रीय प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है, परन्तु हर बार जब उनकी संख्या घटने लगती है तब भी उनकी घटी संख्या मूल संख्या से अधिक ही रहती है। अपनी पुस्तक जनांकिकी के छठे संस्करण में जीवन चन्द्रपंत ने

रेमण्ड पर्ल की धारणा की व्याख्या करते हुये कहा कि "किसी क्षेत्र विशेष में किसी निश्चित अवधि में जनसंख्या निम्नतम सीमा से उस उच्चतम सीमा की ओर बढ़ती है जिसे सांस्कृतिक स्थितियों एवं उत्पादन की रीतियों को दृष्टिगत रखते हुये वह जनसंख्या सहन कर सकती है। जनसंख्या की यह वृद्धि चक्रों में होती है। चक्र के प्रारम्भ में जनसंख्या की वृद्धि धीरे–धीरे होती है। किन्तु जनसंख्या–वृद्धि की निरपेक्ष दर प्रति समय इकाई के साथ चक्र के मध्य–बिन्दु तक उत्तरोत्तर बढ़ती है। इस बिन्दु के बाद जनसंख्या वृद्धि की दर समय की प्रति इकाई के साथ चक्र की समाप्ति तक धीरे–धीरे घटती जाती है।"19

४. गिनी का जैविक अवस्था सिद्धान्त –:

उन्होंने जनसंख्या विकास को एक सामाजिक व आर्थिक परिवर्तन न मानकर प्राणिशास्त्रीय गुणों में परिवर्तन माना है। किसी समाज की जनसंख्या के उद्भव व विकास की व्याख्या करते हुये गिनी अपना मत व्यक्त करते हैं किसी समाज में जनसंख्या वृद्धि की दर सदैव एक समान नहीं होती तथा प्रत्येक समाज में प्रायः उसके विभिन्न चरणों में भिन्न–भिन्न दरें रहती है क्योंकि प्रजननशीलता का निर्धारण जैविकीय शक्तियों द्वारा होता है। गिनी ने विभिन्न देशों के जनसंख्या सम्बन्धी आँकड़ों को एकत्र किया और विश्लेषण कर वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि जिस प्रकार किसी व्यक्ति के जीवन काल में अनेक अवस्थायें होती है ठीक है उसी प्रकार एक समाज भी अनेक अवस्थाओं से गुजरता है।

५. हरबर्ट स्पैन्सर का प्रजननता सिद्धान्त –:

स्पैन्सर की धारणा थी कि प्राकृतिक नियम मनुष्यों की संख्या निर्धारित करता है। अतः मनुष्यों को अपनी संख्या पर चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं है। प्रकृति मनुष्यों के दृष्टिकोण में परिवर्तन करती रहती है। उन्होंने दो घटकों की व्याख्या की है। एक को वे अभिव्यक्तीकरण कहते हैं जिसका आशय है व्यक्तित्व का विकास जिसमें अधिक समय एवं शक्ति लगती है, जैसे अपने रूप, रंग, बाल, पहनावे की ओर अधिक

ध्यान देना, शिक्षा, स्वास्थ्य की सुरक्षा करना आदि। ये व्यक्तित्व विकास की क्रियायें है। दूसरा घटक प्रजनन से सम्बन्धित है। प्रो0 स्पैन्सर का विचार है, " जो व्यक्ति अपने व्यक्तित्व के विकास के प्रति जितना अधिक जागरूक होगा उसकी प्रजननता उतनी ही कम होगी। अभिव्यक्तीकरण एवं सन्तानोत्पादन के बीच प्रत्यक्ष विरोध है, अतः सभ्यता के विकास के साथ ही साथ जैसे– जैसे महिलायें अपने व्यक्तित्व को निखारने पर अधिक समय, श्रम व शक्ति लगायेगी उतनी ही उनकी सन्तानोत्पादन की प्रवृत्ति घट जायेगी।"20

६. कैस्ट्रो का प्रोटीन उपयोग सिद्धान्त –:

कैस्ट्रो का विचार है "कि प्रोटीन से मोटापा बढ़ता है तथा आस्ट्रोजन निष्क्रिय हो जाते है अतः सन्तानोत्पादकता कम हो जाती है। इसके विपरीत कम प्रोटीन वाले भोजन सन्तानोत्पादकता बढ़ाते है क्योंकि पौष्टिक भोजन न मिलने से आस्ट्रोजन सक्रिय रहते है अतः प्रजननता बढ़ती है।"21

उन्होंने भारत पर टिप्पणी करते हुये लिखा है कि " भारत में पैदा होने वाले आधे बच्चे केवल भूख खाते है और वह स्वयं कुछ पैदा करने से पहले मौत के शिकार हो जाते है।"

जनांकिकी संक्रमण सिद्धान्त –:

यह जनसंख्या के विकास का आधुनिक सिद्धान्त है जिसे विश्व के अधिकांश अर्थशास्त्रियों व जनसंख्याशास्त्रियों का समर्थन मिला है। यह सिद्धान्त यूरोप के अनेक देशों के आँकड़ों पर आधारित है। यह सरल है, तर्क संगत है तथा सभी सिद्धान्तों की तुलना में सर्वाधिक वैज्ञानिक प्रतीत होता है। वर्तमान जनसंख्याशास्त्रियों का मत है कि प्रत्येक समाज की जनसंख्या को अनेक अवस्थाओं से गुजरना होता है। इसी को जनसंख्या संक्रमण कहा जाता है। जनसंख्या जन्म–दर एवं मृत्यु–दर का फलन है। जन्म एवं मृत्यु दर हर अवस्था में बदलती जाती है। प्रत्येक अवस्था की अपनी विशेषतायें होती है। विश्व का कोई देश प्रथम अवस्था में है तो कोई द्वितीय, और कोई तृतीय अवस्था में। इन तीनों अवस्थाओं का संक्षिप्त विवरण निम्न है :–

प्रथम अवस्था –:

यह अवस्था पिछड़े देशों में होती है जिनमें प्राथमिक उद्योगों से जीवन–यापन के साधन जुटाये जाते हैं। कृषि आय का प्रमुख श्रोत है – ग्रामीण अर्थव्यवस्था है, द्वितीयक उद्योग तो है ही नहीं, यदि है तो बहुत छोटे पैमाने पर। तृतीयक उद्योग जैसे–बीमा, बैंक आदि नहीं होते हैं। प्रति व्यक्ति आय कम है अतः बच्चे आय बढ़ाने के श्रोत होने के कारण दायित्व नहीं, वरन् पूँजी है। संयुक्त परिवार व्यवस्था होती है, अतः लालन–पालन की कोई समस्या नहीं होती है। इन्हीं सब कारणों से प्रथम अवस्था में जन्म दर ऊँची होती है तथा मृत्यु दर भी ऊँची होती है। प्रथम चरण में बड़े परिवार के अनेक आर्थिक लाभ भी होते है।

प्रथम अवस्था में जन्म दर करीब 46 से 48 प्रति हजार है। किन्तु मृत्यु दर भी इसके करीब–करीब बराबर होती है। अतः जनसंख्या बहुत धीरे–धीरे बढ़ती है। यही कारण है इसे उच्च स्थिरता की अवस्था भी कहा जाता है, यद्यपि जन्म दर एवं मृत्यु दर में घटने की प्रवृत्ति है किन्तु वह इतनी कम है कि उसे स्थिर माना जा सकता है।

द्वितीय अवस्था –:

द्वितीय चरण में अर्थव्यवस्था आर्थिक विकास की ओर अग्रसर होती है। कृषि के साथ उद्योग भी बढ़ने लगते हैं। परिवहन व शहरीकरण होने से गतिशीलता बढ़ती है। शिक्षा का विस्तार, आय में वृद्धि, भोजन, वस्त्र, आवास, स्वास्थ्य एवं चिकित्सा में सुधार होने से मृत्यु दर घटती है। किन्तु धर्मान्धता, रीति–रिवाज व रूढिवादिता के बन्धन ढीले नहीं होते है। अतः जन्मदर नहीं घटती है और जनसंख्या विस्फोट की स्थिति आ जाती है।

"A.J. Coale and E. M. Hoover" children contribute at an early age and are traditional soures of security in the old age of parents. The prevalent high death rates especially in infancy imply that such seaurity com be attained only when many children are born." 22

द्वितीय अवस्था जनांकिकी संक्रमण की महत्वपूर्ण अवस्था है, जिसमें मृत्यु दर तेजी से गिरती है और जन्म दर धीरे–धीरे गिरती है। इस अवस्था में जन्म दर प्रारम्भ में धीरे–धीरे घटती है किन्तु उत्तरार्ध में जन्म दर में तेजी से गिरावट आती है। ठीक इसके विपरीत मृत्यु दर में पूर्वाद्ध में तेजी से गिरावट आती है और उत्तरार्द्ध में गिरावट की दर धीमी हो जाती है। इन सबका परिणाम यह होना है कि जनसंख्या वृद्धि की दर अधिकतम होती है। इस चरण को शिशु प्रसार अथवा जनसंख्या विस्फोट का चरण कहते है। इस चरण को निम्न तीन उप विभागों में विभाजित किया जा सकता है –

प्रारम्भिक संक्रमण काल –:

इसमें मृत्यु–दर में गिरावट होने लगती है क्योंकि संक्रामक बीमारी एवं भुखमरी पर अंकुश लग जाता है।

मध्य संक्रमण काल –:

इसमें मृत्यु दर में गिरावट जारी रहती है और जन्म–दर में गिरावट प्रारम्भ हो जाती है। किन्तु दोनों का अन्तर अब भी बहुत होता है अतः जनसंख्या वृद्धि की दर ऊँची रहती है।

निलम्बित संक्रमण काल –:

इसमें मृत्यु–दर घटती तो है किन्तु अब उसमें और अधिक कमी होने की सम्भावना कम है। जन्म–दर में कमी आ जाती है अतः जनवृद्धि की दर अब कम हो जाती है।

तृतीय अवस्था –:

तृतीय चरण में जीवन स्तर सुधार, मानसिक विकास, नारीशिक्षा, नारी रोजगार में वृद्धि तथा औरतों में जागृति आती है। परिणाम स्वरूप औरते कम बच्चे पसन्द करने लगती है। सारे जीवन भर बच्चे खिलाने की अपेक्षा वह अन्य क्षेत्रों में सहयोग करना चाहती है। दूसरी ओर आर्थिक आकांक्षायें बढ़ती है, बच्चों की शिक्षा दीक्षा अच्छी तरह करने की होड़ होने लगती है। शहरीकरण से आर्थिक कशमकश बढ़ती है एवं साधन कम पड़ने लगते हैं। परिवार नियोजन की विधियां विकसित होती हैं। विवाह की आयु बढ़ने लगती है जिसके परिणामस्वरूप प्रजनन की आयु वर्ग का

विस्तार घटने लगता है और दिखावा प्रभाव अत्यधिक प्रभावशील हो जाता है। अतः जन्म दर घटने लगती है। तृतीय चरण में मृत्यु–दर एवं जन्म–दर दोनों बहुत नीचे आ जाते है, यद्यपि अब भी उनकी प्रवृत्ति घटने की होती है किन्तु यह दर इतनी धीमी होती है कि उसे नगण्य माना जा सकता है। इस चरण में जनसंख्या वृद्धि की शुद्ध दर नीची होती है अतः इसे निम्न स्थिरता की अवस्था भी कहते है।

विश्व के सभी देश इन्हीं तीन प्रमुख अवस्थाओं से गुजर रहे हैं अथवा गुजर चुके हैं। अफ्रीका के कुछ देश प्रथमावस्था में हैं, तो एशिया के कुछ देश द्वितीय अवस्था में हैं, तथा यूरोपीय देश तृतीय अवस्था में हैं।

जनांकिकी संक्रमण सिद्धान्त एवं भारत –:

भारत में सन् 1901 से 1921 तक के बीस वर्षों में जनसंख्या में केवल 5.44 प्रतिशत की वृद्धि हुयी। इस प्रकार प्रतिवर्ष जनसंख्या विकास की दर 27 प्रतिशत रही। अतः भारत सन् 1901 से 1921 की अवधि में जनांकिकी संक्रमण की प्रथम अवस्था में था। सन् 1921 से भारत जनसंख्या संक्रमण की द्वितीय अवस्था में था। यह अवस्था जनसंख्या विस्फोट की अवस्था है। जिसमें जनसंख्या वृद्धि की दर अधिकतम रहती है योजना आयोग के एक प्रक्षेपण के अनुसार सन् 1901 से 2001 की अवधि तक जन्म एवं मृत्यु दरें तालिका 3.1 से स्पष्ट हो जायेगी एवं चित्र 3.1 से स्पष्ट हो जायेगा।

तालिका ३.१

जन्म दर, मृत्यु दर एवं वृद्धि दर (प्रति वर्ष)

दशक	जन्म दर	मृत्यु दर	वृद्धि दर
1901–1911	49.2	42.6	6.6
1911–1921	48.1	47.2	0.9
1921–1931	46.4	46.3	10.0
1931–1941	45.2	31.2	14.0
1941–1951	39.9	27.4	12.5
1951–1961	40.9	22.8	18.1
1961–1971	41.1	18.9	22.2
1971–1981	33.3	12.5	20.8
1981–1991	27.5	9.5	18.1
1991–2001	26.1	8.7	17.4

स्रोत – अरूणेश सिंह भारतीय अर्थव्यवस्था एक झलक पृष्ठ 2.1

भारत में जन्म दर, मृत्यु दर एवं वृद्धि दर

पैमाना

OY अक्ष पर .....जन्म दर, मृत्यु दर एवं में वृद्धि दर

OX अक्ष पर .....दशक

दशक
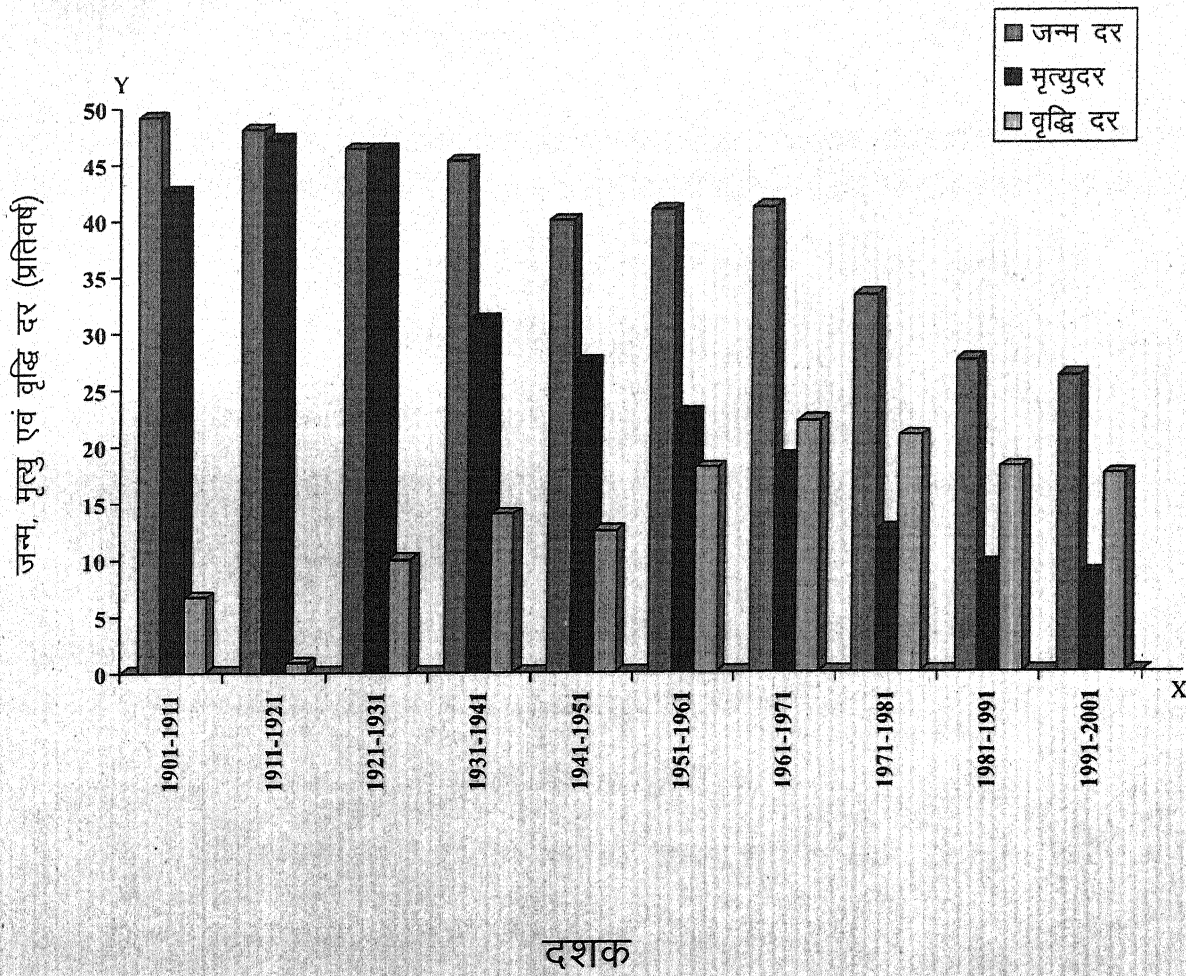
चित्र – 3.1

जनसंख्या का सामान्य सिद्धान्त –:

प्रो0 सौवे ने जनसंख्या सम्बन्धी समस्त सिद्धान्तों के आधार पर एक सामान्य सिद्धान्त की रचना की है। प्रो0 सौवे की धारणा है "कि जनसंख्या के नियम परिवर्तनशील एवं मायावी है। अनुभव से पता चलता है कि मनुष्य प्रगति करता है किन्तु अपने बारे में वह बाद में जागरूक होता है।" 23

प्रो0 सौवे का मत है कि "जनसंख्या विभिन्न तत्वों आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, प्राविधिक एवं पर्यावरण आदि से प्रभावित होता है। जब मानव सभ्यता की आदिम अवस्था में था तो मनुष्य ने अपने अस्तित्व के लिये बिल्कुल उसी प्रकार संघर्ष किया जैसे पशु करते है।"24 मानव जनसंख्या उन्हीं तत्वों से निर्धारित हुयी जिनसे पशु संख्या निर्धारित होती है। प्रकृति द्वारा प्रदत्त खाद्य सामग्री सीमित होती है तथा उससे एक निश्चित मात्रा में व्यक्ति जीवन यापन कर सकते है। जबभी जनसंख्या इस अधिकतम सीमा पर पहुँचती है, प्रकृति के अवरोध प्रारम्भ हो जाते हैं और मृत्यु दर में वृद्धि के साथ जनसंख्या बिल्कुल वैसे ही घट जाती है। इस प्रकार माल्थस का जनसंख्या चक्र लागू होता है। जनसंख्या की समस्या मात्र, मात्रा की समस्या नहीं है वरन उसकी संरचना एवं उसके गुण में सुधार की भी समस्या है।

वास्तविकता यह है कि जनसंख्या एक सामान्य सिद्धान्त है जो सभ्यता के भिन्न–भिन्न युगों में भिन्न–भिन्न रूप ले लेता है। आदिम युग में यह सिद्धान्त प्रकृति के पशु संख्या सिद्धान्त का ही दूसरा रूप था।

"सभ्यता के द्वितीय चरण में सामन्तवाद का उदय होता है। समाज में एक वर्ग सत्ता हथिया लेता है, परिणामस्वरूप असमानता बढ़ती है। इस असमानता से जनसंख्या बढ़ती है। सामन्तवाद के बाद औद्योगीकरण का युग आता है। इस औद्योगीकरण के युग में मध्यम वर्ग का जन्म होता है तथा माल्थस का जनसंख्या चक्र (अति जनसंख्या–नैसर्गिक अवरोध–सन्तुलित जनसंख्या) क्रियान्वित होता है। यह औद्योगिक युग एवं यह माल्थस का जनसंख्या चक्र सामन्तवाद से साम्यवाद की ओर ले जाता है।"25

शासक वर्ग चाहता है कि जनसंख्या बढ़े क्योंकि जनसंख्या बढ़ने से सस्ता श्रम मिलता है समाज में साधनों में ही नहीं वरन् उन्नति के अधिकांश अवसरों में पूँजीपति वर्ग का आधिपत्य रहता है। मौद्रिक एवं आर्थिक जगत में उदारतावाद छाया रहता है। जिससे असमानतायें बढ़ती है तथा विषमता एवं शोषण से संकट अधिक गहरा एवं व्यापक होने लगता है। प्राविधिक विकास बेरोजगारी को बढ़ाता है। यद्यपि प्राविधिक विकास बेरोजगारी बढ़ा भी सकता है और घटा भी सकता है। यह प्राविधिक ज्ञान के स्वास्थ्य एवं उपभोग के विस्तार पर निर्भर करता है। किन्तु विगत वर्षों में प्राविधिक विकास ने बेरोजगारी को बढ़ाया है।

प्रो0 सौवे का मत है " कि आदिम अवस्था में मनुष्य एवं पशु का जीवन विकास एवं मरण करीब–करीब एक सा था। सामन्तवादी व्यवस्था ने वर्गभेद को जन्म दिया। एक ओर साम्यवाद व दूसरी ओर पूँजीवाद पनपने लगा। जनसंख्या पहले में साध्य का रूप लेने लगी तो दूसरे में साधन का। माँग बढ़ाने की समस्या ने जहाँ जनसंख्या वृद्धि को प्रोत्साहन दिया किन्तु प्रविधि विकास ने साधन की माँग घटा दी। परिणाम स्वरूप बेरोजगारी एवं पूर्ति अतिरेक को जन्म मिला।"26

विकासशील देशों में अति मानव वास, अर्द्ध विकास एवं शिक्षा के आभाव ने मानव कल्याण को ग्रस्त कर दिया, जनसंख्या के विभिन्न निर्धारक तत्वों का आज भी पूरा ज्ञान नहीं है, अतः जनसंख्या की समस्या अभी भी यथावत बनी हुयी है। मानव की सबसे बड़ी समस्या अल्प विकास एवं निरक्षरता है। इनको यदि समानार्थी नहीं तो समकालीन अवश्य समझा जाना चाहिये तथा इनमें तीसरा (निरक्षरता) पहले दो का (अतिवास एवं अर्द्ध विकास) कारण है। इसी शिक्षा के अभाव ने विश्व को सर्वाधिक क्षति पहुँचायी है।

भारत में जनसंख्या वृद्धि के विशेष कारण –:

भारत में जनसंख्या वृद्धि की विस्फोटक एवं चिन्ताजनक स्थिति की ओर आज सभी का ध्यान आकृष्ट हो रहा है। अनेक अर्थशास्त्री जनाधिक्य की स्थिति को

स्वीकार नहीं करते थे। वे अपना ध्यान विकास की वर्तमान परिरिस्थितियों के स्थान पर विकास सम्भावनाओं पर अधिक बल देते थे। भारत में बढ़ती हुयी जनसंख्या की समस्या आज गम्भीर रूप धारण कर रही है। विषमताओं का जो वर्तमान वातावरण है। उसके लिये अनेक कारण उत्तरदायी है परन्तु इन कारणों में जनाधिक्य एक महत्वपूर्ण कारण है। जनसंख्या की वृद्धि अर्थव्यवस्था पर भारी दबाव डाले हुये है।

डा0 चन्द्रशेखर का यह कथन उपर्युक्त है " कि हम जनसंख्या की दृष्टि से इस तीव्र गति से दौड़ रहे हैं कि प्रगति एवं परिवर्तनों के उपरान्त भी आर्थिक दृष्टि से हम ठहरे हुये खड़े हैं।"27

भारत की जनसंख्या समस्या का सन्तोषप्रद समाधान खोजने की स्थिति अत्यधिक महत्वपूर्ण है। यदि हम इसमें असफल होते हैं तो इससे सामाजिक एवं राजनीतिक विनाश की स्थिति उत्पन्न होती है और यदि सफल होते हैं तो इससे भारत को नेतृत्व प्राप्त होगा और यह आशा का केन्द्र बन सकेगा। देश की जनसंख्या सम्बन्धी स्थिति बहुत अधिक उलझी हुयी है और योजनाबद्ध विकास के मार्ग में तरह–तरह की कठिनाइयां उपस्थिति कर रही है। इस तथ्य में कोई संदेह नहीं है कि आज भारत की जनसंख्या ने केवल निरपेक्ष रूप से बहुत अधिक है बल्कि इसमे वृद्धि भी लगातार खतरनाक तेजी के साथ हो रही है।

भारत में जनसंख्या को बढ़ाने के लिये कोई एक ही कारक उत्तरदायी नहीं है। यहाँ जनसंख्या को बढ़ाने वाले सामाजिक, आर्थिक एवं जनांकिकीय सभी प्रकार के कारक विद्यमान रहे हैं और अब भी विद्यमान हैं। देश की सामाजिक एवं आर्थिक दशाओं में परिवर्तन हो रहा है परन्तु इस परिवर्तन की गति बहुत धीमी है। इसीलिये यहाँ जनसंख्या में भी बहुत धीमी गति से कमी आ रही है। ऊँची जन्म–दर को बढ़ाने में निम्न कारण उत्तरदायी है –

१. जलवायु एवं भौतिक परिस्थितियाँ –:

भारत एक गर्म देश है जहाँ ठण्डे देशों की तुलना में विवाह जल्दी किया जाता है। गर्म जलवायु के कारण देश में परिपक्वता की अवधारणा जल्दी ही प्राप्त हो जाती है। जल्द ही विवाह के कारण अथवा दूसरे शब्दों में सन्तानोत्पत्ति की अवधि अधिक होने के कारण जन्म दर बढ़ती है। लड़कियां कम उम्र में युवावस्था को प्राप्त कर लेती है। अतः उनकी शादी भी कम उम्र में हो जाने से प्रजनन समय बढ़ जाता है। अतः भारत में ग्रीष्म जलवायु भी जनसंख्या वृद्धि के लिये उत्तरदायी है।

२. गरीबी एवं आर्थिक विभिन्नता –:

आय की कमी तथा निम्न जीवन–स्तर भी जन्म–दर में वृद्धि का एक कारण है। भारत में प्रति व्यक्ति आय अन्य देशों की तुलना में काफी कम है। इसी कारण यहाँ अधिकांश व्यक्तियों के भोजन, स्वास्थ्य, आवास आदि का स्तर नीचा है। जिन व्यक्तियों का जीवन–स्तर नीचा होता है, वे परिवार नियोजन के प्रति बहुत उदासीन होते है। निर्धनता के कारण गरीब माता–पिता को यह आशा होती है कि उनके बच्चे उनके साथ काम करके उनकी आय में वृद्धि करेंगे। इस भावना से प्रेरित होकर वह अधिक सन्तानोत्पत्ति का प्रयास करता है। गरीबी के कारण वह भाग्यवादी हो जाता है और बच्चों को ईश्वर की देन मानता है और विश्वास करता है कि जिसने संसार में जन्म लिया है उसका पालन–पोषण किसी न किसी तरह ईश्वर करता है।

गुन्नार मिर्डल के अनुसार "गरीब समाज में बच्चे परिवार विशेष पर अधिक भार नहीं होते। इसके विपरीत अक्सर वे व्यक्ति के लिये सामाजिक सुरक्षा का एक मात्र साधन होते है।"

आर्थिक दृष्टि से विपन्न लोगों के परिवार प्रायः बड़े होते हैं। जबकि साधन सम्पन्न लोगों के परिवार बहुधा छोटे होते है। गरीब परिवारों में विभिन्न कारणोंवश विवाह और प्रजनन के सम्बन्ध में काफी असावधानियां बरती जाती है अतः बच्चों की संख्या अधिक होती है। यदि पश्चिमी देशों को देखे तो वहाँ उच्च और

सुविधामय जीवन–स्तर के कारण ही जन्म–दर कम है। गरीब परिवारों में मनोरंजन के स्वरथ्य साधनों का आभाव पाया जाता है। सम्भवतः इसीलिये डा0 चन्द्रशेखर को कहना पड़ा था कि "केवल स्त्री सहवास ही भारत का एक राष्ट्रीय खेल है।"28

वाडिया और मार्चेन्ट के शब्दों में "जिस स्थान पर जीवन को स्थायित्व बनाये रखने का कुछ भी आधार न हो, उस स्थान पर बच्चों का जन्म अतिरिक्त आय–बढ़ाने का एक साधन होता है। क्योंकि परिवार की अल्प आय बढ़ाने के लिये उसे छोटी आयु में ही काम पर लगा दिया जाता है।" 29

आधुनिक विद्वानों का विचार है कि अर्द्ध विकसित देशों में गरीबी जनसंख्या विस्फोट के कारण नहीं बल्कि गरीबी के कारण प्रजननता बहुत अधिक है। इस सम्बन्ध में महमूद मजदानी ने टिप्पणी की है कि "व्यक्ति इसलिये गरीब नहीं होता है कि उनके परिवार बहुत बड़े है। इसके विपरीत उनके परिवार बहुत बड़े है क्योंकि वे बहुत गरीब है।"30

वास्तव में परिवार में आय स्तर बहुत कम होने पर परिवार में एक अतिरिक्त बच्चा होने का फायदा सामान्य तौर पर उसके पालन–पोषण के खर्चे से अधिक नजर आता है। एक अतिरिक्त बच्चे से परिवार को जो लाभ मिलते है वह प्रत्याशित सेवायें, आय तथा सामाजिक सुरक्षा को बच्चे की सुरक्षा के रूप में होते है। सम्भवता पी0 जी0 जोशी ने ठीक ही कहा है कि "आर्थिक असुरक्षा की परिस्थितियों में निर्धन वर्ग की प्रवृत्ति आर्थिक सुरक्षा को बच्चों की संख्या में करने से नहीं बल्कि वृद्धि करने से संवृद्ध करती है। निर्धनों के पास कोई अन्य आर्थिक सम्पत्ति नहीं होती, केवल उनका अपना श्रम ही उनकी सम्पत्ति होती है अतः परिवार में आय भी उतनी अधिक होगी। नीची जीवन प्रत्याशा दर पुनः बच्चों की आर्थिक संख्या को प्राथमिकता देती है।" 31

गरीबी में बच्चों की संख्या अधिक होने के तथ्य का समर्थन करते हुये विश्व बैंक को 1984 की रिपोर्ट में भी यह कहा गया है कि इस बात को मानने के लिये पर्याप्त तर्क है कि निर्धन माता–पिता के लिये बच्चों की आर्थिक लागत कम तथा

आर्थिक एवं अन्य लाभ अधिक होते हैं तथा अधिक बच्चों को रखना आर्थिक रूप से तर्कसंगत होता है।''32

इस तरह निर्धनता एवं रहन–सहन का नीचा–स्तर भारत की जनसंख्या और जन्म–दर बढ़ाने का एक महत्वपूर्ण कारक है। यह कहा जा सकता है कि भारत में जनसंख्या की समस्या भारत की निर्धनता का कारण नहीं बल्कि परिणाम है।

३. सामाजिक एवं धार्मिक कारण –:

हमारे देश में धार्मिक एवं सामाजिक अन्धविश्वास, संयुक्त परिवार प्रथा, शिक्षा का अभाव तथा जन्म निरोधक उपायों का बहुत अधिक सीमित उपयोग, बाल विवाह, विधवा विवाह, पुत्र प्राप्ति की अनिवार्यता आदि भी जनसंख्या में वृद्धि के लिये बहुत अधिक उत्तरदायी है।

i. विवाह की व्यापकता –:

भारत में विवाह धार्मिक एवं सामाजिक दृष्टि से एक जरूरी संस्कार है। कन्या का विवाह न होना समाज में बुरा समझा जाता है। इस देश में कुछ शिक्षित परिवारों को छोड़कर सामान्यतः लड़कियों का विवाह 18 वर्ष से भी कम आयु में कर दिया जाता है। अतः हर व्यक्ति चाहे वह कितना ही गरीब क्यों न हो, परिवार का पालन–पोषण करने की उसकी क्षमता हो अथवा न हो, वह विवाह अवश्य करता है। पत्नी के बिना व्यक्ति अधूरा होता है, वह धार्मिक संस्कारों में बिना पत्नी के भाग नहीं ले सकता। यहाँ मुस्लिम समाज में भी विवाह सामाजिक एवं धार्मिक दृष्टि से उचित समझा जाता है। मुसलमानों में बहुपत्नी तथा पुर्नविवाह प्रथा भी प्रचलित है। इस तरह भारतीय समाज में ऐसे नगण्य लोग ही बचते है जिनका विवाह नहीं हो पाता। चूँकि हर भारतीय विवाह करके सन्तान उत्पन्न करना अपना धार्मिक एवं सामाजिक कर्तव्य समझता है अतः यहाँ जन्म दर का ऊँचा होना स्वाभाविक ही समझा जाना चाहिये। डा0 ज्ञानचन्द्र के शब्दों में ''भारत में प्रत्येक व्यक्ति स्वाभाविक क्रिया के समान विवाह करता है।''33

ii- धार्मिक एवं सामाजिक अन्धविश्वास –:

भारत में धार्मिक एवं सामाजिक अन्धविश्वास की आज भी कमी नहीं है। समाज के किसी एक वर्ग के लिये यदि "सन्तान की लालसा एक धार्मिक आवश्यकता है" तो किसी दूसरे वर्ग के लिये "बड़ा परिवार रोजी का आधार है।" प्रायः कहते हुये सुना जाता है कि " बिना सन्तान मनुष्य को न इसलोक में सुख मिलता है और न परलोक में मुक्ति।"

iii. संयुक्त परिवार प्रथा –:

भारत में संयुक्त परिवार व्यवस्था के कारण जन्म–दर का ऊँचा होना स्वाभाविक है। संयुक्त परिवार व्यवस्था के अन्तर्गत आर्थिक दायित्व किसी व्यक्ति विशेष पर न रहकर परिवार के सभी सदस्यों पर सम्मिलित रूप से रहता है। अतः वह परिवार की सीमितता के विषय में नहीं सोचते। इसके विपरीत पाश्चात्य देशों में संयुक्त परिवार की व्यवस्था बहुत कम दिखाई देती है और सन्तानों के भरण–पोषण का दायित्व उनके माता–पिता पर ही होता है। अतः वह छोटे परिवार को पसन्द करते हैं और सन्तान की उत्पत्ति भी कम करते हैं।

iv. बाल विवाह –:

यद्यपि यह प्रथा शिक्षा व सामाजिक चेतना के विकास के साथ कम हो गयी है तथापि बाल विवाह प्रथा आज भी देश में विद्यमान है। हमारे देश में कुछ शिक्षित परिवारों को छोड़कर सामान्यतः लड़कियों का विवाह 15 वर्ष की आयु से कम में ही कर दिया जाता है। अतएव उनका सन्तानोत्पादन–काल अधिक होता है। शारदा एक्ट के अनुसार विवाह की आयु जो 14 वर्ष थी उसे अब 18 वर्ष कर दिया गया है। और लड़कों की आयु 21 वर्ष है। प्रजनन आयु 15–49 वर्ष मानी जाती है। अतः शीघ्र विवाह होने से यह अवधि बढ़ जाती है। आजकल सरकार लड़कियों की आयु 18 वर्ष से 21 वर्ष करने पर विचार कर रही है।

v. विधवा विवाह –:

प्राचीन काल में भारत में विधवा विवाह पर नियन्त्रण था। आज विधवा विवाह होने लगे है। अतः ये जनसंख्या वृद्धि में सहायक बनते है।

vi पुत्र प्राप्ति की अनिवार्यता –:

प्रत्येक दम्पत्ति पुत्र की आकांक्षा रखता है, वंश बेल बढ़ाने के लिये, अन्तिम संस्कार करने के लिये, पितृ–तर्पण (श्राद्ध) करने के लिये, मुक्ति प्राप्ति के लिये पुत्र का होना भारतीय धार्मिक मान्यताओं के कारण आवश्यक हो जाता है। अतः हर एक दम्पत्ति पुत्र की कामना रखता है। इस मान्यता को भारतीय संस्कृति का प्राचीनतम ग्रंथ "मनु स्मृति" का यह उल्लेख अधिक स्पष्ट करता है, पुत्र जन्म से मनुष्य समस्त लोकों पर विजय प्राप्त कर सकता है, पौत्र जन्म से मनुष्य अमरत्व को प्राप्त होता है, और प्रपौत्र जन्म से उसे सूर्य लोक में स्थान मिलता है। इस संदर्भ में डा0 "ज्ञान चन्द्र" ने अपना मन्तव्य व्यक्त किया है" कि हमारे देश में ऊँची जन्म–दर हमारी संस्कृति का ही एक अंश है। हमारी इन सामाजिक व नैतिक मान्यताओं में जब परिवर्तन होगा, चाहे वह विवशतावश हो या स्वेच्छा से हो, तभी हम यह अपेक्षा कर सकेंगे कि अन्य देशों की तरह भारत में भी जन्म दर कम हो जायेगी।"34

४. भारत में ऊँची जन्म एवं नीची मृत्यु दर –:

भारत में जनसंख्या केवल निरपेक्ष रूप से बहुत अधिक है बल्कि इसमें वृद्धि भी लगातार खतरनाक तेजी के साथ हो रही है। इसका परिणाम यह हुआ है कि जनसंख्या उत्पत्ति का एक महत्वपूर्ण संसाधन होने के बाबजूद यह बहुत बड़ी बाधा बन गयी है। वास्तव में किसी भी देश में जनसंख्या में होने वाली वृद्धि एवं वृद्धि की गति मुख्य रूप से वहाँ प्रचलित जन्म दर, मृत्यु दर एवं स्थानान्तरण का परिणाम होती है। भारत में जनसंख्या में तीव्र वृद्धि मुख्य रूप से ऊँची जन्म दर एवं लगातार गिरती हुयी मृत्यु दर के कारण रही है। उदाहरण के लिये जहाँ 1911 में प्रति हजार जन्म दर 49.4 तथा मृत्यु दर 42.6 हो गयी, वही 1951 में यह क्रमशः 39.9 तथा 27.4 प्रति हजार हो गयी। इसी

प्रकार 2001 की जनगणना के अनुसार जन्म दर 26.1 प्रति हजार तथा मृत्यु दर 08.7 प्रति हजार हो गयी। जन्म एवं मृत्यु दर के इन अन्तरों के परिणामस्वरूप जनसंख्या में वृद्धि की प्राकृतिक दर जहाँ 1911 में 6.6 प्रति हजार थी, वहीं 1951 में 12.5 प्रति हजार एवं 2001 में 17.4 प्रति हजार हो गयी। इसका विवरण तालिका 3.2 में दिया गया है। जन्म एवं मृत्यु दर के इस अन्तराल को ग्राफ 3.1 में और अच्छी तरह से देखा जा सकता है।

तालिका - ३.२

भारत में जन्म एवं मृत्यु दर

जनगणना वर्ष	प्रति हजार जन्म–दर	प्रति हजार मृत्यु–दर	प्रति हजार वृद्धि दर
1911	49.2	42.6	6.6
1921	48.1	47.2	0.9
1931	46.4	46.3	10.0
1941	45.2	31.2	14.0
1951	39.9	27.4	12.5
1961	40.9	22.8	18.1
1971	41.1	18.9	22.2
1981	33.3	12.5	20.8
1991	27.5	9.4	18.1
2001	26.1	8.7	17.4

स्रोत : अरूणेश सिंह, भारतीय अर्थव्यवस्था एक झलक पृष्ठ 2.1

उपर्युक्त तालिका 3.2 से स्पष्ट है कि भारत में 2001 की जनगणना के अनुसार प्रति हजार जन्म दर 26.1 है जो यद्यपि पिछले आठ दशकों से घटती आयी है तथापि अभी भी अत्यधिक ऊँची मानी जायेगी। पुनः यद्यपि इसमें कोई संदेह नहीं है कि

भारत में जन्म दर, मृत्यु दर एवं वृद्धि दर

पैमाना

OY अक्ष पर .....जन्म दर, मृत्यु दर एव जनसंख्या में वृद्धि (प्रति हजार)

OX अक्ष पर .....जनगणना वर्ष
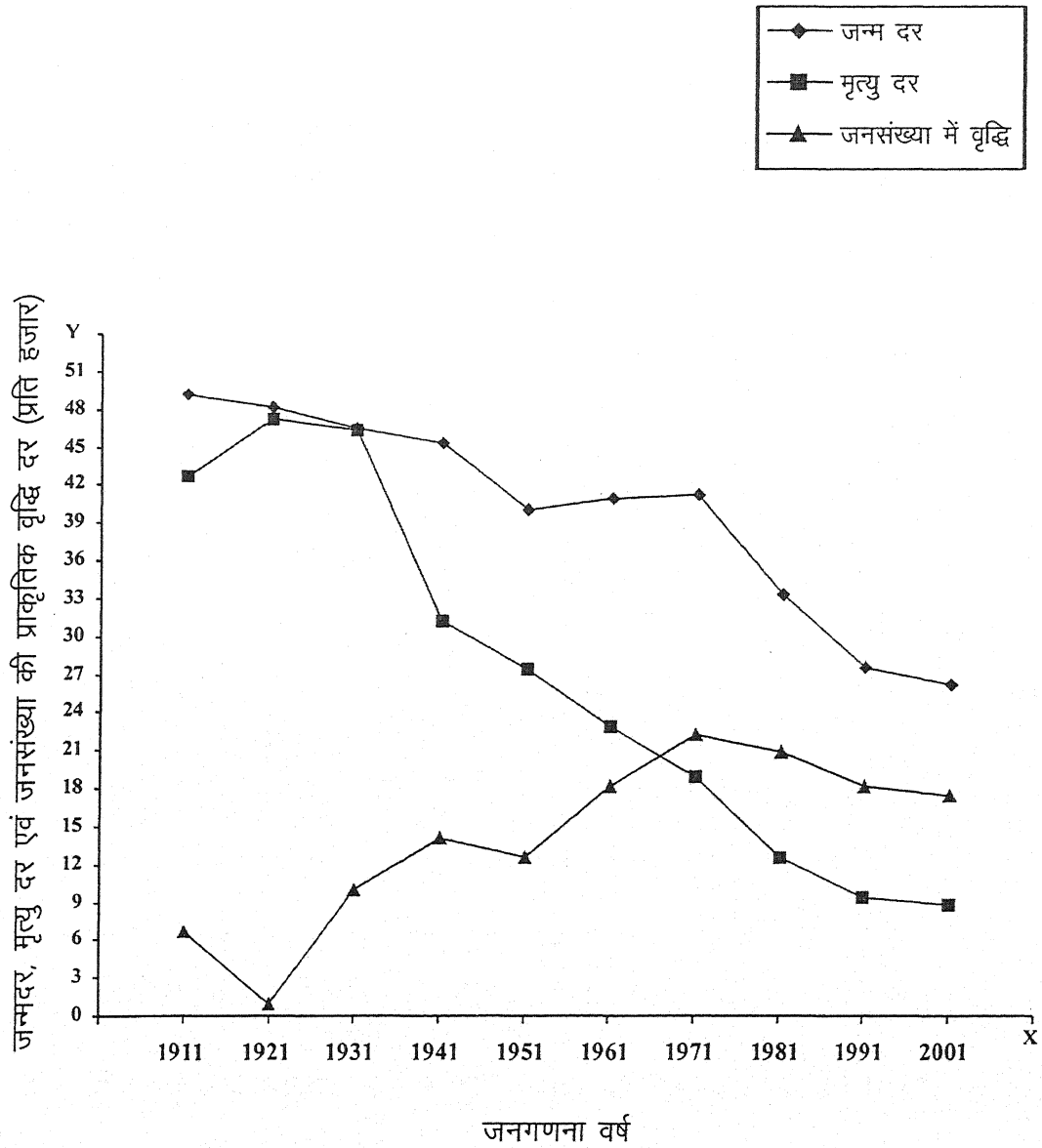
ग्राफ – 3.1

भारत जन्मदर तीसरी दुनिया के जन्म दरों के औसत से ऊँची नहीं है। किन्तु ये भी सत्य है कि देश के वर्तमान विकास का स्तर जिस जन्मदर को भली भांति घोषित कर सकता है उससे तो वर्तमान जन्मदर निश्चित रूप से ऊँची है। भारत में लगभग पिछले चार दशकों से जन्मदर में कोई खास गिरावट नहीं आयी है।

निम्न मृत्यु दर के कारण –:

स्वतन्त्रा के बाद से भारत की जनसंख्या में बहुत तीव्र गति से वृद्धि होने का एक महत्वपूर्ण कारण मृत्यु–दर में लगातार तीव्र गिरावट आना रहा है। उदाहरण के लिये जहाँ 1951 में प्रति हजार अशोधित मृत्यु दर 27.4 थी वहीं यह 1991 में 9.4 और 2001 में 8.7 ही रह गयी है। यद्यपि यह कहना बहुत कठिन है कि किन कारणों से मृत्यु दर में यह गिरावट आयी है किन्तु फिर भी गाँव एवं शहरी क्षेत्रों में किये गये यह विभिन्न अध्ययनों एवं सर्वेक्षणों के आधार पर निम्नलिखित तथ्यों को मृत्यु दर में गिरावट लाने के लिये उत्तरदायी ठहराया जा सकता है।

i. अकालों का समाप्त होना –:

स्वतन्त्रता से पहले अंग्रेजों के शासन काल में अकालों का बार–बार पड़ना ऊँची मृत्यु–दर का एक कारण था। भारत में अंतिम बड़ा अकाल 1943 में बंगाल में पड़ा था, जिसमें लगभग 3 मिलियन जाने गयी। परन्तु उसके पश्चात् विशेषकर पंचवर्षीय योजनाओं के आरम्भ होने के साथ इस क्षेत्र में इतनी उन्नति हुयी कि कुछ विशेष क्षेत्रों में संकट आने के बावजूद स्थिति अधिक भयंकर नहीं हो सकी। 1970 और 1980 के दशकों के दौरान खाद्य समस्या से लड़ने में सरकार की क्षमता बहुत अधिक बढ़ चुकी है। संक्षेप में सूखा और अकाल की समस्या इतनी हल्की हो गयी है कि गिनी–चुनी ही मृत्यु की घटनायें होती है।

ii. महामारियों पर नियन्त्रण –:

स्वतन्त्रता के पश्चात देश में आर्थिक विकास के साथ–साथ प्लेग, कालरा, चेचक, खसरा जैसे छूत की बीमारियों को यद्यपि पूरी तरह से समाप्त नहीं

किया जा सका है परन्तु फिर भी वह बहुत अधिक नियंत्रण में है परिणामस्वरूप मृत्यु दर बहुत अधिक तेजी से गिरी है प्लेग तो स्वतंत्रता से पूर्व ही एक प्रकार से समाप्त हो गयी थी और कालरा भी पिछले सालों में बहुत कम होता गया है। जहाँ 1925 में कुल मृत्यु 5 प्रतिशत कालरा के कारण होती थी वहाँ आज का प्रतिशत 1 से भी कम है। इसी प्रकार चेचक भी देश में न के बराबर रह गयी है, अतः इन महामारियों के समाप्त होने के कारण पिछले चार पांच दशकों में मृत्यु–दर में बहुत अधिक गिरावट आयी है।

इसी प्रकार मलेरिया जैसी बीमारियां भी देश में बहुत कम घातक रह गयी है और कुल मृत्यु में इसका प्रतिशत बहुत गिर गया है यद्यपि महामारियां आज भी विद्यमान हैं किन्तु चिकित्सा विज्ञान की उन्नति के कारण इसके परिणामस्वरूप होने वाली मृत्यु की संख्या बहुत कम रह गयी है।

iii. अन्य कारण –:

स्वतंत्रता के पश्चात् देश के आर्थिक नियोजित विकास के साथ मृत्यु–दर में गिरावट आने के लिये कुछ अन्य कारण भी उत्तरदायी माने जाते है। जैसे शहरी एवं ग्रामीण दोनों ही क्षेत्रों में पीने के शुद्ध पानी की व्यवस्था, सफाई एवं स्वास्थ्य व्यवस्थाओं में उन्नति आदि। यद्यपि विदेशों की तुलना में इन सभी क्षेत्रों में हमारा स्तर बहुत नीचा है। किन्तु फिर भी मृत्यु दर में गिरावट में कुछ न कुछ भूमिका अवश्य रही।

९. अशिक्षा एवं अज्ञान –:

भारत में शिक्षा के कम प्रसार के कारण भारतीय जनता नियमित तथा नियोजित परिवार के महत्व को समझने में असमर्थ रही है। शिक्षा प्रजननशीलता को प्रभावित करने वाले घटकों में सबसे प्रमुख है। यह व्यक्ति को बुद्धिमान एवं युक्तिपरक बनाकर उसे प्रेरणा प्रदान करती है। अशिक्षित व्यक्ति सहज ही रूढ़ियों एवं अन्धविश्वास का शिकार हो जाता है और परिवार को सीमित करने के बारे में कम ही सोचता है।

भारत में अभी भी बहुत अधिक अशिक्षा है तथा 2001 की जनगणना के अनुसार साक्षरता का प्रतिशत 65.38 ही है। स्त्रियों में यह प्रतिशत बहुत ही कम 54.16

है। जबकि पुरूषों में 75.85 प्रतिशत है। इसके अतिरिक्त स्त्रियों में जो साक्षरता है वह ज्यादातर शहरी क्षेत्रों में ही है। इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि जब तक जनसंख्या का एक बड़ा भाग अशिक्षित रहता है तब आम जनता से तर्कपूर्ण विचार एवं जागरूकता की उम्मीद नहीं की जा सकती और वह नीची जन्म–दर एवं छोटे परिवार की ओर आकर्षित नहीं हो सकते। भारत में ऐसे सबूतों की कमी नहीं है जो शिक्षा एवं जन्म–दर के ऋणात्मक सह–सम्बन्ध को बताते हैं। "एक सर्वेक्षण के अनुसार उन राज्यों में जहाँ शिक्षा बहुत नीची है परिवार नियोजन बहुत लोकप्रिय नहीं है।"35 इस अशिक्षा के कारण ही सरकार द्वारा चलाये जा रहे विभिन्न जन्म निरोधक उपाय जैसे निरोध एवं नसबन्दी इत्यादि सफल नहीं हो पा रहे हैं।

संक्षेप में ज्ञानचन्द्र का यह कथन सम्भवतया बहुत उचित है "कि ऊँची जन्म दर हमारी संस्कृति का एक अंग है और यदि एक बार हमारे सामाजिक मूल्य परिवर्तन हो जाये चाहे स्वेच्छा से चाहे परिस्थितायों के दबाव से तभी जन्म दर नीचे गिर सकेगी।"36

६. शरणार्थियों का आगमन –:

भारत की जनसंख्या वृद्धि में शरणार्थी समस्या भी एक कारण है। भारत विभाजन के उपरान्त बड़ी संख्या में शरणार्थी पाकिस्तान की तरफ से भारत आये। यह क्रम बहुत समय तक रहा। इन शरणार्थियों के आगमन तथा उनके पुनर्वास से जनसंख्या में वृद्धि हुई।

1947 में भारत का विभाजन होने के कारण करोड़ों लोग शरणार्थियों के रूप में भारत आये। 1964 में भी पूर्वी एवं पश्चिमी पाकिस्तान से काफी संख्या में शरणार्थी आये। 1971 में भी करीब एक करोड़ व्यक्ति बंगला देश बनने के समय भारत में आये और अब श्रीलंका से आ रहे है। इस प्रकार इन शरणार्थियों के आने से भी जनसंख्या में वृद्धि हुई है।

पिछले कुछ वर्षों से विदेशों में बसे भारतीयों को वहाँ से निकाला जा रहा है और वे लोग भारत में ही आकर बस रहे है। इन देशों में श्रीलंका, मलाया, ब्रिटेन, वर्मा व कीनिया है। इस कारण भी जनसंख्या में मामूली सी वृद्धि हो रही है।

७. कृषि की प्रधानता –:

भारत एक कृषि प्रधान देश है। यहाँ कुल जनसंख्या का लगभग 64 प्रतिशत कृषि व्यावसाय तथा शेष 36 प्रतिशत उद्योगों व सेवाओं में लगा हुआ है। कृषि व्यावसाय की प्रधानता इस तथ्य में भी परिलक्षित होती है कि भारत की अधिकांश जनसंख्या का निवास गाँवों में ही है।

''भारत में जहाँ कृषि में उत्पादन की तकनीक अभी भी समान रूप से पुरानी है तथा इसमें कार्य प्रकृति के अनुसार ही होता है। यहाँ अधिक श्रम के समय के बाद कम कार्य का समय आता है। फसल की कटाई और बुआई के समय ही लगभग आधा वर्ष गुजर जाता है, और यह उत्पादक क्रियाओं का उच्चतम समय है और इसलिये यहाँ श्रम की बहुत अधिक आवश्यकता है।''37

इसी समय के दौरान भारत में बालश्रम की आवश्यकता होती है। ''इस तथ्य को स्वीकार करते हुये श्रम मंत्रालय के तहत ग्रामीण श्रम सर्वेक्षण में यह कहा गया है कि कृषि के उच्चतम समय में स्थानीय क्षेत्रों में श्रम की कमी के कारण बालश्रम के उपयोग की सम्भावनायें बहुत अधिक बढ़ जाती है।'' 38

कृषि के कारण यहाँ अल्प आयु से ही बच्चे पशुओं को चराने, खेतों की रखवाली करने आदि में पिता का हाथ बटाते है। अतः कृषि कार्य में लगे हुये व्यक्तियों के लिये बच्चे दीर्घकाल तक भार सिद्ध नहीं होते है। इसलिये तो अधिक सन्तानों का होना, बुरा नहीं समझा जाता है। ऐसी स्थिति में जन्म दर अधिक होना स्वाभाविक है।

८. शहरीकरण की धीमी प्रक्रिया एवं गाँवों की प्रधानता –:

भारत में 2001 की जनगणना के अनुसार कुल जनसंख्या में शहरी जनसंख्या का 57.8 प्रतिशत रहा है जबकि 1951 में यह 17.20 प्रतिशत था। अतः

सापेक्षित रूप से तो देश में शहरी जनसंख्या बढ़ी है। परन्तु शहरीकरण की गति बहुत धीमी रही है। भारत में शहरी जनसंख्या का अनुपात बहुत ही कम है। यह जीवन का एक सत्य है कि विश्व में सर्वत्र शहरी जीवन की अपनी विशिष्ट समस्यायें जैसे आवास समस्या, बच्चे के पालन पोषण महँगा होने की समस्या, श्रम की गतिशीलता इत्यादि ने संयुक्त परिवार प्रथा को तोड़कर रख दिया है और इन्हीं के कारण जन्म दर भी शहरों में बहुत नीचे आ गयी है। भारत की स्थिति के सम्बन्ध में राबर्ट कैसिन ने यद्यपि 1960 के दशक के अन्तिम वर्षों में कहा था कि " शहरीकरण जनांकिकीय संक्रमण के सिद्धान्त में महत्वपूर्ण स्थान रखता है, सामान्य जन्म–दर पर कोई विशेष प्रभाव डालता नहीं प्रतीत हुआ है। भारत में होने वाले शहरीकरण के साथ वह सामाजिक परिवर्तन नहीं हुये हैं जो नीची दर का समर्थन करते। वास्तव में सामाजिक अध्ययनों के अनुसार ग्रामीण जीवन की सामाजिक व्यवस्था एवं सामाजिक संरचना शहर एवं कस्बों में बसने के कारण अभी भी पूर्ववत मौजूद है।"39 परन्तु उनकी यह बात भारत की वर्तमान परिस्थितियों में भी संगत है। अतः सामान्य रूप से गाँव प्रधान देश होने के कारण यहाँ जनसंख्या एवं जन्म दर दोनों ही बहुत अधिक हैं।

उपर्युक्त कारणों के विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि भारत में जनसंख्या वृद्धि के लिये आर्थिक, सामाजिक, प्राकृतिक, धार्मिक आदि कारण उत्तरदायी हैं।

REFERENCES

1. Eric Roll : A History of Economic Thought P. 61
2. Arstu : Politics Information Department U.P., P. 504
3. Alexander Gray : Development of Economic Doctrines P. 75
4. Gids & Rist : A History of Economic Dectorine P. 68
5. Townsend : Dissertion on the poor law. 1786
6. Adam Smith : Wealth of Nations. P. 78
7. Stang E. Land : Pre-Malthusian Doctriness. P. 23
8. Adam Smith : Wealth of Nations. P. 81-82
9. Malthus : Principles of Economic. P. 82
10. Ibid : P. 92
11. Ibid : P. 102
12. Ibid : P. 111
13. Ibid : P. 153
14. Pant Jawanchandra : Demography 1990-91, P. 152
15. Ibid : P. 153
16. Robbins L. : An Essay of the Nature and Significance of Economic Science. P. 82
17. Thompson & Lawis : The study of Population. P. 38
18. Ibid : P. 40
19. Pant Jawanchandra : Demography. 1990-91, P. 165
20. Herbert Spemcer : The Principles of Biology, New york.P. 485
21. Castro : The Geography of the Hunger, Boston, 1952, P. 140
22. Coale A.J. and Hoover E.M. :Population Growth and economic Development in Law Income countries oxford University Press 1959. P. 10
23. Adfred Sauvy : General Theary of Population, 1960 P. 161
24. Ibid : P. 173
25. Ibid : P. 182

26. Ibid : P. 265-66

27. Chandra Sekhar S. : Population and planned Parenthoodin India P. 125

28. Ibid : 1965, P. 86

29. Wadia and Marchant : Our Economical Problems P. 73

30. Mahmood Mamdani : The mith of Population Control 1974

31. Josi P.C. : Population of Poverty the moral Discard

32. Vishav Bank : Report 1984

33. Gyanchand : Indias Terming Millions.

34. Gyanchand : Some aspects of Population in India

35. Opration Research Group Baroda, All India Sarvey of Family Planing practices 1971

36. Gyanchand : Some aspects of population in india.

37. Mahmood Mandani : The Arduelogy of population Control economics political weakly 1976

38. भारत सरकार श्रम मंत्रालय ब्यूरो : Rular Labour Inguary final Report.

39. Robert Casin : Population Control, Arms and policies. P. 123

अध्याय - चतुर्थ

जनंसख्या वृद्धि एवं सामाजिक तथा आर्थिक विकास

किसी देश के राष्ट्र निर्माण एवं आर्थिक विकास में वहाँ की जनसंख्या महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। प्रत्येक देश का उत्पादन स्तर, आर्थिक विकास की दर, राष्ट्रीय आय तथा प्रति व्यक्ति आय, देश में उत्पादक क्रियाओं का संचालन, रहन–सहन का स्तर आदि सभी दशायें उस देश की जनसंख्या के आकार, गठन एवं वितरण पर निर्भर करती है। यद्यपि आर्थिक विकास में प्राकृतिक संसाधनों तथा पूँजी की मात्रा का भी विशिष्ट योगदान होता है परन्तु ये आर्थिक विकास के निर्जीव साधन हैं। मानव ही वह शक्ति है जो इन संसाधनों को अपनी कार्यकुशलता तथा बौद्धिक दक्षता द्वारा वांछित दिशा में गतिशील कर इनका अनुकूलतम उपयोग करती है तथा विकास का मार्ग प्रशस्त करती है परन्तु भारत में जनसंख्या जिस प्रवृत्ति से बढ़ी है उसने श्रम शक्ति तथा अन्य प्राकृतिक संसाधनों के प्राकृतिक सन्तुलन को बिगाड़ दिया है जिससे देश का आर्थिक विकास प्रतिकूल रुप से प्रभावित हुआ है। बढ़ती हुयी जनसंख्या ने न केवल प्रति व्यक्ति पूंजी की उपलब्धि को लगातार घटाया है, बल्कि भूमि पर जनसंख्या के दबाब को बढ़ाकर बेरोजगारी और गरीबी को भी बढ़ाया है। विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं द्वारा हमारे देश में आर्थिक स्थिति में अत्यधिक वृद्धि हुयी है किन्तु फिर भी विकास के प्रतिफल जनता को उतना लाभान्वित नहीं कर सके क्योंकि आर्थिक विकास के साथ–2 जनसंख्या भी तीव्र गति से लगातार बढ़ती आयी है। जहाँ जनसंख्या वृद्धि ने एक ओर आर्थिक विकास को प्रभावित किया है, वहीं दूसरी ओर सामाजिक विकास को भी अत्यधिक प्रभावित किया है। पारिवारिक जीवन कटु हुआ है तथा नगरीकरण की विशिष्ट समस्यायें उभर कर सामने आयी है। आज हमारा पर्यावरण जो लगातार दूषित होता जा रहा है और यातायात, स्वास्थ्य, शिक्षण इत्यादि समस्याओं के कारण जो सामाजिक जीवन विघटित होता जा रहा है उसके लिये भी जनसंख्या आधिक्य ही उत्तरदायी है।

अ. जनसंख्या का आर्थिक विकास पर प्रभाव –:

आर्थिक विकास एक सतत् प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत देश में उपलब्ध समस्त संसाधनों का कुशलतापूर्वक विदोहन होता है जिसके परिणामस्वरुप राष्ट्रीय आय एवं प्रति व्यक्ति आय में निरन्तर एवं दीर्घकालीन वृद्धि होती है, आर्थिक विषमता में कभी आती है, सामान्य जनता के जीवन स्तर एवं कल्याण में बढ़ोत्तरी होती है। निसंदेह इस प्रक्रिया में देश के श्रम शक्ति के द्वारा प्राकृतिक संसाधनों का ही प्रयोग होता है अतः देश के आर्थिक विकास में सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान श्रम शक्ति का ही होता है। सामान्य तौर पर अधिक श्रम शक्ति का अभिप्राय प्राकृतिक संसाधनों के अधिक अच्छे विदोहन से लगाया जा सकता है। सम्भवतया इसी बात को ध्यान में रखते हुये आज से 200 वर्ष से भी अधिक पहले अर्थशास्त्र के जनक एडम स्मिथ ने कहा था कि "प्रत्येक देश का वार्षिक श्रम वह कोष होता है जो जीवन की समस्त आवश्यकताओं एवं सुविधाओं की मूलरुप से पूर्ति करता है।"1

देश में श्रम शक्ति की पूर्ति जनसंख्या वृद्धि के द्वारा होती है अतः इस दृष्टिकोण से जनसंख्या वृद्धि को देश के आर्थिक विकास में सहायक के रुप में देखा जा सकता है। पश्चिमी यूरोप के देशों के अनुभवों से भी यह ज्ञात होता है कि वहाँ औद्योगिक क्रान्ति के पूर्व के समय से अब तक जनसंख्या में वृद्धि होती चली आयी है उसने वहाँ औद्योगीकरण को बढ़ावा देकर उनके विकास की गति को तीव्र किया है। परन्तु जनसंख्या वृद्धि एवं आर्थिक विकास के पारम्परिक सम्बन्धों का एक पहलू और भी है और वह है इन दोनों के मध्य विपरीत समानुपातिक सम्बन्ध।

वर्तमान समय में विश्व के विभिन्न विकासशील देशों की प्रमुख समस्या आर्थिक विकास की धीमी गति तथा जनवृद्धि की ऊँची दर है। विकास की मन्द गति मूलतः जनसंख्या वृद्धि में तीव्रता के ही कारण अनुभव की जा रही है। जनसंख्या का आकार, वृद्धि दर तथा इसका आयु वितरण तीनों ही प्रति व्यक्ति आय को प्रभावित करते है। यदि बढ़ती हुयी जनसंख्या के साथ प्रति व्यक्ति आय बढ़े तो आर्थिक विकास में

अनुकूल प्रभाव पड़ेगा, अन्यथा इसके विपरीत स्थिति के कारण विकास की दर पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। बढ़ती जनसंख्या के साथ प्रति व्यक्ति आय के स्तर का विकास के दृष्टिकोण से यथावत् बनाये रखना आवश्यक होगा। अतः पहले से अधिक साधनों का विनियोग करना होगा। जबकि जनसंख्या के बढ़ने के साथ विनियोग के बढ़ने की अपेक्षा घटने की अधिक सम्भावना पायी जाती है। अपने सिद्धान्त को स्पष्ट करते हुये "कोल एण्ड हूवर" ने बताया कि, "उक्त स्थिति के उत्पन्न होने का मुख्य कारण बचतों का उपयोग में परिणित होना है।"2 कीन्स ने विकसित देशों के सम्बन्ध में जो विश्लेषण दिया है उसके अनुसार "जनसंख्या की वृद्धि से माँग बढ़ेगी और विनियोग को प्रोत्साहन मिलेगा किन्तु विकासशील देशों में प्रायः ऐसा नहीं पाया गया है। विकासशील देशों में जहाँ पर जनसंख्या का बाहुल्य है, माँग बढ़ने से विनियोग का मुख्य भाग उपभोग वस्तुओं के निर्माण एवं उत्पादन में व्यय हो जाता है। जिसके परिणामस्वरूप बचत की मात्रा कम होती जाती है इन देशों में अप्रयुक्त 'बचत कोष' भी नहीं बन पाते, परिणामस्वरुप लाभ के प्रोत्साहन स्वरूप पूँजीगत विनियोगों को विनियोजित करने के लिये कोई वैकल्पिक व्यवस्था नहीं दिखायी देती।"3

तेजी के साथ बढ़ती हुयी जनसंख्या जनांकिकीय विनियोग की आवश्यकता को और बढ़ाती है जबकि दूसरी ओर लोगों की बचत करने की क्षमता को कम करती है। जनांकिकी विनियोग ऐसे निवेश को कहा जाता है जो बढ़ती हुयी जनसंख्या के लिये भरण–पोषण अथवा उसके वर्तमान जीवन के रहन–सहन के स्तर को बनाये रखने के लिये आवश्यक है। इस प्रकार विनियोग की मात्रा जनसंख्या वृद्धि की दर से निर्धारित होती है। यदि जनसंख्या वृद्धि की दर बहुत ऊँची है तो कुल विनियोग का एक बड़ा भाग जनांकिकीय विनियोग में लग जाता है और आर्थिक विनियोग के लिये बहुत कम भाग शेष बचता है, जिससे लोगों के रहन–सहन के स्तर में वृद्धि की जा सके। बढ़ती हुयी जनवृद्धि की दर के बारे में उनका विचार था कि "जनसंख्या की महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि जनसंख्या वृद्धि की ऊँची दर एक निर्धारित प्रति व्यक्ति उत्पादन को

प्राप्त करने के लिये आवश्यक विनियोग की मात्रा को बढ़ा देती, जबकि विनियोग योग्य साधनों की पूर्ति में वृद्धि करने के लिये वह प्रभावित नहीं करती।"4

अधिक जनसंख्या प्रति व्यक्ति पूँजी की उपलब्धि को भी प्रभावित करती है। जनसंख्या का आकार जितना बड़ा होता है, प्रतिव्यक्ति पूँजी की उपलब्धि उतनी ही कम हो जाती है। कोल एवं हूवर के अनुसार "यदि हम सम्प्रभावी माँग की समस्या की ओर ध्यान न दें, तो जनसंख्या की तीव्र वृद्धि श्रम शक्ति की औसत उत्पादकता को बढाने तथा प्रतिव्यक्ति औसत आय में वृद्धि करने के लिये उपलब्ध पूँजी की मात्रा को कम करने की प्रवृत्ति रखती है।"5

तीव्र जनवृद्धि के कारण विकासशील देशों में आश्रित जनसंख्या का अनुपात ऊँचा होता जाता है जो पुनः विकास में बाधक सिद्ध होता है। इस प्रकार जनसंख्या का आकार, वृद्धि की दर एवं आयु संरचना तीनों आर्थिक विकास की दर को ऊँचा करने में बाधक सिद्ध होते है और यह क्रम तब तक चलता रहता है ज़ब तक कि जनसंख्या वृद्धि दर में कमी नहीं आती। कोल एवं हूवर के अनुरुप प्रो0 गैल्ब्रेक ने भी अपने मत व्यक्त किये हैं। उनके अनुसार "गरीबी तथा निम्न आर्थिक विकास का मुख्य कारण अति जनसंख्या है।"6 अतः किसी भी देश के द्रुत आर्थिक विकास के लिये किन–किन घटकों में परिवर्तन लाया जाय, यह जानने के लिये उसके पिछड़ेपन के कारणों की खोज–बीन की जानी चाहिये।

प्रो0 कुजनेट्स की धारणा है कि "विश्व के अधिकांश देशों के आर्थिक विकास के इतिहास से ऐसा प्रतीत होता है कि जिन देशों में जनसंख्या बढ़ी वहाँ राष्ट्रीय आय भी बढ़ी एवं प्रति व्यक्ति आय भी बढ़ी।"7

वास्तव में विश्व के किसी भाग में विशेषकर पश्चिमी यूरोप में यदि जनसंख्या की वृद्धि ने वहाँ के विकास को बढ़ाया है तो इसका मुख्य कारण यह है कि उन देशों में पूँजी बहुत अधिक थी, जबकि श्रम बहुत सीमित था। इसके अतिरिक्त उन देशों में औद्योगिक क्षेत्र के प्रति श्रम का पूर्ति वक्र भी लोचपूर्ण रहा है। परन्तु इसका

तात्पर्य यह नहीं लगाया जा सकता है कि जनसंख्या में होने वाली वृद्धि सदैव अथवा हर देश में राष्ट्रीय उत्पादन को आनुपातिक रुप से अधिक बढ़ायेगी। वास्तव में जिन देशों में श्रम की पहले ही बहुतायत है तथा अर्थव्यवस्था कृषि प्रधान है और पूँजी कम है उन देशों में जनसंख्या की वृद्धि ने आर्थिक विकास की प्रक्रिया को विपरीत रुप से ही प्रभावित किया है। भारत एक ऐसा ही देश है जहाँ जनसंख्या वृद्धि एवं आर्थिक विकास की प्रक्रिया के सम्बन्ध विपरीतार्थ, समानुपातिक रहे हैं अर्थात् जनसंख्या वृद्धि के साथ–साथ आर्थिक विकास की प्रक्रिया बाधित होती रही है। इसका कारण यह है कि भारतीय अर्थव्यवस्था में पायी जाने वाली दशायें विकसित देश में पायी जाने वाली दशाओं से एकदम भिन्न है। भारत में निर्धनता है, पूँजी बहुत सीमित है तथा श्रम बहुत अधिक है। अतः यहाँ तेजी से बढ़ती हुयी जनसंख्या ने न केवल भूमि पर जनसंख्या के दबाब को बढ़ाया है बल्कि बेरोजगारी एवं गरीबी में भी वृद्धि की है।

स्वतंत्रता के पश्चात् विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं द्वारा हमारे देश में बहुमुखी प्रगति हुई है, एवं आर्थिक विकास के लिये पिछले तीन दशकों का इतिहास इस बात का साक्षी हैं कि देश की आर्थिक स्थिति में अत्यधिक बढ़ोत्तरी हुयी है। फिर भी बढ़ती हुयी जनसंख्या के कारण हमारे आर्थिक विकास का लक्ष्य तथा उसकी उपलब्धियाँ एक ओर उस गति से नहीं बढ़ सकी जिसकी अपेक्षा हम करते थे, तथा दूसरी ओर विंकास के प्रतिफल जनता को लाभान्वित नहीं कर सके। प्रश्न है कि हमारी उपलब्धियाँ सम्पूर्ण प्रयास के बाद भी लक्ष्य के बराबर अथवा अधिक क्यों नहीं हो सकी ? उत्तर स्पष्ट है कि देश की तीव्र जनवृद्धि दर ही सम्भवतः उसमें अवरोधक बन कर रह गयी है। कोल एवं हूवर का आर्थिक विकास एवं जनसंख्या वृद्धि का सिद्धान्त पूर्णतया लागू हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि बढ़ती हुयी जनसंख्या देश की अर्थव्यवस्था की उन सभी उपलब्धियों को इस प्रकार निगल गयी जैसे कोई विशेष कार्य हुआ ही न हो।

वास्तव में भारत में तो जनसंख्या की वृद्धि ने पिछले कई दशको के दौरान समस्यायें ही समस्यायें उत्पन्न की है जैसे खाद्यान्नों की समस्या, मौलिक

सामाजिक सुविधाओं की समस्या इत्यादि। संक्षेप में भारत में जनसंख्या के बढ़ते हुये दबाब, कृषि उत्पादन, वितरण, रोजगार के अवसरों, स्वास्थ्य सेवाओं, शिक्षा, व्यावसाय तथा आर्थिक सम्पन्नता पर प्रतिकूल रुप में पड़े है। इस प्रकार जरुरत से ज्यादा मात्रा में श्रम शक्ति की उपलब्धता ने भारत के विकास की प्रक्रिया पर विपरीत प्रभाव ही डाला है।

जिस प्रकार घर में भूखे बच्चों से घिरा हुआ पिता कोई गहरा ठोस कार्य करने में असमर्थ रहता है, ठीक उसी प्रकार आज हमारा देश जनाधिक्य के जाल में उलझकर किसी भी प्रकार की उन्नति नहीं कर पा रहा है। बढ़ती हुई जनसंख्या ने हमारी प्रगति पर पूर्ण विराम लगा दिया है। भूतपूर्व नियोजन मंत्री श्री अशेक मेहता ने ठीक ही कहा था," जनसंख्या में वृद्धि रात्रि के चोर के समान है जो हमारे आर्थिक विकास में प्राप्त सफलता को हमसे लूट ले जाता है।" हमारी भूतपूर्व प्रधानमंत्री इन्दिरा गांधी के शब्दों में "जनसंख्या के तीव्र गति से बढ़ते रहने से आयोजित विकास करना बहुत कुछ ऐसी भूमि पर मकान खड़ा करने के समान है जिसे बाढ़ का पानी बराबर बहा ले जा रहा है।" हमारे देश में बढ़ती हुई जनसंख्या आर्थिक विकास के लिये अनेक रुप से बाधक सिद्ध हो रही है जिनका अध्ययन हम निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत करते है –

1. जनसंख्या वृद्धि एवं प्रति व्यक्ति आय –:

जनसंख्या की वृद्धि का प्रति व्यक्ति आय पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसीलिये हर सम्भव प्रयत्न के बाद भी योजनावधि में प्रति व्यक्ति वास्तविक आय में कोई महत्वपूर्ण वृद्धि न होने के कारण लोगों के जीवन–स्तर में आशातीत वृद्धि नहीं हो पायी है। भारत में नियोजन काल में 1960–61 से 1998–99 के दौरान (1980–81) की कीमतों पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद में औसत वार्षिक वृद्धि 4 प्रतिशत के लगभग रही है, जबकि प्रति व्यक्ति आय में औसत वृद्धि केवल 1.7 प्रतिशत के लगभग ही रही है। प्रति व्यक्ति आय में अपेक्षाकृत कम वृद्धि का वास्तविक कारण तेजी से बढ़ रही जनसंख्या ही है।

राष्ट्रीय आय का असमान वितरण भी जीवन स्तर को प्रभावित करता है। मेयर तथा बाल्डविन के अनुसार ''आय के पिरामिड में भारत के 20 प्रतिशत व्यक्ति उच्च शिखर पर है। वे राष्ट्रीय आय का 55 प्रतिशत अंश लेते है। मध्य क्षेत्र में 60 प्रतिशत व्यक्ति है जो कि कुल राष्ट्रीय आय का केवल 25 प्रतिशत प्राप्त करते है। शेष 20 प्रतिशत व्यक्तियों के राष्ट्रीय आय का 25 प्रतिशत अंश प्राप्त होता है।''8 भारत के प्रसिद्ध समाजवादी नेता स्वर्गीय ''डा0 राम मानोहर लोहिया'' के एक वक्तव्य के अनुसार ''भारत में ढ़ाई करोड़ व्यक्तियों की प्रतिदिन प्रति व्यक्ति आय केवल पन्द्रह पैसे हैं।''9

2. **जनसंख्या एवं पूँजी निर्माण** –:

जनसंख्या की वृद्धि पूँजी निर्माण में बाधक है। विकास के लिये पूँजी आवश्यक है। पूँजी बचत का वह भाग है जो उत्पादन कार्य में लगायी जाती है, बचत, आय एवं उपभोग का अन्तर है। बचत बढ़ाने के लिये या तो आय बढ़ानी होगी अथवा उपभोग घटाना होगा। चूँकि आय एक आश्रित चल है, आय तब बढ़ेगी जबकि बचत एवं विनियोग बढ़े अतः एक मात्र विकल्प उपभोग में कटौती करना है। बढ़ती हुई जनसंख्या उपभोग को अत्यधिक बढ़ा देती है। अतः पूँजी निर्माण सम्भव नहीं होता है। इसलिये प्रो0 गैलब्रेथ ने लिखा है – ''जनसंख्या नियंन्त्रण ही एक मात्र विकल्प है।''10

प्रति व्यक्ति वास्तविक आय के विद्यमान स्तर को बनायें रखने के लिये यह आवश्यक है कि राष्ट्रीय आय में कम से कम उसी दर से वृद्धि अवश्य हो, जिस दर से जनसंख्या में वृद्धि हो रही है। भारत में जनसंख्या वृद्धि की वर्तमान वार्षिक दर 2.1 प्रतिशत है। अतः इस दृष्टि से यह आवश्यक हो जाता है कि राष्ट्रीय आय में भी 2.1 प्रतिशत वार्षिक दर से वृद्धि हो लेकिन इसके लिये पर्याप्त पूँजी निवेश करना आवश्यक होगा। भारतीय अर्थव्यवस्था में पिछले चार दशकों के दौरान पूँजी– उत्पाद अनुपात 5:1 आँका गया है। जिसका अर्थ यह है कि उत्पादन की एक इकाई की वृद्धि के लिये लगभग 5 इकाई पूँजी आवश्यक है।

जनसंख्या विस्फोट की स्थिति में राष्ट्रीय आय का एक बड़ा भाग उपभोग कार्यो पर ही व्यय कर दिया जाता है व बचत के लिये बहुत कम घनराशि बचती है। कम बचत के कारण देश में पूँजी निर्माण का स्तर भी कम है। पूँजी निर्माण के अभाव में विनयोग का स्तर कम रहता है जिसके परिणामस्वरुप देश में उत्पादकता का स्तर भी निम्न रहता है। निम्न उत्पादकता ही भारत जैसे सभी विकासशील देशों में व्याप्त निर्धनता की जड़ है।

इसके अतिरिक्त भारत में जो कुछ पूँजी निर्माण हो रहा था, उसे प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओं से हटाकर सामाजिक उपरिव्यय पूँजी क्षेत्र में लगा दिया है क्यों कि तेजी से बढ़ती हुयी जनसंख्या के लिये स्कूल, सड़क, चिकित्सालय, पीने का पानी इत्यादि मौलिक सुविधाओं में वृद्धि की आवश्यकता अधिक महसूस की गई। इसके अलावा बढ़ती हुयी जनसंख्या के कारण निर्यात योग्य वस्तुओं का उपभोग भी बढ़ गया और निर्यात में कमी आयी और दूसरी ओर आयात में वृद्धि हुई।

परिणामस्वरूप देश का भुगतान संतुलन बिगड़ता चला गया और विवश होकर सरकार को पूँजीगत वस्तुओं के आयातों में कटौती करनी पड़ी इससे भी देश में पूँजी निर्माण बाधित होता रहा है।

3. जनसंख्या वृद्धि एवं रोजगार –:

जीवन निर्वाह के लिये प्रत्येक व्यक्ति को कोई न कोई ऐसा काम करना पड़ता है जिससे वह धन कमा सके। इसी धन से व्यक्ति अपना तथा अपने परिवार का भरण–पोषण करता है और अपना आर्थिक स्तर ऊँचा उठाता है। बढ़ती हुयी जनसंख्या के कारण आज रोजगार की स्थिति बहुत ही भयावह हो चुकी है। काम तलाशने के लिये आदमी को दर–दर भटकना पड़ता है।

तीव्रगति से बढ़ती जनसंख्या ने भारत में बेरोजगारी एवं अर्द्ध बेरोजगारी को प्रत्यक्ष रूप से बढ़ाया है। एक और न केवल तीव्र गति से बढ़ती जनसंख्या के कारण कार्यकारी जनसंख्या का अनुपात बढ़ा है तो दूसरी ओर जनाधिक्य के कारण आय, बचत

एवं निवेश में धीमी प्रगति के कारण रोजगार के अवसर भी बहुत धीमी गति से बढ़े हैं। यही कारण है कि विभिन्न योजनाओं के दौरान विभिन्न प्रयासों के बावजूद भारत में बेरोजगारी का स्तर लगातार बढ़ता ही रहा है, उदाहरण के लिये एक अनुमान के अनुसार जहाँ प्रथम योजना के प्रारम्भ के समय 3.3 करोड़ व्यक्ति बेरोजगार थे, वही बढ़कर इसी योजना के अन्त में 5.3 करोड़, द्वितीय योजना के अन्त में 2.0 करोड़, चतुर्थ योजना के आरम्भ में 4.0 करोड़, पाँचवी योजना के अन्त में यह 4.56 करोड़ तथा नौवीं योजना में .78 करोड़ तथा दसवीं योजना में .41 करोड़ हो जाने का अनुमान है। इसका मुख्य कारण यह रहा है कि जनसंख्या में वृद्धि के परिणामस्वरुप पहली योजना के दौरान 9 करोड़, द्वितीय योजना के दौरान 11.8 करोड़, तीसरी योजना के दौरान 17 करोड़, छठी योजना के दौरान 34 करोड़ नौवीं योजना के दौरान 42.34 करोड़ के बराबर कार्यकारी जनसंख्या बढ़ती रही है।

विभिन्न योजनाओं के दौरान जनसंख्या में होने वाली कार्यकारी वृद्धि तथा बेरोजगारी में होने वाली अनुमानित वृद्धि को तालिका 4.1 एवं चित्र 4.1 में दिखाया गया है।

तालिका ४.१

योजना काल में बेरोजगारी (छठी पंचवर्षीय योजना तक)

पंचवर्षीय योजना	कार्यकारी जनसंख्या में होने वाली वृद्धि (करोड़ में)	बेरोजगारी में होने वाली वृद्धि (करोड़ में)
प्रथम योजना काल	09.0	2.0
द्वितीय योजना काल	11.8	2.0
तृतीय योजना काल	17.0	3.0
चतुर्थ योजना काल	23.0	4.0
पंचम योजना काल	29.0	4.56
छठीं योजना काल	34.0	6.0

स्रोत : आर्थिक सर्वेक्षण 1992–93

योजना काल में बेरोजगारी

छठीं पंचवर्षीय योजना तक

पैमाना
oy............अक्ष पर वृद्धि करोड़ में
ox.........अक्ष पर पंचवर्षीय योजना
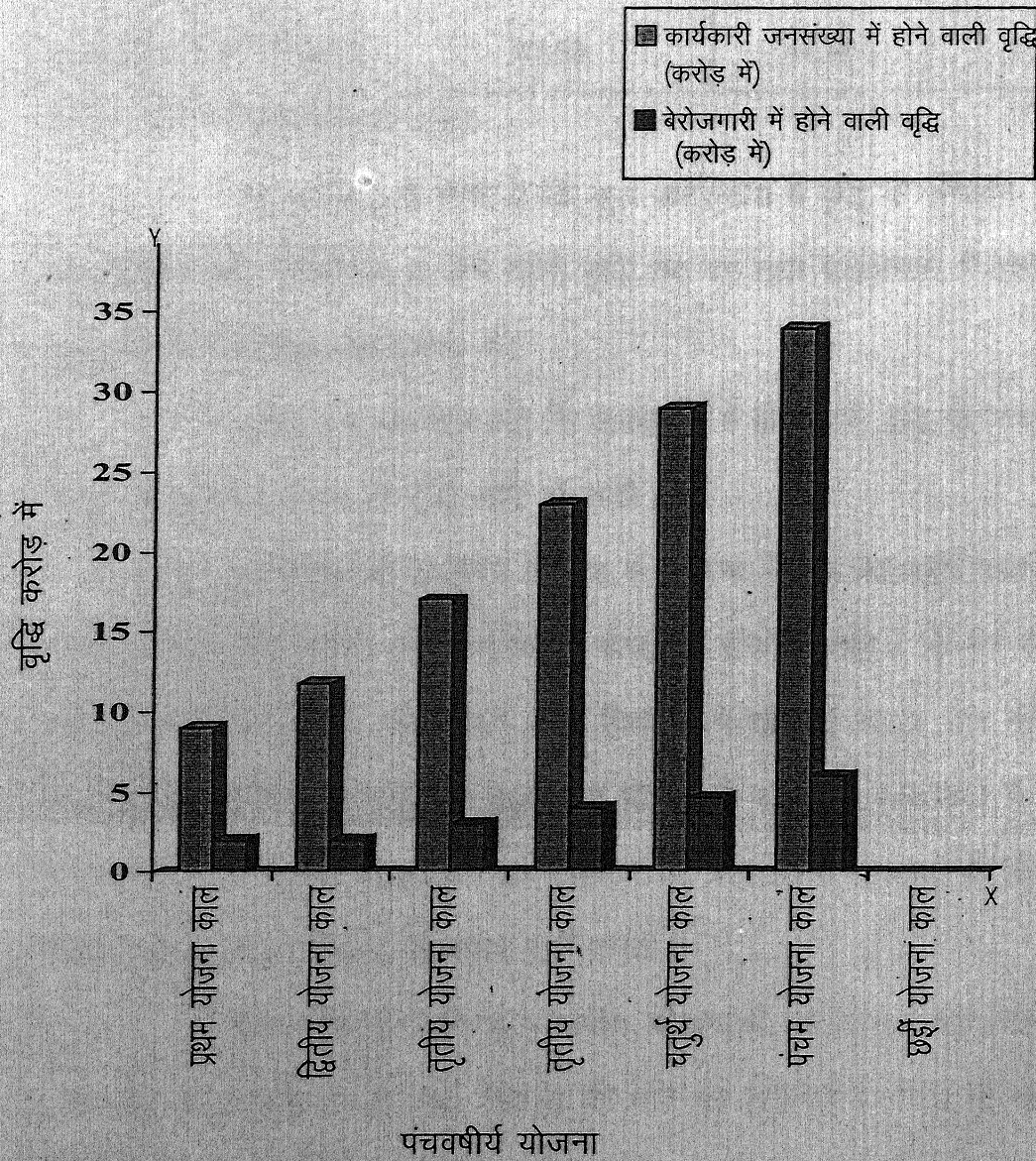
चित्र : 4.1

तालिका ४.२

आठवीं, नौवीं, तथा दसवीं योजना में श्रम शक्ति और रोजगार

पंचवर्षीय योजना	कार्यकारी जनसंख्या (करोड़ में)	रोजगार (करोड़ में)	बेरोजगारी (करोड़ में)
आठवीं योजना काल	37.42	36.72	.70
नौवीं योजना काल	42.34	41.68	.78
दसवीं योजना काल	47.88	47.47	.41

स्रोत : भारतीय अर्थव्यवस्था 2001

तालिका 4.2 से स्पष्ट है कि कुल जनसंख्या में वृद्धि के परिणाम स्वरूप देश में कार्यकारी जनसंख्या में होने वाली वृद्धि की दर तथा बेरोजगारी में होने वाली वृद्धि की दर धनात्मक सहसम्बन्ध है।

इसका एक कारण यह है कि जनसंख्या में होने वाली वृद्धि के साथ–साथ निवेश में उसके अनुसार ही वृद्धि नहीं हो सकी।

बेरोजगारी के उपर्युक्त विवरण के सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण बात यह है कि आँकड़े सरकारी रिपोर्टो पर आधारित है। वास्तव में ऐसा अनुमान है कि गैर पंजीकृत बेरोजगारी की संख्या को यदि इसमें जोड़ दिया जाये तो यह संख्या चार गुनी बढ़ जायेगी। वास्तव में बेरोजगारी का बहुत कम हिस्सा ही रोजगार कार्यालयों में अपना नाम लिखाते है। विशेषकर महिलायें तो रोजगार की प्रत्याशा में रोजगार कार्यालयों में जाकर धक्के खाना बिल्कुल भी पंसद नहीं करती।

हमारे देश में विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान बेरोजगारी की संख्या की बढ़ती हुयी दर के साथ विकास की गति का तालमेल इसलिये भी नहीं बैठ रहा है क्योंकि जब तक योजनाओं के लाभ आम जनता को मिलते है तब तक जनसंख्या पुनः बढ़ जाती है। इसके फलस्वरुप सामाजिक, आर्थिक समस्याओं का समाधान एक कठिन काम सिद्ध हो रहा है। यदि जनसंख्या वृद्धि पर तत्काल नियन्त्रण पाने मे

सफलता नहीं मिलती है तो राष्ट्रीय संसाधन का बहुत बड़ा भाग इसी प्रयास में व्यर्थ ही जाता रहेगा। बेरोजगारी की स्थिति का अनुमान तालिका 4.3 से लगाया जा सकता है, जो रोजगार कार्यालयों में अंकित है।

तालिका ४.३

बेरोजगारी की स्थिति का अनुमान

वर्ष	चालू रजिस्टर	पिछले वर्ष की तुलना में चालू रजिस्टरों में प्रतिशत में वृद्धि
1981	178.38	10.1
1982	197.53	10.7
1983	219.53	11.1
1984	235.47	7.3
1985	262.70	11.6
1986	301.31	14.7
1987	302.47	00.4
1988	300.50	00.7
1989	327.76	09.1
1990	346.32	05.7
1991	363.00	04.8
1993–94	362.00	02.02
1997–2001	———	01.65

स्रोत – आर्थिक सर्वेक्षण 2000–01

तालिका 4.3 से स्पष्ट है कि समय के साथ निरन्तर वृद्धि हुयी है, किन्तु ये बेरोजगारी के वास्तविक आँकड़े नहीं है। करोड़ो व्यक्ति जो गाँवों, कस्बों, नगरों और यहाँ तक महानगरों में है वे बेरोजगार कार्यालय में अपना नाम दर्ज कराने नहीं जाते है। इसलिये जितनी बेरोजगारी सरकारी आँकड़ो में प्रदर्शित की जाती है उससे कई गुना अधिक लोग बेरोजगार हैं।

विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों में आजादी के समय लगभग दो लाख छात्र संख्या थी, जो 1991–92 में बढ़कर 43.50 लाख हो गई थी और 2001 में 75 लाख हो चुकी है। प्रत्येक वर्ष विश्वविद्यालयों से कई लाख छात्र डिग्रियां लेकर निकलते हैं। तकनीकी छात्र लाखों की संख्या में उत्तीर्ण होते है, क्या इतने लाख डिग्री पाने वाले युवकों को रोजगार मिल पाता है। इस तरह प्रत्येक वर्ष कई लाख शिक्षित और डिग्री प्राप्त युवक बेरोजगार होते हैं। बेरोजगारी की स्थिति तो यह है कि अब एम. ए. उत्तीण युवक चपरासी पद के लिये आवेदन पत्र देता है । इस देश के लिये इससे दुःख की बात और क्या हो सकती है।

4. **जनसंख्या वृद्धि एवं कृषि विकास** –:

बढ़ती हुई जनसंख्या का कृषि के विकास पर भी प्रभाव पड़ता है। एक ओर कृषि कार्य करने वाली जनसंख्या में वृद्धि हो जाती है तो दूसरी ओर भूमि के उप विभाजन व अपखण्डन से नयी–नयी समस्यायें पैदा होती है और इस प्रकार यह स्थिति देश के आर्थिक विकास में बाघा पहुँचाती है।

भारत में जनसंख्या का एक बड़ा भाग ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करता है। जिनका मुख्य व्यावसाय कृषि ही है। अतः पिछले चार दशको से जनसंख्या में लगातार होने वाली वृद्धि ने देश में मानव और भूमि का अनुपात बिगाड़ दिया है और चूंकि भूमि की पूर्ति बेलोचदार है। अतः भूमि पर जनसंख्या का दबाब बहुत अधिक बढ़ गया है। उदाहरण के लिये 1911 में कृषि–योग्य भूमि की प्रति व्यक्ति उपलब्धता 1.1 हैक्टेयर आँकी गई थी। पिछले कुछ वर्षो के दौरान जलाक्रान्त और बंजर भूमि को पुनः कृषि–योग्य बनाने के भरसक प्रयास किये गये है। इन प्रयासों के बाबजूद भी सन् 2001 में कृषि–योग्य भूमि की प्रति व्यक्ति उपलब्धता केवल .35 हैक्टेयर आँकी गई है। इसी प्रकार 1950–51 में देश में जनसंख्या का घनत्व 117 था वही 2001 में यह 324 प्रति वर्ग किलोमीटर हो गया है। इसके परिणामस्वरूप भारत में न केवल छिपी हुई बेरोजगारी बढ़ी बल्कि कृषि क्षेत्र में प्रति व्यक्ति उत्पादकता में गिरावट आयी। बढ़ती

जनसंख्या के कारण भूमि के छोटे–छोटे टुकड़े होते गये जिनके ऊपर विकसित तकनीकि से कृषि करना सम्भव नहीं रहा कृषि क्षेत्र में निम्न प्रति व्यक्ति उत्पादकता से आय स्तर बचत स्तर, पूंजी निर्माण की गति इत्यादि सभी बहुत नीचे की ओर धीमी रहे है और कृषि का विकास उस गति के साथ नहीं हो सका जैसा कि आशा की जाती है।

5. **जनसंख्या वृद्धि एवं खाद्य समस्या** –:

भारत में नियोजन आरम्भ होने के समय से ही खाद्य समस्या बहुत गम्भीर थी। न केवल खाद्यान्नों की शुद्ध उपलब्धता बहुत कम थी बल्कि प्रति व्यक्ति उपलब्धता भी बहुत कम होने के कारण सामान्य जीवन–स्तर भी बहुत निम्न था। आज से लगभग 3 दशक पहले देश में आँकड़ो की भाषा में यह अनुमान लगाया गया था कि पांचवी पंचवर्षीय योजना के अन्त तक खाद्यान्नों के उत्पादन के मामलें में भारत स्वनिर्भर हो जायेगा। परन्तु ऐसा हो नहीं पाया। इसका मुख्य कारण और कुछ नहीं बल्कि देश की तेजी से बढ़ती हुयी जनसंख्या ही थी, जिसके परिणामस्वरुप सबके लिये खाद्यान उपलब्ध कराने की बात कल्पना जैसी हो गयी। यद्यपि आज खाद्यान्नों के उत्पादन के मामलो में भारत की स्थिति संतोषजनक सी है परन्तु प्रति व्यक्ति खाद्यान्न उपलब्धता की स्थिति अत्यधिक शोचनीय है और विभिन्न वर्षो के दौरान इसमें निरन्तर वृद्धि भी नहीं हुयी है बल्कि उतार चढ़ाव आते रहे है।

भारतवर्ष में 1956 और 2000 के बीच चाहे खाद्यान्नों का उत्पादन 627 लाख टन से बढ़कर लगभग 2000 लाख टन हो गया है परन्तु खाद्यान्नों की प्रति व्यक्ति उपलब्धि में केवल नाम मात्र की वृद्धि हुई है। उदाहरण के लिये 1956 में खाद्यान्नों की प्रति व्यक्ति उपलब्धि 431 ग्राम थी जो 1999 में बढ़कर मात्र 467 ग्राम हो गयी। अतः जनसंख्या में वृद्धि के कारण प्रति व्यक्ति खाद्यान्नों की उपलब्धता में कोई विशेष वृद्धि नहीं हो सकी। लगभग एक तिहाई लोगों को दो वक्त का भोजन भी उपलब्ध नहीं हो पाता। भारत में प्रतिवर्ष लगभग एक मिलियन बच्चे कुपोषण के कारण मर जाते हैं।

6. जनसंख्या वृद्धि एवं आश्रितता अनुपात –:

सामान्तया बच्चे, बूढ़े और 15 से 19 वर्ष तक की आयु–वर्ग के बेरोजगार व्यक्ति अनुत्पादक उपभोक्ताओं के वर्ग में आते है जिनका देश के उत्पादन में किसी प्रकार का अंशदान नहीं होता। जनसंख्या की वृद्धि का एक दुष्परिणाम यह भी हुआ है कि देश में आश्रितों की संख्या में काफी वृद्धि हुई है। सन् 1961 में अनुत्पादक उपभोक्ताओं की संख्या 2,560 लाख थी, जो 1991 में इसकी संख्या 5,290 लाख आँकी गयी।

सम्पूर्ण जनसंख्या में ऐसे लोगों का भाग सन् 1961 में 57 प्रतिशत था जो कि 1991 में 62.2 प्रतिशत हो गया।

ब. जनसंख्या का सामाजिक विकास पर प्रभाव -:

इसमें संदेह नहीं है कि हमारे देश में लगातार खतरनाक गति से बढ़ती हुयी जनसंख्या ने देश के आर्थिक विकास को अत्यधिक प्रतिकूल रुप से प्रभावित किया है परन्तु सामाजिक विकास को भी इसने जितना अधिक दूषित किया है उसकी ओर से भी आँखे नहीं मूदी जा सकती।

आज भारत की जनसंख्या तो निरन्तर बढ़ रही है किन्तु सामाजिक संस्थायें एवं सुविधायें, लोगों के व्यावहार तथा सांस्कृतिक मूल्य व्यवस्था की मांग के अनुसार नहीं बदल रहे है और यदि बढ़ती हुयी जनसंख्या के दबाब में इनमें कोई परिवर्तन आ भी रहा है तो वह इस स्वभाव का है जो हमारे सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास के लिये घातक है। देश के सामाजिक विकास में जनसंख्या वृद्धि ने जहाँ पर्यावरण समस्या, परिवारिक समस्या, नगरीय समस्या, सामाजिक विघटन, आवास समस्या, शिक्षा, स्वास्थ्य एवं चिकित्सा समस्या इत्यादि को पैदा करके जीवन को अत्यधिक जटिल एवं कठिन बना दिया है वहीं दूसरी ओर आज देश में बढ़ता आतंकवाद, उग्रवाद एवं साम्प्रदायिकतावाद इत्यादि के लिये भी देश में जनाधिक्य की स्थिति उत्तरदायी है। इन सबके परिणामस्वरूप देश में नगरीकरण बढ़ रहा है। संयुक्त

परिवार प्रथा टूट रही है, व्यक्ति अत्यधिक स्वार्थी हो गया है, सहयोग, परोपकार, दया, दान, धर्म इत्यादि सांस्कृतिक मूल्यों का महत्व लगातार घटता जा रहा है। परिणामस्वरूप सामान्य सामाजिक विकास अत्यधिक उलझता जा रहा है और व्यवस्था चरमरा रही है। संक्षेप में जनाधिक्य से देश के सामाजिक विकास पर पड़ने वाले दूषित प्रभावों का निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत अध्ययन किया जा सकता है।

I. जनसंख्या एवं पारिवारिक जीवन –:

जनसंख्या वृद्धि का सीधा प्रभाव हमारे परिवार, परिवार के स्वरूप, परिवार की दैनिक आवश्यकताओं, सुख सुविधाओं, बच्चों का बौद्धिक विकास, उनका व्यक्तित्व विकास आदि सभी बातों पर अनेक रूपों में देखा अथवा अनुभव किया जा सकता है।

1. परिवार का आकार एवं स्वास्थ्य –:

एक माता जब वृहद परिवार में गर्भवती होती है तो उसके लिये विशिष्ट भोजन व उचित चिकित्सा की आवश्यकता होती है। जो उसे वहाँ नहीं मिल पाती। अतएव स्वाभाविक है कि वह शारीरिक और मानसिक रुप से अस्वस्थ हो जाती है। ऐसे समय में माँ की मृत्यु तक सम्भव हो सकती है। वृहद परिवार और शिशु की मृत्यु दर में सीधा सम्बन्ध है। बहुत कम समय के अन्तर से गर्भ धारण करने का परिणाम यह होता है कि अविकसित एवं दुर्बल बच्चों का जन्म होता है।

माताओं व बच्चों को इस विपदा से बचाने के कुछ उपाय निम्न है –

क. प्रथम शिशु 22 से 24 वर्ष की आयु में होना चाहिये।

ख. एक शिशु से दूसरे शिशु के जन्म का अन्तर कम से कम तीन वर्ष होना चाहिये।

ग. अनिच्छित बच्चों को जन्म नहीं देना चाहिये।

घ. 35 वर्ष की आयु के पश्चात् गर्भ धारण नहीं करना चाहिये।

उपर्युक्त बातों से ज्ञात होता है कि माता व बच्चे के स्वास्थ्य का परिवार के आकार से सीधा सम्बन्ध है। अतः परिवार लघु होना चाहिये। जिससे गर्भवती माता

व बच्चे का कल्याण हो।

2. परिवार का स्वरूप एवं बच्चों का विकास –:

माता–पिता के संदर्भ में बच्चे का विकास एक अनिवार्य शर्त है। परिवार का स्वरूप बच्चे के विकास के अनेक स्तरों को प्रभावित करता है। विशेष रुप से निम्न सामाजिक आर्थिक स्तर वाले वृहद परिवार में बच्चे इससे अधिक प्रभावित होते है। यह भी पाया गया है कि इसका कुप्रभाव बच्चे की शारीरिक ऊँचाई व बजन पर भी पड़ता है। वृहद परिवारों की अपेक्षा लघु परिवारों की लड़कियाँ शारीरिक रुप से जल्दी परिपक्व हो जाती है।

3. परिवार का स्वरूप, बौद्धिक एवं व्यक्तित्व विकास –:

वृहद परिवार का प्रभाव बच्चे के बौद्धिक विकास पर भी दृष्टिगोचर होता हैं। एक लधु परिवार के बच्चे की बुद्धि का विकास समुचित रुप से होता है जबकि वृहद परिवार में इसका विपरीत प्रभाव पड़ता है। बड़े परिवार में शिक्षा के अभाव के कारण बच्चों का पूर्ण विकास सम्भव नहीं होता। उन बड़े परिवारों में जहाँ बच्चे की आयु में बहुत कम अन्तर होता है, वहाँ उनके मानसिक, शारीरिक व सामाजिक विकास में कमी आ जाती है।

कुछ अध्ययनों के आधार पर देखा गया है कि साधारण रुप से सामान्य बुद्धि व सामान्य से थोड़ी अधिक बुद्धि वाले बच्चे अपना रास्ता स्वयं अपने आप बना लेते है। भले ही वे बड़े परिवार के हो अथवा छोटे परिवार के। परन्तु साधारण अथवा सामान्य से कम बुद्धि वाले बच्चों पर व्यक्तिगत रुप से ध्यान देने की आवश्यकता होती है और यह तभी सम्भव हो सकता है जब परिवार का स्वरुप छोटा हो।

यह भी अनुभव किया गया है कि परिवार में अधिक बच्चे होने पर माता–पिता में बच्चों के प्रति एक उपेक्षा जैसा भाव पैदा हो जाता है। इसकी प्रतिक्रिया यह होती है कि बच्चों में भी अपने माता–पिता के प्रति उपेक्षा की भावनायें जाग्रत हो जाती है और परिणामस्वरुप बच्चे अपराधों और गैर–जिम्मेदारी की परिधि की ओर बढ़

जाते हैं। माता पिता के सहज प्रेम से वंचित होकर बच्चे स्वयं को तिरस्कृत समझने लगते हैं और उनमें समाज के प्रति प्रतिशोध की भावना पनपने लगती है। अतएव प्रत्येक माता–पिता का कर्त्तव्य है कि अपने बालक के सही व्यक्तित्व विकास के लिये प्रेम तथा सहानुभूतिपूर्ण उचित वातावरण बनाये और उसकी प्रगति के लिये योग्य अवसर प्रदान करें, यह तभी हो सका है जब बच्चे कम हो।

भौतिक, मानसिक, सामाजिक पर्यावरण की परिस्थितियाँ ही बच्चे के विकास में बाधक अथवा सहयोगी बनती हैं। परिवार की अरुचिकर परिस्थितियाँ माता–पिता के बीच नियमित संघर्षपूर्ण स्थित, मतभेद, अनैतिकतापूर्ण व्यवहार एवं वातावरण, अभिभावक की बेरोजगारी, एक ही कमरे अथवा कम स्थान में पूरे परिवार का बास, अस्वच्छता, मात–पिता का निर्दयतापूर्ण व्यवहार, अत्यधिक अनुचित अनुशासन अथवा लाड़ प्यार के कारण बच्चों का उचित सर्वागीण विकास नहीं हो पाता है। इस पूरे परिस्थिति के पार्श्व में मुख्य घटक है– अधिक जनसंख्या, जिसका प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष प्रभाव बाल मानस पर पड़ता है।

II. जनसंख्या वृद्धि एवं नगरीय समस्यायें-:

भारत एक कृषि प्रधान देश है। हमारी आर्थिक व्यवस्था मूलतः कृषि पर आधारित है, परन्तु अंग्रेजों के शासन काल में भारतीय जीवन में नया मोड़ आया है और उस समय नगरीयकरण की प्रवृत्ति को अधिक वेग मिला। वर्तमान समय में बढ़ता हुआ नगरीयकरण आर्थिक प्रगति का द्योतक माना जाता है। स्वतन्त्रता से पूर्व जब भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास की गति बहुत अधिक धीमी थी तब यहाँ नगरीकरण भी बहुत धीमी गति से हो रहा था। नियोजन काल में जैसे–जैसे देश का आर्थिक विकास होता या वैसे–वैसे देश में नगरों की संख्या तथा नगरीय जनसंख्या बढ़ती गयी। आज विश्व के अन्य देशों की ही भाँति भारत में भी नगरीयकरण बढ़ रहा है तथा जनसंख्या निरन्तर गाँव से नगर की तरफ प्रवाहित होती जा रही है। गाँवों से नगरों की ओर पलायन की गति प्रदान करने वाले प्रमुख कारक है– ग्रामीण जनसंख्या का कृषि पर बढ़ता दबाब,

कुटीर उद्योगों का पतन, आवागमन की सुविधा, उद्योगों का नगरों में केन्द्रित होना आदि।

एस्केप 1982 की दस वर्षीय कान्फ्रेंस कोलम्बो में हुयी, जिसके अनुसार इस दशक के प्रत्येक वर्ष में शहरी जनसंख्या में जुड़ने वाली संख्या का अनुपात ग्रामीण जनसंख्या में बढ़ने वाली संख्या से कहीं अधिक होगा। एशिया तथा पेसीफिक देशों के शहरों में 21 वीं सदी के प्रारम्भ तक हर दस व्यक्तियों में से चार व्यक्ति शहरों में रहने लगेगें, जबकि यह अनुमान 1950 में दस में से दो व्यक्ति था। वर्तमान तीव्रगति से बढ़ती हुई नगरीय जनसंख्या वृद्धि से अनुमान लगाया गया है कि सन् 2010 में विश्व के 50 अधिकतम जनसंख्या वाले शहरों में से 40 शहर विकासशील देशों के होंगे। इनमें से अधिकांश भारत में होगें। इन शहरों की आबादी 150 लाख से 250 लाख तक होने का अनुमान है।

नवीनतम संयुक्त राष्ट्रसंघ की जनगणना रिपोर्ट के अनुसार 1920 में संसार में शहरी जनसंख्या 36 करोड़ थी। यह 1960 में 1 अरब सवा करोड़, 1980 में 1 अरब 81 करोड़ और सन् 2001 में 3 अरब 21 करोड़ हो जाने का अनुमान है। साथ ही देहातों की जनसंख्या जो 1920 में डेढ़ करोड़ थी, सन् 1980 में 2 अरब 57 करोड़, और सन् 2001 में 3 अरब 5 करोड़ हो जाने का अनुमान है।

संयुक्त राष्ट्र (U.N.) और वर्ल्ड वाच इंस्टीट्यूट, वांशिगटन के अध्ययन के अनुसार आजकल कलकत्ता में 1 करोड़ 32 लाख से अधिक, बम्बई में 1 करोड़ 63 लाख, दिल्ली में 1 करोड़ 27 लाख, मद्रास में 64 लाख से अधिक जनसंख्या है। आज भारत विश्व का पाँचवा सर्वाधिक नगरीय जनसंख्या वाला देश हो गया है। भारत में नगरीयकरण भयंकर और अनियन्त्रित गति से हो रहा है। अनुमान है कि 2001 तक दक्षिण एशिया की कुल जनसंख्या में से लगभग 73 करोड़ से अधिक जनसंख्या भारत के नगरों में रह रही है। जिनमें से अधिकांश भाग बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली, मद्रास, बंगलौर, अहमदाबाद में होगें।

तीव्र नगरीयकरण के सम्बन्ध में अरबन डेवलपमेन्ट इंस्टीट्यूट के निदेशक एवं नगरीयकरण के विशेषज्ञ डा0 रश्मि मयूर के एक प्रकाशित लेख के अनुसार भारतीय महानगरों में सन् 2010 तक 4 से 5 प्रतिशत जनवृद्धि निरन्तर होती रहेगी। 21 वीं सदी में 102.7 करोड़ की कुल जनसंख्या में 3500 लाख व्यक्ति शहरों में रह रहे होगें और तब उन दिनों भारत को गाँवों का देश नहीं कहा जायेगा। भारत की इस अप्रत्याशित जनवृद्धि के कारण उत्पादन के सभी क्षेत्रों पर तीव्र दबाव होगा। खाद्य के करीब दुगुने उत्पादन 2200 लाख टन के बाद भी 300 लाख टन अनाज की कमी होगी। उनके अनुसार से सन् 2000 तक 70 करोड़ निवासों की जरुरत होगी। जिसका मूल्य 15 खरब रुपयों के लगभग होगा। भारतीय नगरों में तब 8.75 अरब गैलन पानी की आवश्यकता प्रतिदिन होगी जिस पर 17 करोड़ रुपया रोज खर्च होगा। लगभग 2630 लाख यात्रा हर रोज यात्री करेगें जिनके लिये कारों, टेक्सियों, स्कूटरों के अलावा 2,63,000 बसों की जरुरत होगी। टेलीफोन सेवा 50 प्रतिशत लोगों को प्राप्त हो सकेगी। 7000 लाख टन खनिज कोयले की बराबरी का खनिज तेल का उपयोग वाहनों में होगा। जिसकी वजह से प्रदूषण कई गुना अधिक बढ़ जायेगा।

औद्योगीकरण एवं नगरीयकरण का निकट का सम्बन्ध है। एक उद्योग की स्थापना के लिये अनेक वस्तुओं जैसे–पर्याप्त मात्रा में कच्चा माल, श्रमशक्ति, यातायात सुविधायें आदि की आवश्यकता होती है, इन आवश्यकताओं की पूर्ति अनेक संस्थायें करती है और इस प्रकार नगरों के निर्माण में सहायक होती है। विकसित देशों में नगरीयकरण के विकास का मुख्य कारण औद्योगिक एवं आर्थिक विकास है लेकिन विकासशील देशों में नगरों के विकास का कारण बढ़ती हुयी जनसंख्या है। आज भारत में ग्रामीण क्षेत्रों से महानगरों की ओर स्थानांतर बड़ी तीव्र गति से हो रहा है। अतः प्रवास के विषय में थोड़ा ज्ञान अपेक्षित है।

स्थानान्तर –:

जनसंख्या वृद्धि को प्रभावित करने वाले तीन कारक है – 1. जन्मदर, 2. मृत्युदर, 3. प्रवास। अपनी प्रकृति के कारण प्रवास अन्य दो घटकों से अर्थात् जन्मदर और मृत्युदर से एकदम भिन्न है। स्थानान्तर मनुष्य की महत्वाकांक्षाओं, उसकी सामाजिक, आर्थिक भूमिका उनके सांस्कृतिक एवं राजनैतिक पर्यावरण से निर्धारित होता है। यू0 एन0 (United Nation) की एक व्याख्या के अनुसार "Migration is a from of geographical mobility between one geographical unit and another generally involving a change in residence from the place of departure to the place of arrived, such migration is called permanent migration and should be distinguised from another from's of movement which do not involur a permanet change of residence."11

संक्षेप में एक भौगोलिक स्थान से दूसरे क्षेत्र में स्थायी निवास के लिये आना या जाना प्रवास कहलाता है। इसमें कोई न कोई राजनैतिक सीमा पार करनी चाहिये। वह सीमा जिले की भी हो सकती है। एक गली से दूसरी गली में निवास के लिये जाना प्रवास नहीं कहा जायेगा। प्रवास को दो रुपों में देखा जा सकता है– 1. आन्तरिक, 2. अन्तराष्ट्रीय। एक ही देश में स्थानान्तर की क्रिया को आन्तरिक प्रवास कहा जाता है और जब दो भिन्न देशों में स्थानान्तर होता है तो उसे अन्तर्राष्ट्रीय प्रवास कहा जाता है। आन्तरिक प्रवास के मुख्य चार प्रकार है –

1. गाँव से गाँव की ओर।
2. गाँव से शहर की ओर।
3. शहर से शहर की ओर।
4. शहर से गाँव की ओर।

आन्तरिक प्रवास को प्रेरित करने वाले दो घटक है। 1. निष्कासन, 2. आकर्षण प्रभाव। अनेक बार यह प्रवास विवशता में भी होता है। आन्तरिक प्रवास सुविधा प्राप्ति के लिये होता है। आन्तरिक प्रवास के कारण निम्नप्रकार हो सकते है –

1. भूमि परजनसंख्या का अधिक दबाव पड़ने से भूमि की कमी हो जाती है और कृषि योग्य भूमि की खोज में लोग प्रवासी बनते है।
2. भूमिहीन कृषक शहरों में रोजगार की खोज में चल पड़ते है।
3. हानिकारक जलवायु और पहाड़ी जैसे दुर्गम क्षेत्रों से लोग स्वस्थ्य जलवायु और मैदानों की ओर प्रवास करते हैं।
4. कुटीर उद्योग धन्धों के टूटने से बेरोजगार लोग शहरों की ओर स्थानान्तर करते है।
5. कुदरती आपत्तियों, बाढ़, अकाल, आदि के कारण भी विवशता में लोग प्रवासी होते है।
6. उद्योग–धन्धे और रोजी–रोटी या नौकरी के लिये भी लोग प्रवासी बनते है।
7. उच्च जीवन–स्तर की लालसा भी लोगों को नगरों की ओर प्रवासी बनती है।
8. उच्च शिक्षा, योग्य स्वास्थ्य सेवा, अवागमन की सुविधा के लिये व्यक्ति स्थानान्तर करते है।
9. भयग्रस्त क्षेत्रों में भी जीवन–सुरक्षा के लिये लोग शहरों की ओर प्रवासी होते है।
10. एक स्थान पर उद्योग स्थापित होने और पुनः टूट जाने पर भी लोग एक स्थान से दूसरे स्थान के लिये प्रवासी होते है।
11. कभी–कभी मंहगाई और मंदी के कारण भी लोग स्थानान्तर करते है।
12. विवाह के पश्चात् लड़कियाँ प्रवासी बनती है।

भारत में आन्तरिक प्रवास –:

विकसित देशों में नगरों की ओर प्रवास का मुख्य कारण औद्योगीकरण होता है। भारत में भी यह नगरीय प्रवास वृद्धि पा रहा है परन्तु इसका कारण प्रो0 गाडगिल के अनुसार मात्र उद्योगों का विकास ही नहीं है – " उद्योगों की स्थापना और विकास अन्य सब देशों में नगरीकरण का मुख्य कारण रहा है। लेकिन भारत में इसका प्रभाव अवश्य ही इतना सशक्त नहीं रहा। वास्तव में भारत में बहुत कम ऐसे नगर हैं, जिनका उद्गम नये उद्योगों के कारण हुआ हो।"12

भारत में 1961 से 1971 की जनगणना के अनुसार लगभग 30 प्रतिशत लोगों ने स्थानान्तर किया। गाँव से नगर की ओर प्रवास का मुख्य कारण मात्र आर्थिक ही नहीं है वरन् विवाह के पश्चात् 78 प्रतिशत स्त्रियाँ स्थानान्तर करती है। गत 50 वर्षों में शहरी जनसंख्या का अनुपात जो कि लगभग 20 प्रतिशत था, वही सन् 1981 की जनगणना के अनुसार 24 प्रतिशत हो गया है।

हमारे देश में 53.5 प्रतिशत भूमि कृषि उत्पादन के उपयोग में लायी जाती हैं जमीन की उर्वरा शक्ति भी अलग–अलग होती है। इसमें भी अधिकांश जमीन पर धनिकों का अधिकार है। कृषि कार्य का मूल आधार वर्षा है जो बहुत ही अनियमित है व जिसने भारतीय किसान को भाग्यवादी बना दिया है। ये सभी कारण उत्पादन में बाधक बनते है और गरीब कृषक को शहर की ओर प्रवास के लिये मजबूर कर देते है। नये–नये उद्योगों के कारण कुटीर उद्योग धन्धे टूटने लगे है और इनमें लगे हुये लोग रोजगार की खोज में शहरों की ओर स्थानान्तर कर रहे है।

प्राकृतिक आपत्तियाँ –:

दुर्भिक्ष, बाढ़, अकाल, सूखा, महामारियों आदि के कारण भी खेत मजदूरों की संख्या में वृद्धि हो जाती है और तब गाँवों में अपनी योग्यता व शक्ति प्रयोग के लिये अवसर नहीं मिल पाता। इस प्रकार ये खेत मजदूर शहर की ओर प्रवासी बनने पर विवश हो जाते है।

शहरों की ओर आकर्षित होने के कारण आय व रोजगार के योग्य अवसर, जीवन की अन्य सुविधायें, उच्च जीवन स्तर की आकांक्षा, स्वास्थ्य सेवाओं की सुविधा मनोरंजन के लिये नये–नये साधन और दिन–प्रतिदिन बढ़ते हुये औद्योगीकरण के कारण रोजगार के नये–नये अवसरों की आशा ग्रामीण लोगों को शहर की ओर प्रवासी बनाती है। संक्षेप में कृषि में क्रान्ति, यातायात के साधनों की सुविधा, औद्योगीकरण, नगरीय सुविधायें, सांस्कृतिक व मनोवैज्ञानिक कारण, जनस्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धि आदि ऐसे कारण हे जो नगरीय विकास में सहायक बनते है।

भारतीय नगरों का वर्गीकरण -:

1970 की जनगणना के अनुसार भारत में नगरों को 6 भागों में विभाजित किया गया है –

1. प्रथम श्रेणी के नगर	एक लाख या उससे अधिक
2. द्वितीय श्रेणी के नगर	पचास हजार से एक लाख आबादी वाले
3. तृतीय श्रेणी के नगर	बीस हजार से पचास हजार आबादी वाले
4. चतुर्थ श्रेणी के नगर	दस हजार से बीस हजार आबादी वाले
5. पंचम श्रेणी के नगर	पाँच हजार से दस हजार आबादी वाले
6. षष्ठम् श्रेणी के नगर	पाँच हजार से कम आबादी वाले।

इन नगरों की संख्या सन् 1961 में 2365 थी, जो सन् 1991 में 3768 हो गयी। सन् 1901 में नगर संख्या 1827 थी। अतः 1901 से 1991 के 90 वर्षो के अन्तर नगरों की संख्या में 1941 की वृद्धि हुई। दूसरे शब्दों में नगरों की संख्या दुगुनी से भी अधिक हो गयी है।

शहरी जनसंख्या सन् 1960 में 79 मिलियन और 1971 में बढ़कर 109 मिलियन हो गयी और 1981 में 156 मिलियन और 1991 में बढ़कर 84.63 करोड़ हो गयी। सन् 2001 के नवीनतम् आँकड़ों के अनुसार भारत की कुल जनसंख्या 102.7 करोड़ है इसमें 74.17 करोड़ गाँवों में और 28.53 करोड़ नगरों में निवास करती है। इन सभी आँकड़ों से ज्ञात होता है कि नगरीयकरण की प्रक्रिया भारत में बड़ी तीव्र गति से हो रही है। महानगरों में जनवृद्धि का अनुपात छोटे नगरों की अपेक्षाकृत अधिक है, जिसके फलस्वरूप अनेक समस्यायें महानगरीय जीवन में उत्पन्न हो रही है। इन समस्याओं की ओर ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक है अन्यथा इसके भयंकर परिणाम निकल सकते है।

भारत में नगरीय स्थिति में परिवर्तन को नगर क्षेत्र के आधार पर तालिका 4.4 द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

तालिका ४.४

भारत की नगरीय स्थिति

भारत की जनसंख्या	नगरों की संख्या	
वर्ष	1951	1991
1. 1,00,000 से अधिक जनसंख्या	76	296
2. 50,000 से 99,999 तक की जनसंख्या	91	341
3. 20,000 से 49,999 तक की जनसंख्या	327	927
4. 10,000 से 19,999 तक की जनसंख्या	608	1135
5. 5,000 से 9,999 तक की जनसंख्या	1124	725
6. 5 हजार से कम जनसंख्या	569	185

स्रोत –: आर्थिक सर्वे 2000–01

तालिका 4.4 से स्पष्ट है कि योजना काल में नगरीय क्षेत्रों का निरन्तर बड़े होने की प्रवृत्ति रही है, परन्तु यह ध्यान देने योग्य बात है कि बड़े नगरों में जहाँ जनसंख्या का केन्द्रीयकरण हुआ है। वहाँ छोटे व मध्यम नगरों में जनसंख्या का अनुपातिक भाग स्थिर रहा है। 2001 में देश में कुल जिलों की संख्या 593 है।

महानगरों में जनवृद्धि के कारण उत्पन्न होने वाली समस्यायें

नगरों में विशेषकर महानगरों में जनसंख्या वृद्धि के कारण अनेक समस्याओं का जन्म हो रहा है जो इस प्रकार है –

1. **आवास समस्या** –:

आज के महानगर जनसाधारण के लिये आकर्षण के केन्द्र हैं। इनमें कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, हैदराबाद, कानपुर, अहमदाबाद, बंगलौर प्रमुख है। इन महानगरों में दिन–प्रतिदिन ग्रामीण जनसंख्या की मात्रा बढ़ती जा रही है। जिसके

कारण आवासीय समस्या गम्भीर रुप से खड़ी हो गयी है। जनसंख्या वृद्धि असीमित रुप से हो रही है और आवासों की संख्या सीमित रुप से, अतएव अनेक हाउसिंग कालोनियों की संख्या बढ़ती जा रही है। आवास गृहों की बढ़ती हुई मांग के कारण जमीन के भावों, मकान बनाने के सामानों के भाव इतने अधिक मंहगे हो गये है कि कुछ लोग ही इन्हें खरीदने या किरायें से लेने की सामर्थ्य रखते है। फलतः शहरी जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग गन्दी बस्तियों व झोपड़ियों में रहता है। नवीनतम् आँकड़ों के अनुसार एशिया की 37 प्रतिशत शहरी जनसंख्या निम्नतर गन्दी बस्तियों में रह रही है और कुछ एक शहरों में यह अनुपात इससे अधिक है। यू0 एन0 ओ0 द्वारा प्रेषित आँकड़ों के अनुसार बम्बई शहर में 28 लाख से भी अधिक जनसंख्या गन्दी बस्तियों में रह रही है। बम्बई नगरपालिका के अनुसार 85 झोपड़ियों की बस्तियाँ 93 हैक्टेयर भूमि पर बसी हुयी है। प्रतिवर्ष 60 हजार आवासों की माँग की जाती है और सरकार की ओर से लगभग 20 हजार आवास ही बनवाये जाते है।

भारत में जनसंख्या का घनत्व 2001 की जनगणना के अनुसार 324 प्रतिवर्ग किलोमीटर है। जनगणना आँकड़ों के अनुसार इन महानगरों का जनसंख्या घनत्व तालिका 4.5 के अनुसार इस प्रकार है।

तालिका संख्या 4.5

महानगरों में जनसंख्या का घनत्व

नगरों का नाम	घनत्व प्रतिवर्ग कि.मी.
कलकत्ता	30,276
मद्रास	16,293
अहमदाबाद	17,053
बम्बई	13,640
बंगलौर	11,462

उपर्युक्त तालिका 4.5 के आँकड़ों को भारत के घनत्व 324 के अनुपात

में देखा जाय तो इनकी गम्भीरता व भयंकरता अपने आप स्पष्ट हो जाती है और यह अनुपात दिन–प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है। इन्ही नगरों में कुछ क्षेत्र ऐसे है जहाँ पर जनसंख्या घनत्व 1 लाख से 5 लाख प्रतिवर्ग मील तक है। इतना अधिक घनत्व तो यूरोप के किसी भी महानगरों में नहीं है। जनसंख्या का घनत्व बढ़ जाने से महानगरों में जनसंख्या का एक बहुत बड़ा भाग एक या दो कमरे के मकान में बास करता है। अनेक समाजशास्त्रीय, अन्बेषणों एवं सर्वेक्षणों से यह निष्कर्ष निकाला गया है कि ये गन्दी बस्तियाँ अनेक अपराधों, जुआ, चोरी, शराबखोरी, भ्रष्टाचार, अश्लीलता, यौन रोगों को जन्म देती है। जवाहर लाल नेहरु ने स्लम्स के विषय में कहा था कि –

"These slume represent the almost from of human degradation, these responsible for this state of affairs should be hanged."13

"ये गन्दी बस्तियाँ मानवीय पतन की चरम सीमा का प्रतिनिधित्व करती है। इनके लिये जिम्मेदार लोगों को सूली पर लटका देना चाहिये।"

1981 की जनगणना के अनुसार कानपुर में 17 लाख की आबादी में से 6 लाख से अधिक और कलकत्ता, बम्बई में इन दिनों 67 प्रतिशत लोग गन्दी बस्तियों में रह रहे है। 1971 में शहरों की संख्या 2590 थी जबकि 1981 में 3378 हो गयी। सन् 2001 की जनगणना के अनुसार महाराष्ट्र में 10.65 मिलियन जनसंख्या गन्दी बस्तियों में रहती है। शहरों/नगरों में कुल जनसंख्या में स्लम जनसंख्या का अनुपात 41.33 प्रतिशत से 1.81 प्रतिशत के बीच रहा। स्लम जनसंख्या में साक्षरता दर काफी ऊँची पाई गई।

गन्दी बस्तियों में रहने से श्रमिकों के स्वास्थ्य व जीवन स्तर पर बुरा प्रभाव पड़ता है। उनका घरेलू व व्यक्तिगत जीवन निराशापूर्ण बन जाता है। जिससे उनका स्वास्थ्य खराब होता है और खराब स्वास्थ्य से कार्यक्षमता में कमी आती है।

भूतपूर्व केन्द्रीय न्यायमंत्री श्री ए0 के0 सेन की अध्यक्षता में नियुक्त व गन्दी बस्तियों को हटाने की परामर्शदाता समिति ने यह सुझाव दिया था कि गन्दी बस्तियों को हटाने के कार्यक्रम को नगर विकास कार्यक्रम का ही एक अंग मान लिया

जाना चाहिये और सर्वप्रथम कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, दिल्ली, कानपुर, अहमदाबाद की गन्दी बस्तियों को हटाया जाना चाहिये।

2. **नगरीय सुविधायें –:**

सरकार एवं महानगर पालिकाओं (कार्पोरेशन) द्वारा दी जाने वाली नगरीय सुविधायें अपर्यात्त है –

अ. **मनोरंजन के स्थलों का अभाव –:**

महानगरों की बढ़ती हुई आबादी ने कानूनी और गैर कानूनी तरीकों से सार्वजनिक उपयोग में लाई जाने वाली भूमि को अपने अधिकार में ले लिया है। बहुत से पार्क व बगीचे, जो सार्वजनिक मनोरंजन के स्थल थे, वे सभी आज असामाजिक तत्वों के केन्द्र बन गये है। बच्चों के खेल के मैदानों में आज अनेक झुग्गियाँ और झोपड़ पट्टियाँ खड़ी हो गई हैं।

ब. **यातायात की असुविधा –:**

आज इन महानगरों में सड़क पर चलना भी मुश्किल हो गया है। अनेक लोग फुटपाथ पर सोये पड़े रहते हैं। अनेक सब्जी वाले, फल वाले, चाट वाले, छोटी–छोटी दुकानों वाले लोगों ने सड़कों का बहुत बड़ा भाग घेर लिया है जिससे यातायात में असुविधा होती है।

स. **सफाई का अभाव –:**

गन्दगी के गड्ढ़ो में गन्दगी का ढेर महानगरों में नित्य बढ़ता ही जा रहा है। चारों और गन्दगी का साम्राज्य फैलता जा रहा है। शहरों में संडाध, स्नानग्रहों की कमी होती है, अतः मलमूत्र व गन्दा पानी चारों ओर निचले स्थानों व गड्ढ़ों में भर जाता है। जिससे मक्खी मच्छर बढ़ते है और अनेक संक्रामक रोगों (हैजा, टाइफाइड, मलेरिया) को फैलाते हैं। इन नगरों की कार्पोरेशन को चाहिये कि इस गन्दगी को दूर करने के लिये कूड़ों का उपयोग खाद व गैस बनाने में करें। इससे एक ओर गन्दगी दूर होगी, दूसरी ओर कूड़े का सदुपयोग होगा।

द. **पेयजल का अभाव** –:

इन महानगरों में उद्योगों और दैनिक जीवन की पूर्ति के लिये पानी की आवश्यकता होती है। जनसंख्या इतनी अधिक बढ़ती जा रही है कि शुद्ध पेय जल प्राप्त करना भी मुश्किल होता जा रहा है। बम्बई में तुलसी, पवई और बिहार झीलों से पानी मिलता है। तान्सा व बेतरना से 450 लाख गैलन पानी प्रतिदिन लिया जाता है। मत्सई योजना के द्वारा 100 लाख गैलन पानी बढ़ाने की आशा है, फिर भीं पानी की कमी दिन प्रतिदिन अधिक अनुभव की जा रही है।

य. **मनोरंजन का अभाव** –:

मनोरंजन के स्थल, सिनेमागृह, नाट्यगृह, पार्क, बगीचे, क्लब आदि की कमी है। फलस्वरूप काला बाजारी, जुआ, हत्या, लड़ाई–झगड़ों का प्रभाव बढ़ता ही जा रहा है।

र. **संचार साधनों की कमी** –:

महानगरों में डाक–तार विभाग रात–दिन कार्यशील रहते है फिर भी जनसंख्या के अनुपात में कम ही है। जैसे–जैसे जनसंख्या बढ़ रही है टेलीफोन ऑफिस की कार्यक्षमता में गिरावट आती जा रही है और यह सुविधा अपर्याप्त बनती जा रही है। यह समस्या दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता, मद्रास जैसे महानगरों में अधिक पायी जाती है। 20वीं सदी के अन्त और 21 वीं सदी के प्रारम्भिक वर्षों में आयी संचार क्रान्ति ने टेलीफोन की सुविधाओं में काफी सुधार हुआ है। इस तरह से इस संचार माध्यम में काफी प्रगति की है।

नगरीय सुविधायें बढ़ायें जाने के पश्चात् भी नगरों में असुविधायें ही असुविधायें है। इसका कारण है कि जितनी भी सुविधायें उपलब्ध करायी जाती है, उसे बढ़ती हुई जनसंख्या निष्फल बना देती है।

3. **यातायात समस्यायें –:**

महानगरों में जनवृद्धि के कारण उपनगरों की संख्या बढ़ती जा रही है। उपनगरों में रहने वाली जनता नौकरी, शिक्षा, कारखानों, ऑफिसों आदि में काम करने के लिये एक उपनगर से दूसरे उपनगर में जाती है। कुछ समृद्ध व्यक्तियों के पास अपनी वाहन सुविधायें है अथवा वे टैक्सी आदि का खर्च बहन कर सकते है। परन्तु मध्यवर्गीय व गरीब लोगों के पास न तो अपने साधन है और न ही उनमें टैक्सी का खर्च उठाने की सामर्थ्य हैं। सरकार ट्रेनों की अधिक से अधिक मात्रा बढ़ा रही है साथ ही सरकारी और प्राइवेट बसों की भी मात्रा में वृद्धि की जा रही है, फिर भी यातायात व परिवहन की सुविधा जनसंख्या की माँग के अनुपात में अपर्याप्त है। उदाहरण के लिये ले तो बम्बई की बस सर्विस भारत में यातायात साधनों में सर्वश्रेष्ठ है। बम्बई में लगभग 30 लाख व्यक्ति प्रतिदिन बसों का लाभ लेते हैं। यातायात का 30 प्रतिशत कार्यभार बसें, लगभग 40 प्रतिशत रेले और लगभग 12 प्रतिशत कार्यभार कारें उठाती है। फिर भी चारों ओर सड़कों, बस स्टेशनों, रेलवे स्टेशनों पर लम्बी–लम्बी लाइनें भीड़ की दिखाई देती है। इस भीड़ के कारण अनेक दुर्धटनायें प्रतिदिन घटती है, कितनों की जाने जाती है और कितनों को अपने धन से हाथ धोना पड़ता है। चोरी, पाकेटमारी, उठाईगीरी को ऐसे भीड़ भरे वातावरण में खूब प्रोत्साहन मिलता है। ऐसे स्थलों पर असामाजिक तत्व बहुत क्रियाशील रहते है। यह परिस्थिति बम्बई में ही नहीं, देश के प्रत्येक महानगर में देखी जा सकती है।

आवागमन की इस समस्या के साथ ही डीजल, पेट्रोल की समस्या खड़ी हो जाती है, साथ ही इनके भाव बढ़ने से वाहनों के किराये भी बढ़ जाते है। जनसंख्या की माँग के संदर्भ में वाहन बढ़ते जाते है जो वातावरण को दूषित बनाते है। इसका प्रभाव वनस्पति, प्राणी व मानव जगत पर बहुत खराब पड़ता है।

वाहन वृद्धि से इन्हें रखने के स्थान की समस्या जन्म लेती है। वाहनों को स्थान की कमी के कारण सड़क के किनारे गलियों में, पार्को, मन्दिरों के पास कहीं भी खड़ा कर दिया जाता है। जिससे यातायात में असुविधा होती है।

4. **स्वास्थ्य समस्यायें** –:

आज के महानगरों की लगभग 60 से 75 प्रतिशत जनसंख्या गंदी बस्तियों में निवास करती है। जिनमें हवा, शुद्ध पेयजल, संडास, स्नानगृह आदि बुनियादी स्वास्थ्य सुविधाओं का भी अभाव होता है। एक ओर आवास का यह गन्दगी भरा वातावरण, दूसरी ओर कुपोषण, अल्पपोषण ये दोनों मिलकर रोगों को आमन्त्रण देते है और अनेक संक्रामक रोग फूट निकलते है। इन बीमारियों को दूर करने के लिये डॉक्टरों का 60 प्रतिशत भाग शहरों में ही निवास करता है फिर भी जब व्यक्ति अपनी बीमारी का जिम्मेदार स्वयं होगा तो डॉक्टर उसमें क्या कर सकेगा। बीमारों की संख्या में वृद्धि नगर पालिका के अस्पतालों की कमी, दवा खरीदने की क्षमता में कमी के कारण जन–स्वास्थ्य बिगड़ता ही जा रहा है। इस स्वास्थ्य समस्या का निदान मात्र डॉक्टरों व अस्पतालों से ही होने वाला नहीं है। इसके लिये तो मानव की मूलभूत आवश्यकता – भोजन, वस्त्र व उचित जनसंख्या वृद्धि को रोकना होगा।

5. **शिक्षण समस्यायें** –:

शिक्षा से मानव व्यक्तित्व में निखार आता है, जो उसके सम्पूर्ण जीवन व जगत को प्रभावित करता है। "शिक्षा" व्यक्ति को अज्ञान से ज्ञान की ओर ले जाने वाली प्रक्रिया है। "शिक्षा" जिसका जीवन में इतना महत्वपूर्ण स्थान है , उसी शिक्षा की स्थिति आज भारत में संतोषप्रद नहीं है। शिक्षा समस्या को भारत के महानगरों में अपने उच्च शिखर पर देखा जा सकता है। योग्य शिक्षकों की कमी, अध्ययन सामग्री का महंगापन, स्कूलों में स्थान की कमी, आज एक सामान्य सी बात हो गयी है।

शिक्षा की व्यवस्था प्रत्येक क्षेत्र में अपने भिन्न–भिन्न रुप में पायी जाती है। गरीब लोग अपने बच्चों को निःशुल्क सरकारी स्कूलों में पढ़ने के लिये दाखिल करते

है, जहाँ एक ही श्रेणी में 40 विद्यार्थियों के स्थान पर 100 विद्यार्थियों को बैठाया जाता है। फलतः शिक्षक प्रत्येक बच्चे पर उचित ध्यान नहीं दे पाते। कहीं–कहीं पर विद्यार्थियों की संख्या अत्यधिक बढ़ जाने से शाला को कई शिफ्टों में चलाया जाता है। अपर्याप्त सुविधाओं के कारण जैसे – अध्ययन कक्षों की कमी, मंहगी पुस्तकें, पुस्तकालयों की न्यूनता, माता–पिता व शिक्षकों की मुलाकात का अभाव से शिक्षा का स्तर निम्न होता जा रहा है और ये निरक्षर और गरीब बच्चे गुनाहों की ओर कदम बढ़ा रहे है।

अतः शिक्षा से बाल मानस का विकास उचित दिशा की ओर होता है। सम्पन्न व्यक्ति अपने बच्चों को प्राइवेट सुविधाजनक शिक्षण संस्थाओं में भेजते हैं। जहाँ बच्चे की पढ़ाई पर समुचित ध्यान दिया जाता है। इन संस्थाओं में प्रवेश पाना असम्भव नहीं तो मुश्किल बहुत है, अतः लोग अपने बच्चों का नामांकन पहले से ही करा देते हैं। इस कारण शुल्क की दर बढ़ती जा रही है।

उच्च शिक्षा प्राप्त करने में इससे भी अधिक परेशानियाँ है। सीमित सीटे होने के कारण व्यावसायिक कोर्स में प्रवेश पाना एक समस्या बन गया है। सरकारी और गैर–सरकारी स्कूलों की मात्रा बढ़ाई जा रही है। कोचिंग क्लासेस, संध्याकालीन विद्यालय, प्राइवेट परीक्षाओं के द्वारा शिक्षा समस्या को हल करने के प्रयत्न किये जा रहे हैं परन्तु प्रतिवर्ष बढ़ती हुयी जनसंख्या की माँग के अनुपात में यह प्रयास विफल होते जा रहे है।

6. **दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति की समस्या –:**

मानव को प्रतिदिन कुछ आवश्यक वस्तुओं की जरुरत होती है जिन्हें प्राप्त करना परमावश्यक हो जाता है जैसे दूध, सब्जी, तेल, शक्कर, कैरोसीन आदि। महानगर में इन वस्तुओं की माँग अधिक होने से और अनुपात में पूर्ति के कम होने से एक समस्या उत्पन्न हो जाती है। कई व्यापारी और दुकानदार अधिक लाभ उठाने के उद्देश्य से इन वस्तुओं का कृत्रिम अभाव उत्पन्न कर देते है और उचित मूल्य से अधिक मूल्य लेकर अधिक लाभ कमाते हैं। मूल्य अधिक होने पर भी गरीब से गरीब भी इन

वस्तुओं को खरीदने के लिये विवश हो जाते है, क्योंकि वे जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं (भूख) को पूरा करती है। इस स्थिति का दबाव मध्यम वर्ग और निम्न वर्ग पर अधिक पड़ता है सरकार इस समस्या को हल करने के लिये प्रयास कर रही है। राशनिंग द्वारा दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के प्रयास किये जाते है परन्तु समस्या का अंत नहीं हो पाया है।

7. समाज विरोधी तत्व एवं दुराचार –:

भारत के महानगरों में समाज विरोधी तत्व और भ्रष्टाचार की समस्या भी एक महत्वपूर्ण समस्या है। ग्रामीण क्षेत्रों से लोग भूमि की कमी, कुटीर उद्योगों के टूटने, कृषि क्रान्ति, प्राकृतिक आपत्तियों के कारण ही सुन्दर, उच्च जीवन स्तर की आशा लेकर नगरों में आते है। आवास की कमी और आर्थिक अभाव के कारण ये लोग अपने परिवारों को गाँवों में ही छोड़ आते है। नगरों में बढ़ती हुई जनवृद्धि से अनेक नैतिक व सामाजिक समस्याओं का जन्म होता है। अपने परिवार से दूर रहने के कारण ये ग्रामीण बड़ी आसानी से जुयें, शराब, वैश्यावृत्ति के चंगुल में फंस जाते हैं। इन भोले–भाले श्रमिकों को पहले से ही गुनाहित जीवन जीने वाले लोग फुसलाकर , लालच देकर अपराधों की दुनिया में ले जाते है। साथ ही काला बाजार, भ्रष्टाचार, मिलावट आदि गुनाहों का विस्तार होता है। इसके अतिरिक्त दूसरी अन्य समस्याये भी उत्पन्न होती है जैसे हिंसा, गुनाह, तलाक भिक्षावृत्ति, बाल गुनाह आदि। आज महानगरों में बच्चों में पायी जाने वाले भिक्षावृत्ति उनकी सुरक्षा या पोषण का अभाव सूचित नहीं करती वरन् असामाजिक तत्वों द्वारा अपने काले धन्धे पूरा करने का एक तरीका है।

अति जनसंख्या वृद्धि के कारण उत्पन्न हुई विशाल झोपड़ पट्टियाँ ही इन गुनाहों की जन्म भूमि हैं। असामाजिक तत्वों की समस्या मात्र सामाजिक ही नहीं है, बल्कि सांस्कृतिक और आर्थिक परिस्थितयों से इतनी घुलमिल गयी है और इतनी जटिल व उलझन वाली बन गयी है कि सरकार इन्हें कानून बनाकर समाप्त नहीं कर सकती । इसके लिये एक जनचेतना जागृत करनी होगी और आज के युवकों को इन

समस्याओं से परिचित कराकर इनका मुकाबला करने के लिये तैयार करना होगा।

8. **सामाजिक-आर्थिक विषमतायें** —:

नगरों में जाति, वर्ग, धर्मगत विषमता देखी जा सकती है, इसलिये अनेक विचारों, आदर्श में भारी मतभेद होता हैं। आर्थिक विषमता यहाँ अपनी चरम सीमा पर होती है — एक ओर झोपड़ी और दूसरी ओर गगन चुम्बी अट्टालिकायें। अतः चोरी, उठायीगीरी, लूटपाट, वैश्यावृत्ति, भिक्षावृत्ति जैसी समस्याओं का जन्म होता है।

9. **अन्य विषमतायें** —:

महानगरों में अन्य विषमतायें भी दृष्टिगत होती है, जिनसे अनेक समस्यायें जन्म लेती है —

अ. परिवर्तनशील बनावटी जीवन —:

ग्रामीणों की अपेक्षा नगर निवासी, महत्वाकांक्षी, भौतिकवादी व स्पर्धा करने वाले होते है, अतः उनका जीवन गतिशील होता है। नगरों में परस्पर व्यवहार, सम्बन्ध, बोलचाल, शिष्टाचार आदि में बहुत ही कृत्रिमता पायी जाती है, अतएव मानवीय भावनाओं का अभाव सा होता है। परिणामस्वरुप अनेक वाद—विवादों, झगड़ो का जन्म होता है।

ब. वैवाहिक सम्बन्धों में परिवर्तन -:

नगरीय समाज में वैवाहिक बंधनों में शिथिलता पायी जाती है। यह विवाह एक संस्कार न रहकर, ''करार'' बन जाता है। और तलाक जैसी समस्याओं को प्रोत्साहन मिलता है।

स. सामुदायिक जीवन एवं भावना का अभाव -:

बाल गुनाहगारों की संख्या में वृद्धि, पारिवारिक एकता का अभाव मानसिक तनाव और शारीरिक रोगों की अधिकता के कारण आत्महत्या जैसी अनेक समस्याओं का जन्म होता है।

महानगरों में उत्पन्न हुई इन अनेक शारीरिक, आर्थिक सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक समस्याओं का कारण शहरों में बड़ी तीव्र गति से बढ़ती हुई जनसंख्या है जिसका मुख्य कारण ग्रामीण जनसंख्या का महानगरों की ओर प्रवास करना है। ग्रामीण जनता को नगरौं में स्थानान्तर करने से रोकने के लिये आज इस बात की आवश्यकता है कि सरकार और राज्य सरकारें ग्रामीण क्षेत्रों को पृथक–पृथक इकाई के रुप में न लेकर नगर तथा ग्रामों का सामूहिक विकास करें। इस संदर्भ में एक ग्राम नगर विकास अधिनियम बने, जिसमें निम्न विषयों का समावेश हो –

1. प्रत्येक भिन्न खण्ड के लिये ग्राम नगर विकास योजनायें बनाई जाये। इन योजनाओं को बनाने के लिये वैज्ञानिक तथा सरकारी प्रशासकों की परिषदों का गठन किया जाय।
2. अमुक विशिष्ट उद्योग मात्र गाँवों में ही विकसित किये जाये। गाँवों में विद्युत, स्वास्थ्य, शिक्षा, ऋण सम्बन्धी सुविधाये भी दी जाये।

संक्षेप में, इन ग्रामीण और नगरीय, सरकारी सभी को तभी सफलता मिलेगी, जब जन्मदर को कम किया जाये। ध्यान रहे कि ग्रामों से नगरों की ओर प्रवासी बनने का मुख्य कारण भूमि पर अधिक जनसंख्या का भार है, अतः जन्मदर पर नियन्त्रण किया जाय अन्यथा सभी प्रयत्न बालू पर बने मकान की तरह ढह जायेगें।

III **जनसंख्या एवं पर्यावरण** –:

"भारत में असीमित जनसंख्या के परिणाम स्वरुप प्रकृति के अनावश्यक एवं अत्यधिक विदोहन से हमारा पर्यावरण परोक्ष रुप से प्रदूषित होता चला जा रहा है। जनसंख्या की अधिकता ने पर्यावरणीय सन्तुलन बिगाड़ दिया है। यद्यपि विधाता ने सबसे अधिक वनस्पति को पैदा किया, द्वितीय मांसाहारी को तथा तीसरे क्रम में मनुष्य को किन्तु आज क्रम उल्टा हो गया है जिससे मनुष्य सबसे ज्यादा मासांहारी द्वितीय क्रम में तथा वनस्पति सबसे कम रह गयी है। इस प्रकार हमने जनसंख्या बढ़ा कर विधाता द्वारा निर्मित क्रम को भी चुनौती दी है। जिसका दुष्परिणाम है सूखा, अकाल,

दैवीय प्रकोप, अपवृष्टि, अल्पवृष्टि।''14

वास्तव में भारत में निरन्तर जनसंख्या प्रसार के कारण प्राकृतिक पर्यावरण को बनाये रखना मुश्किल होता जा रहा है देश के कुछ बड़े महानगरों में जैसे – कलकत्ता, दिल्ली, बम्बई। विश्व स्वास्थ्य संगठन की हाल ही में प्रकाशित रिपोर्ट के अनुसार विश्व के 20 महाप्रदूषित महानगरों में से हैं। इनमें से प्रत्येक की जनसंख्या या तो एक करोड़ से ऊपर है या उसके आस पास।

इन महानगरों में औद्योगिक कचरे ने तो विनाशलीला खड़ी कर रखी है। अत्यधिक जनसंख्या एवं उसकी विभिन्न क्रियाओं के फलस्वरुप वायु, जल आदि सभी प्रदूषित हो चुके हैं और यही कारण है कि बड़े औद्योगिक महानगरों जैसे – कलकत्ता, मद्रास, अहमदाबाद में रहने वाले लोग श्वांस, फेफड़ों की बीमारी, दमा एवं चर्म रोग से ग्रसित रहते हैं। यहाँ तक कि दूषित वातावरण शरीर के साथ–साथ मानसिक रोगों को भी जन्म दे रहा है।

जहाँ एक तरफ जनसंख्या और भू–क्षेत्र का समीकरण बिगड़ता जा रहा है वहीं जनसंख्या वृद्धि को तेज रफ्तार के परिणामस्वरुप वाहनों की संख्या बहुत अधिक बढ़ गयी है जिससे धुआं बढ़ रहा है और इन्सान के जीवन का ग्राफ घट रहा है।

भारत में अत्यधिक जनसंख्या के कारण पर्यावरण प्रदूषण केवल शहरों में बढ़ रहा है, ऐसी बात नहीं है। वास्तव में ग्रामों व कस्बों में भी प्रदूषण की भयंकर स्थिति दृष्टिगोचर होती है। जनसंख्या वृद्धि के परिणामस्वरुप देश में प्रदूषण की स्थिति का वर्णन करते हुये कैलाश चन्द्र व्यास एवं हरिश्चन्द्र व्यास लिखते है ''प्रदूषण देश के लिये भस्मासुर के समान राक्षस बन गया है। उसमें देश के वातावरण के भौतिक, रासायनिक, जीव–वैज्ञानिक अवस्था में इस प्रकार का परिवर्तन हो रहा है जिसके परिणाम स्वरुप नागरिक, जीवजन्तु और पेड़ पौधो और सौन्दर्य प्रतीकों को खूब हानि हो रही है। आटोमोबाइल, जलवायु प्रदूषण, एल्कोहल के कारखाने द्वारा निर्मित भूमि प्रदूषण, रेडियोधर्मी अवशेषो द्वारा उत्पन्न प्रदूषण आदि प्रमुख हैं। देश में जल प्रदूषण के कारण

5 वर्ष से कम आयु के बच्चे लगभग 17 लाख हर वर्ष मर जाते हैं। भारत में 80 प्रतिशत स्वास्थ्य सम्बन्धी बीमारियाँ दूषित पानी के कारण होती हैं। 70 प्रतिशत पानी ऐसा है जो मनुष्य के इस्तेमाल के योग्य नहीं है।''15

पृथ्वी पर अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिये मानव को भोजन, वायु, जल, वस्त्र, आवास, ईधन, ऊर्जा आदि की आवश्यकता होती है। उपरोक्त किसी भी वस्तु में कोई विशिष्ट कमी या परिवर्तन हो तो उसका प्रभाव हमारी वर्तमान और भविष्य की पीढ़ी पर पड़ता है। विश्व की तीव्र गति से बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण जैसे–जैसे भोजन, वस्त्र, ऊर्जा, आवास आदि की दुगुनी चौगुनी माँग बढ़ रही है। उसी अनुपात में उस माँग की पूर्ति की प्रक्रिया से वातावरण में प्रदूषण बढ़ता जा रहा है।

अक्टूबर 1982 में बाली इण्डोनेशिया में हुये पर्यावरण विशेषज्ञों के अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में 'बाली घोषणा पत्र' द्वारा यह व्यक्त किया गया कि मानव गतिविधियां पृथ्वी की जीवन दायिनी क्षमता को घटा रही है। सम्मेलन में आशंका व्यक्त की गयी कि पूरे ब्राह्मण्ड में पृथ्वी ही एक ऐसा ग्रह है जिसमें धरती अथवा जमीन है, लेकिन मानव की निरन्तर बढ़ती तीव्र जनवृद्धि से धरती की क्षमतायें क्षीण होती जा रही है। धरती की जीवन शक्ति बनाये रखने के लिये सम्मेलन ने राष्ट्रीय उद्यानों, अभयारण्यों और वनों की आवश्यकता पर जोर दिया।

वास्तव में बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण प्राकृतिक संसाधनों का उपभोग निरन्तर बढ़ता जा रहा है जिसका प्रभाव सम्पूर्ण वातावरण पर पड़ रहा है। जनवृद्धि से उपभोग की सभी सामग्रियों की माँग बढ़ती हैं और माँग बढ़ने से नये उद्योग आरम्भ होते है। इन उद्योगो में सभी प्राकृतिक संसाधनों का उपभोग होने के कारण शेष रहें व्यर्थ हानिकारक पदार्थ सारे वातावरण को प्रदूषित करते है, अतएव वातावरण प्रदूषण का मूल कारण आज के औद्योगीकरण की विश्वव्यापी तीव्र गति को नही बल्कि जनसंख्या वृद्धि की अप्रत्याशित तीव्र गति को माना जाना चाहिये। जनसंख्या वृद्धि के कारण आयोजन रहित उद्योगों की वृद्धि, नगरीयकरण की बढ़ती हुई प्रवृत्ति व वाहन व्यवहारों की

असीमित वृद्धि में एक साथ मिलकर वातावरण प्रदूषण की जटिल समस्या को आज समस्त विश्व के समक्ष एक चुनौती के रुप में खड़ा कर दिया है। इस प्रदूषण ने समस्त मानव तथा प्राणी जगत के शुद्ध वायु–मण्डल को असंतुलित कर दिया है और सम्पूर्ण सजीव एवं चेतन जगत के लिये खतरा पैदा कर दिया है। आज हम न चाहते हुये भी इस विषाक्त वातावरण में रहने, जीने के लिये विवश है।

समस्या क्या है ? –:

वर्तमान युग में पर्यावरण पर दबाव बढ़ता जा रहा है। आज आदमी प्रकृति से दूर होता जा रहा है। बीसवीं सदी में पर्यावरण के साथ सभ्य मानव ने बहुत अधिक छेड़छाड़ की है। बढ़ती आबादी की वजह से समस्त मानव जाति के सम्मुख प्रकृति और पर्यावरण को लेकर अस्तित्व हीनता की स्थिति उत्पन्न होती जा रही है।

एक ओर विकास की गति ने मनुष्य को जहाँ विविध लाभ पहुँचायें है, वही दूसरी ओर कई नुकसान भी हुये हैं। प्रकृति का संतुलन डगमगाने लगा है, उसकी सादगी और पवित्रता नष्ट हो रही है। अपनी बढ़ती जरुरों को पूरा करने के लिये मकान बनाने, खेती करने, ईधन प्राप्त करने, पैसा बनाने तथा अन्य उपयोगों के लिये पेड़ों और जंगलों का सफाया हो रहा है। रोज ही नई नई सड़के, गगनचुम्बी इमारतें, मिल, कारखाने आदि बन रहे हैं और इस प्रक्रिया में हानिकारक रसायनों, गैसों व अन्य चीजों का जोरों पर इस्तेमाल हो रहा है। इसके परिणामस्वरुप शहरों से लेकर गाँवों तक पर्यावरण की प्राकृतिकता नष्ट होती जा रही है।

मनुष्य को जीवित रहने के लिये जिस तरह भूमि आवश्यक है, उसी तरह वनस्पतियां और अन्य प्राणी भी जरुरी है। प्रकृति का प्रत्येक जीव यानी पेड़, पौधे, प्राणी, कीड़े–मकोड़े, पक्षी, हिंसक जीव आदि सभी प्रकृति के महत्वपूर्ण अंग और पूर्जे है, जो इस उपगृह पर जीवन के प्राकृतिक तन्त्र का संचालन और निर्धारण करते है। इनमें एक जीव की कमी या नष्ट होने का प्रभाव दूसरे जीवों के क्रियाकलापों में महसूस किया जाता है। उदाहरण के लिये यदि जंगल में हिरणों की संख्या कम हो जाये तो उनका

शिकार करने वाले शेर, बाघ आदि को भोजन की कमी हो जायेगी और वे हमारा पशुधन उठाने लगेगें या फिर आदमखोर बन जायेगे।

वेदों के अनुसार – 'प्रत्येक जाति को सृष्टि का अंग बनकर दूसरी जातियों के संग मिलकर परम शक्ति द्वारा बनाये गये पर्यावरण का लाभ उठाना चाहिये।' जबकि एक अनुमान के अनुसार वर्तमान समय में प्रति वर्ष कम से कम एक प्रजाति का बड़ा समूह इस धरती से विलुप्त होता जा रहा है। इस प्रकार आज एक प्रजाति का विस्तार ही अन्य प्रजातियों के विनाश का कारण बनता जा रहा है।

हाल के वर्षो में प्राकृतिक साधनों के दोहन के कारण भी गम्भीर समस्या उत्पन्न हो गई है। अब लोग इस बात को मानने लगे हैं कि विकास और पर्यावरण का निकटतम सम्बन्ध है तथा पर्यावरण की सुरक्षा के बिना विकास अधूरा है। प्रकृति के परस्पर निर्भर जीवनचक्र का नाम पर्यावरण है। हजारों वर्षो से मानव जीवन पर्यावरण के सन्तुलन के सहारे चलता रहा है। यद्यपि पर्यावरण में स्वतः संतुलन होता है और प्रकृति नियन्त्रक का काम करती है, फिर भी संतुलन की एक निश्चित सीमा है। इस सीमा के बाद पर्यावरण अपने आप दूषित होना प्रारम्भ हो जाता है। जनसंख्या वृद्धि के फलस्वरुप पृथ्वी पर सीमित स्रोतों की तुलना में जन दबाब बढ़ता जा रहा है। उपभोग की वस्तुओं में कमी आती जा रही है, फलस्वरुप जीवन स्तर में सुधार की गति धीमी होती जा रही है।

उक्त विवेचना से स्पष्ट होता है कि पर्यावरण की रक्षा आज एक समस्या के रुप में हमारे सामने खड़ी है। जनसंख्या वृद्धि को देखते हुये आज पारिस्थितिक की प्रणाली में जैव पर्यावरण जिसका सम्बन्ध सजीवों से है और अजैव पर्यावरण जीवों के प्रयोग के लिये उपलब्ध समग्र व्यवस्था के बीच एक निश्चित तालमेल और सीमा रेखा जरुरी है। इस कार्य में मनुष्य की भूमिका सर्वोपरि है, क्योंकि मनुष्य ही पर्यावरण की व्यवस्था में आवश्यकतानुसार परिवर्तन कर सकता है।

पारिस्थितिक असंतुलन और पर्यावरण प्रदूषण –:

पारिस्थितिक असंतुलन और प्रदूषण वह क्रिया या अवस्था है जिसमें पर्यावरण का संतुलन और निर्मलता नष्ट हो जाती है अथवा बिगड़ जाती है। प्रकृति की मूल संरचना में उसके ढाँचे में मिलावट का दखलदांजी का यह जहर ही प्रदूषण कहलाता है। प्रदूषण आज के युग की ज्वलन्त समस्या है। आने वाले कुछ ही वर्षो में जहरीलें विषाक्त एवं दमघोटू वातावरण की कल्पना ही मन में सिहरन पैदा करने वाली है।

भारत जैसे विकासशील देश में, जहाँ जनसंख्या वृद्धि और आर्थिक प्रगति, दोनों की दरें, सामान्य से अपेक्षाकृत अधिक है, दिन प्रतिदिन पर्यावरण प्रदूषण बढ़ता जा रहा है। अन्नोत्पादन के नये–नये तरीके, रासायनिक खादें, कीटनाशक दवायें आदि उपज बढ़ाने के लिये अधिक प्रयोग किये जा रहे है। औद्योगीकरण बढ़ता जा रहा है। ऊर्जा शक्ति की अधिक माँग एवं पूर्ति की कमी से उत्पन्न होने वाले असंतुलन एवं ऊर्जा विखण्डन ने भी प्रदूषण को बढ़ाया है।

इसमें भी संदेह नहीं है कि बढ़ती हुई जनसंख्या के लिये अधिक अन्न और अधिक अन्नोत्पादन के लिये कृत्रिम साधन आवश्यक है। यह भी सच है कि उपज को बढ़ाने और नुकसान से बचने के लिये कीटनाशक दवाओं, रासायनिक खादों का अधिक उपयोग किया जाता है, जिससे प्रदूषण बढ़ता है।

पर्यावरणविदों की राय में पर्यावरण प्रदूषण की मुख्य वजह तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या है। 1930 के आँकड़ों के अनुसार विश्व की जनसंख्या 2 अरब थी जो कि अब करीब साढ़े पांच अरब के करीब है। यदि जनसंख्या की यही गति रही तो 2050 के अन्त तक यह जनसंख्या नौ अरब को पार कर जायेगी। हर रोज पैदा होने वाले दो लाख बच्चों की आवश्यकता की पूर्ति के लिये जंगल खेत और खाली जमीन शहरी बस्तियों में तब्दील होते जा रहे है। विकास के इस दौर में मानव ने जो भी चीजें ईजाद की सभी पर्यावरण के लिये हानिकारक सिद्ध हुई है, चाहे तेज गति से चलने वाले वाहन हो, विभिन्न सिंथेटिक वस्तुओं के कारखाने हो या फिर बढ़ती जनसंख्या का पेट भरने

के लिये बेइंतहा प्रयोग में लाये जा रहे कीटनाशक रसायन उर्वरक हो सबके सब पर्यावरण को प्रदूषित करने में अहम् भूमिका निभाते है। बढ़ते प्रदूषण का प्रभावी कारक हमारी जनसंख्या है। सन् 1830 में विश्व जनसंख्या केवल एक अरब थी। 1930 में दो अरब हो गई। तीस वर्ष पश्चात् 1960 में यह तीन अरब हो गई। इसके मात्र 15 वर्ष पश्चात् 1975 में विश्व जनसंख्या 4 अरब तक जा पहुँची। देखते ही देखते 1986 में 5 अरब हो गई। 1999 को सम्पूर्ण विश्व की जनसंख्या बढ़कर 6 अरब हो गई है। अनुमान है कि विश्व की जनसंख्या 2010 तक 7 अरब सन् 2022 तक आठ अरब हो जायेगी। जिस प्रकार जनसंख्या बढ़ रही है, उसे देखकर लगता है कि शीघ्र ही पर्यावरण संतप्त हो जायेगा। रहने के लिये स्थान, खेती के लिये भूमि और पीने के लिये जल का अभाव तो होगा ही, वायु भी इतनी प्रदूषित हो चुकी होगी जिसमें सांस लेना दूभर हो जायेगा। अनेक जंगली जानवर इस सीमा तक लुप्त हो जायेगे। कि वे हमें पुरातत्व अवशेष की भाँति निहारते मिलेगें।

IV. जनसंख्या एवं सामाजिक विघटन –:

जनसंख्या वृद्धि के विभिन्न दुष्परिणामों में एक महत्वपूर्ण दुष्परिणाम यह भी है कि जब जनसंख्या एक सीमा से अधिक हो जाती है तथा जनसंख्या की वृद्धि की दर भी सीमा पार कर जाती है तो वह सामाजिक संतुलन को समाप्त कर देती है। तथा सामाजिक संगठन के विभिन्न आवश्यक तत्व जैसे सामान्य जीवन का तरीका, सामाजिक कल्याण के दर्शन, सामाजिक नियम परम्पराओं सामाजिक संस्थाओं तथा सह अस्तित्व की भावना इत्यादि की क्रियाशीलता में भी बाधा हो जाती है। जिससे नई सन्तुलन व्यवस्था को प्राप्त करना अत्याधिक कठिन हो जाता है। इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध अर्थशास्त्री 'इलियट एण्ड गैरिट' के विचार उल्लेखनीय है जिन्होनें कहा था कि "सामाजिक विघटन तब पैदा होता है। जब विभिन्न शक्तियों के सन्तुलन में इस प्रकार के परिवर्तन आये कि पूर्व की बहुत सी प्रत्याशा अब लागू न होती हो तथा सामाजिक नियन्त्रण के विभिन्न उपाय प्रभावी न रहें हो। एक प्रावैगिक समाज में इस प्रकार के

सामाजिक परिवर्तन संस्थात्मक परिवर्तनों एवं व्यवहार की संरचना को तोड़ कर रख देते है परिवर्तनों की तीव्र गति नई संरचना का निर्माण अत्यधिक कठिन कर देती है।''16

'इलियट एण्ड गैरिट' के ये विचार स्पष्ट करते है कि सामाजिक विघटन का मुख्य कारण सामाजिक सन्तुलन का समाप्त होना होता है और इस सामाजिक सन्तुलन का नाश जनसंख्या की तीव्र वृद्धि कर देती है। दूसरे शब्दों में जब जनसंख्या की तीव्र वृद्धि में सामाजिक अन्तर किया तथा सामूहिक सक्रियता की प्रक्रिया को नष्ट कर देती है तो परिणामस्वरूप समाज का विघटन आरम्भ हो जाता है। इस बात का समर्थन अन्य प्रसिद्ध समाजशास्त्री 'आगवर्न एवं निमकॉफ' ने भी किया है – ''जिनके विचार में कि समाज संगठन में होता है जो निश्चित आदतों एवं संस्थाओं से निर्मित होता है जिनके मध्य उच्च श्रेणी का संतुलन होता है। परन्तु यह सन्तुलन अक्सर बड़े सामाजिक परिवर्तनों, जनसंख्या में अत्यधिक वृद्धि आदि के द्वारा टूट जाता है और वास्तव में वहीं से विघटन आरम्भ हो जाता है।''17

वास्तव में सामाजिक विघटन तब होता है जब किसी कारण से मानवीय सम्बन्धों की संरचना अव्यवस्थित हो जायें जिससे समाज के विभिन्न सदस्यों के मध्य फलनात्मक सम्बन्ध समाप्त हो जाये और वह समाज के लक्ष्यों को प्राप्त करने में सफल हो जाये और जनसंख्या में तीव्र वृद्धि ऐसा ही एक कारण है। जनसंख्या में अत्यधिक वृद्धि, मानव भूमि तथा अन्य प्राकृतिक साधनों के मध्य गम्भीर असंन्तुलन उत्पन्न करके एक ऐसी प्रक्रिया शुरु कर देती हैं जिससे प्रतिकूल सामाजिक परिवर्तन होने लगते हैं। सांस्कृतिक एवं नैतिक मूल्य बदलने लगते है। सामाजिक नियन्त्रण टूटने लगता है और सर्वत्र संकट की सी स्थिति व्याप्त हो जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि एक मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया होती है। जिससे व्यक्तिगत एवं सामूहिक क्षमतायें गिरती है। और विघटन आरम्भ हो जाता है। इस विघटन के अन्तर्गत गन्दी प्रतियोगिता, संघर्ष तथा स्तरीकरण बढ़ने लगता है। भारत में बीसवीं शताब्दी के आरम्भिक दो दशक के बाद और विशेषकर स्वतन्त्रता के पश्चात् से जनसंख्या में अत्यधिक तीव्र वृद्धि के कारण

ऐसा ही सामाजिक विघटन चल रहा हैं। प्राकृतिक संसाधनों की मात्रा एवं भू–भाग इन वर्षो के दौरान बढ़ा नहीं बल्कि घटा ही है। जबकि जनसंख्या दो प्रतिशत से भी अधिक की वार्षिक दर से लगातार बढ़ती चली जा रही है। इसके परिणामस्वरुप हमारी पुरानी मान्यतायें टूटी है। सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों का ह्यास हुआ है। अध्यात्मिक विचारों को भी भौतिकतावाद ने जकड़ लिया। संयुक्त परिवार प्रथा टूटी है। व्यक्ति ने अपना महत्व बहुत अधिक बढ़ा लिया है वह स्वयं को समूह के साथ जोड़ने में महानता महसूस नहीं करता, दया, परोपकार, सहयोग, मातृत्व आदि की पुरानी भावनाओं के स्थान पर स्वार्थ अधिक प्रबल हो गया है। जिसके परिणामस्वरुप व्यक्ति के हित आपस में टकराने लगे है। त्याग की भावना का ह्यास हो गया हैं और व्यक्ति विभिन्न जातियों और साम्प्रदायिक समूह में बटकर परस्पर संधर्षरत है। स्वस्थ प्रतियोगिता के स्थान पर गलाकाट प्रतियोगिता आरम्भ हो गई है तथा ऊँच–नीच का स्तरीकरण बहुत बढ़ गया है।

संक्षेप में हमारा सम्पूर्ण समाज एवं पारिवारिक जीवन तहस–नहस हो कर अत्यधिक असन्तुलन की अवस्था में पहुँच चुका है।

जनसंख्या एवं आवास –:

भारत में आवास की समस्या बड़ी जटिल है जो जनसंख्या में लगातार वृद्धि के परिणामस्वरुप और अधिक जटिल होती चली जा रही है। भारतीय गाँवों में लगभग 11 करोड़ परिवार है। पांचवी योजना के प्रारम्भ में लगभग ग्रामीण क्षेत्रों में लगभग 9 करोड़ मकान है। जिनमें 1.8 करोड़ जर्जर सी हालत में थे। उसके बाद कई पंचवर्षीय योजनायें और निकल चुकी है परन्तु निरन्तर बढ़ती जनसंख्या के कारण मकानों की अखरने वाली कमी इतनी अधिक है कि नई शताब्दी में ग्रामीण क्षेत्रों में 3 करोड़ मकानों की आवश्यकता होगी अर्थात् 12 से 15 करोड़ व्यक्ति बिना छत के गुजर बसर कर रहे होगे। जनसंख्या के निरन्तर बढ़ते रहने तथा ग्रामीण क्षेत्रों से शहरों की ओर पलायन करने के कारण शहरों में आवास समस्या जटिल होती चली जा रही है, परिणामस्वरुप शहरों में लाखों की तादाद में उभरने वाली झुग्गी झोपड़ियाँ, बिना प्रकाश

के गन्दे और कच्चे मकान, सीलन और बदबूदार निवास स्थान इन्सान के स्वास्थ्य के लिये खतरा बन गये है। 1991 के लिये नेशनल बिल्डिंग आर्गेनाइजेशन के द्वारा लगाये गये अनुमान के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों में 92.9 मिलियन तथा शहरी क्षेत्रों में 36.7 मिलियन भवन है। ग्रामीण क्षेत्रों में 20.6 मिलियन और शहरी क्षेत्रों में 10.4 मिलियन भवनों की कमी है। 1990 में तो लगभग 48.8 मिलियन व्यक्ति झुग्गी झोपड़ियों में रह रहे थे।

वास्तव में चाहे ग्रामीण क्षेत्र हो या शहरी क्षेत्र 60 से 70 प्रतिशत जनसंख्या निम्न स्तर की आवासीय व्यवस्था में रहती है। ग्रामीण क्षेत्र में तो स्थिति अत्यन्त खराब है। बड़े शहरों में तो धनाढ्य वर्ग द्वारा बनाये जा रहे शानदार भवनों को ही देख कर 70 प्रतिशत जनता की आवासीय समस्या की स्थिति समझ में नहीं आ सकती है। सार्थक शब्दों में ग्रामीण क्षेत्रों की आवासीय समस्या को सुलझाना एक कठिन काम है। इसका मुख्य कारण यह है कि ग्रामीण क्षेत्र की आवासीय समस्या के साथ कई दूसरी समस्यायें भी जुड़ी हुई है जैसे, सफाई की समुचित व्यवस्था का अभाव सामान्य तौर पर स्वास्थ्य सुविधाओं का अभाव तथा सबसे बड़ी बात है जागरुकता का अभाव। इसी वजह से बार–बार संक्रामक रोगों के फैलने की आंत्रशोध बनी रहती है। समुचित जल निकासी की व्यवस्था न होने के कारण मलेरिया, आंत्रशोध का तथा दूसरी कई जानलेवा रोगों का प्रकोप हर वर्ष ही बना रहता है दूसरी ओर टीकों के लगाये जाने की समुचित व्यवस्था समय पर नहीं हो पाती है। ग्रामीण जनता में इसके प्रति रुचि भी कम होती है जिसका प्रमुख कारण निरक्षरता ही है।

जनसंख्या एवं शिक्षा, चिकित्सा एवं स्वास्थ्य समस्या –:

यद्यपि इसमें कोई संदेह नहीं है कि पिछले वर्षो के दौरान विभिन्न योजनाओं के अन्तर्गत शिक्षा, चिकित्सा एवं स्वास्थ्य के क्षेत्र में देश में महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ प्राप्त की गई है। उदाहरण के लिये साक्षरता उपलब्धियाँ जो 1951 में 18. 33 प्रतिशत थी वही 2001 में 65.38 प्रतिशत हुई, जीवन प्रत्याशा जो 1950–51 में 32.

1 वर्ष थी 2001 में 62.30 वर्ष हो गई तथा प्रति 10 हजार जनसंख्या पर पंजीकृत चिकित्सकों की संख्या 1950–51 में 1.7 थी वहीं बढ़कर 4.7 हो गई परन्तु इसी दौरान देश में होने वाली जनसंख्या वृद्धि को देखते हुये से उपलब्धियाँ (प्रति व्यक्ति आधार) पर न के बराबर हैं बल्कि कुछ क्षेत्रों में तो स्थिति उल्टी बिगड़ी ही है।

शिक्षा के क्षेत्र में यदि देखा जायें तो जनसंख्या के क्षेत्र में होने वाली वृद्धि और इसके परिणामस्वरुप छात्रों की संख्या में होने वाली वृद्धि की तुलना में शिक्षक एवं स्कूलरुपी सुविधाओं में वृद्धि बहुत कम हुई है तथा प्रति छात्र यह सुविधायें घटी ही हैं, उदाहरण के लिये प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में जहाँ 1951 में 192 लाख छात्रों के लिये 5.38 लाख शिक्षक तथा 2 लाख विद्यालय थें वहीं यह आँकड़े क्रमशः 991 लाख 1637 लाख तथा 5.5 लाख हो गये अर्थात् छात्रों की संख्या में लगभग 416 प्रतिशत की वृद्धि हुई वहीं शिक्षकों की संख्या में केवल 204 प्रतिशत एवं विद्यालयों की संख्या में 175 प्रतिशत की वृद्धि हुई। इसी प्रकार माध्यमिक शिक्षा में इस अवधि के दौरान छात्रों की संख्या 1300 की, शिक्षकों की संख्या में 902 प्रतिशत की तथा विद्यालयों की संख्या में 1000 प्रतिशत की ही वृद्धि हुई।

आतंकवाद, साम्प्रदायिकता एवं हिंसा –:

वर्तमान समय में देश में तेजी से बढ़ते आतंकवाद साम्प्रदायिक संघर्ष, धार्मिक झगड़े एवं हिंसा, चोरी, डकैती, लूटपाट, इत्यादि की जानकारी सभी को है और यदि इसका कारण ढूढ़ा जाय तो पुनः इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि यह सब देश में उपलब्ध संसाधनों की तुलना में बहुत अधिक जनाधिक्य के कारण ही है। अत्यधिक विशाल जनसंख्या ने जब मनुष्य को आसानी एवं ईमानदारी से पर्याप्त भोजन नहीं मिलता, उचित रोजगार नहीं मिलता समाज में प्रतिष्ठा नहीं मिलती है तो वह विवश होकर गलत रास्तों में भटकता है और अपने स्वार्थ में अंधा होकर हिंसा का रास्ता अपना लेता है। विभिन्न समाजशास्त्री इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि देश में रोजगार नहीं मिल सका, समाज में प्रतिष्ठा नहीं मिल सकी। यदि जनसंख्या संसाधनों की तुलना में इतनी

अधिक न बढ़ी होती तो न खाद्य समस्या होती, न बेरोजगारी की, न आवास की ओर न ही शिक्षा, चिकित्सा और स्वास्थ्य की, और तब शायद हमारे देश में सामाजिक सौहार्द एवं शान्ति बनी रहती। बल्कि विकास की गति भी और अधिक तीव्र रही होती।

REFERENCES

1. Adam smith : Wealth of Nation P. 106

2. Coale A.J. and Hoover E.M. : Population growth and economic Develop ment in low income countries. Pinceton University Press, P.11

3. Kaynes J. M. : General Theory of employment Interest and money p. 61

4. I bid P. 89

5. Coale A.J. and Hoover E.M. : Population growth and economic Develop ment in low income countries. Pinceton University Press, P.26

6. Galbraith J.K. : Economic Development 1964. P. 12

7. Simon Kuznets : Economic growth and structure, 1962, P. 123

8. Meir Baldwin : Economic Development .P. 311

9. Ibid .P. 315

10. Golbraith J.K. : Economic Development 1964, P. 54

11. The United Nations Mutilingual Demograhic Dictionary.

12. Gadgil D.R. : Industrial Evoluation of India, P.148

13. Pt. Nehru Quoted by Saxeria S.C. : Labour problems and Social Security.

14. मानव संसाधन विकास मंत्रालय तथा इकोनोमिक सर्व –1992–93

15. व्यास हरिशचन्द्र और व्यास कैलाश चन्द्र : जनसंख्या विस्फोट एवं पर्यावरण।

16. Elliott and Merrill : Social Disorganization P. 542

17. Ogburn and Nimkoff : A Hand book of Socialogy .P.210

अध्याय - पंचम

जनसंख्या नीति अर्थ एवं आवश्यकता

जनसंख्या नीति से आशय उस सरकारी मान्यता से है जिसके अनुसार वह जनसंख्या वृद्धि अथवा जनसंख्या निरोध को प्रोत्साहित करती है। अतः जिसके द्वारा देश में जनसंख्या के आकार, प्रकार एवं वितरण को पूर्व निर्धारित उद्देश्यों के अनुरुप नियोजित, नियमित एवं नियंन्त्रित किया जाता है, उसे जनसंख्या नीति कहते है। प्रो0 एम0 चन्द्रशेखर के मतानुसार, "जनसंख्या नीति सरकार द्वारा देश की जनसंख्या के आकार तथा संगठन में किसी सरकारी नियम या निर्देश द्वारा परिवर्तन लाने के लिये किया गया प्रयास है।" "आल्वा मिर्डल" ने लिखा है कि "जनसंख्या नीति किसी भी प्रकार सामाजिक नीति से कम नहीं है, यदि व्यवहारिक समाजशास्त्र प्रहरी की भूमिका अदा न करे तो जनसंख्या नीति अविवेकपूर्ण रुप से संकीर्ण हो जायेगी तथा वह निदानों का उपहास होगा। एक जनसंख्या कार्यक्रम अनिवार्यतः सामाजिक जीवन के ताने–बाने से बुना होना चाहिये तथा सामाजिक परिवर्तनों से इसमें परिवर्तन आने चाहियें। जनसंख्या संकट के विवेकपूर्ण समाधान के लिये हमें समस्त सामाजिक उद्देश्यों व कार्यक्रमों पर निर्भर होना पड़ेगा।"1

Ehende & Kanitkar: "Population policy includes the measures and programme designed to contribute to the achievement of economic social, demographic political and other collective goals, through affecting critical demographic variables namely, the size and growth of population, its geographic distribution and its demographic characterstics."2

जनसंख्या नीति यू0 एन0 ओ0 द्वारा इस प्रकार की गई है।

Popualtion policy means "Measures and programmes designed to contribute to the achivement of economic, social demographic, political and other callective goals, through affecting critical demographic variables, namely the size and growth of population, its geographic distribution (national and internetional) and its demographic characteristics."3

इस प्रकार राष्ट्रीय जनसंख्या नीति के उद्देश्यों में राज्य की उन समस्त नीतियों को शामिल किया जाता है, जिनके अन्तर्गत वो जनसंख्या की समस्त मात्रा एवं प्रकार अथवा भौगोलिक वितरण में परिवर्तन लाता है।

विस्तृत अर्थो में जनसंख्या नीति सम्पूर्ण समाज नीति ही होती है अगर हम समाज नीति के व्यावहारिक पहलुओं पर ध्यान नहीं देगे तो जनसंख्या नीति का क्षेत्र अनावश्यक रुप से संकुचित हो जायेगा। जनसंख्या कार्यक्रमों को स्वयं सामाजिक जीवन के समूचे ढाँचे के अनुरुप होना चाहिये, उसका अन्य सामाजिक नीतियों पर प्रभाव डालना चाहिये और अन्य नीतियों से प्रभावित होना चाहिये।

डा0 तेराब के अनुसार "जनसंख्या की समस्या के हल हेतु जो उपाय किये जाते है, उन्हें ही जनसंख्या नीति के अन्तर्गत लिया जा सकता है। इस नीति में मुख्यतः जनसंख्या वृद्धि अथवा निरोध दोनों का ही समावेश होता है।"4

श्री पी0 सी0 जैन के अनुसार "जनसंख्या नीति केन्द्र अथवा राज्य सरकार द्वारा विचारपूर्वक बनाई गयी नीति होती है, जिसका प्रमुख उद्देश्य प्रजनन दर को घटाकर जनसंख्या वृद्धि की दर को घटाना है।"5

संक्षेप में जनसंख्या नीति, जनसंख्या की जन्मदर और मृत्युदर को कम करके जनसंख्या के जीवन स्तर को सुधारने की नीति है। इस प्रकार उक्त परिभाषाओं के अनुसार समस्त आर्थिक नीतियां ही जनसंख्या नीति के अन्तर्गत आ जाती है। विदेशी आयात निर्यात नीति से भी जीवन स्तर ऊँचा होता है विनियोजन वृद्धि में जनसंख्या को अधिक रोजगार प्राप्त होता है। इसी प्रकार परिवहन सम्बन्धी सुविधाओं के विकास एवं विस्तार से जनसंख्या लाभान्वित होती है, लेकिन इन क्रियाओं का समावेश हम जनसंख्या नीति के अन्तर्गत नहीं कर सकते है, क्योंकि ऐसा करने पर सम्पूर्ण अर्थशास्त्र ही जनसंख्या शास्त्र बन जायेगा और ऐसा करना उचित नहीं होगा। अतः हमको जनसंख्या नीति का सीमित अध्ययन ही करना होगा। डा0 तेराब के अनुसार जनसंख्या की समस्या के निवारण हेतु उठाये गये कदमों को ही जनसंख्या नीति के अन्तर्गत लिया

जा सकता है। नीति में मुख्यता वृद्धि करना या सीमित करना ही आता है अतः जनसंख्या नीति के निम्न उद्देश्य हो सकते है।

1. जन्मदर पर नियन्त्रण प्राप्त करना।
2. मृत्युदर में कभी लाना।
3. जनसंख्या वृद्धि का नियोजन करना।
4. जनसंख्या के भौगोलिक वितरण में संतुलन स्थापित करना।
5. जनसंख्या संरचना में सुधार करना।
6. जनसंख्या का शीघ्र अर्थिक विकास करना।

जनसंख्या नीति को निश्चित करते समय कुछ बातें लक्ष्य में ली जाती है जो इस प्रकार है –

1. जनसंख्या की राष्ट्रीय आय
2. जनसंख्या और खाद्यपूर्ति
3. जनसंख्या और शिक्षा
4. जनसंख्या और स्वास्थ्य
5. जनसंख्या और अनुत्पादक उपभोक्ताओं का भार
6. स्त्री का समाज में स्थान
7. जनसंख्या एवं बेरोजगारी
8. जनसंख्या और आवास का भार
9. जनसंख्या और सामाजिक परम्परायें
10. जनसंख्या वृद्धि और पूँजी का निर्माण
11. जनसंख्या और परिवार नियोतन

उपर्युक्त सभी तथ्यों को ध्यान में रखकर एक उपर्युक्त नीति तैयार की जाती है, जिससे जनवृद्धि को रोका जा सके जनवृद्धि को नियन्त्रित करने में ही व्यक्ति, समाज व राष्ट्र का हित है अन्यथा हमारी सभी राष्ट्रीय योजनायें आर्थिक, सामाजिक,

राजनीतिक क्षेत्र में रेत पर लिखी हुई वह कथायें होगी जिन्हें जनवृद्धि की बाढ़ बहाकर ले जायेगी।

वास्तव में किसी भी देश में जनसंख्या नीति बनाने एवं उसे क्रियान्वित करने के लिये मुख्य रुप से तब आवश्यकता होती है जब या तो जनसंख्या का आकार बहुत ही सूक्ष्म हो या बहुत अधिक व्यापक चूँकि वर्तमान समय में अधिकांश विश्व में समस्या जनसंख्या के आधिक्य की है अतः स्वाभिवक रुप से जनसंख्या नीति का सम्बन्ध जनसंख्या के आकार को नियन्त्रित करने के लिये लिया जाता है। चूँकि वर्तमान समय में विश्व के अधिकांश भागों में जनसंख्या वृद्धि तथा उपलब्ध संसाधानों के मध्य असंतुलन पैदा हो गया है और यह स्पष्ट हो गया है कि बढ़ती जनसंख्या के नियंत्रण के अभाव में स्थिर संसाधनों के अंधाधुंध उपयोग से लोगों के जीवन स्तर तथा सुख सुविधा पर निश्चित तौर पर अंकुश लग जायेगा। अतः आज प्रभावी जनसंख्या नीति की अत्यधिक आवश्यकता है। यद्यपि विभिन्न देशों की जनसंख्या सम्बन्धी समस्यायें भिन्न–भिन्न है अतः तदनुसार भिन्न–भिन्न नीतियों का अपनाया जाना स्वाभाविक है चूँकि विश्व के अधिकांश अल्पविकसित देश जनसंख्या विस्फोट के दौर से गुजर रहे हैं अतः इनकी सरकारों द्वारा जनसंख्या को नियन्त्रित करने के लिये लगभग एक ही से उपाय अपनायें जाते है। चीन, भारत, इण्डोनेशिया, पाकिस्तान, सिंगापुर, मिश्र आदि देशों में तो इस परिवार नियोजन कार्यक्रम को एक सामाजिक नीति बना लिया गया है तथा जनवृद्धि दर को एक प्रतिशत ले जाने तक का लक्ष्य बनाया गया है।

स्वतन्त्रता से पूर्व जनसंख्या नीति –:

ब्रिटिश काल में शासन जनसंख्या के सम्बन्ध में कोई नीति बनाने में रुचि नहीं रखता था। वे जनसंख्या वृद्धि पर नियन्त्रण लगाने के विरुद्ध थे, किन्तु बुद्धिजीवी इसकी माँग कर रहे थे। सन् 1916 में प्यारे कृष्ण बत्तल ने अपनी पुस्तक The population problem of India प्रकाशित की और उसमें परिवार नियोजन की दलील दी। सन् 1925 में आर० डी० कर्वे, जो गणित के प्रोफेसर थे, ने एक बर्थ कन्ट्रोल

क्लीनिक खोला। उसी वर्ष रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने लिखा था –''परिवार नियोजन स्त्रियों को अनावश्यक मातृत्व से बचाता है तथा भुखमरी से बचाता है। भारत जैसे भूख ग्रस्त देश में और बच्चे पैदा करना न केवल इन बेकसूर बच्चों की मौत बुलाना है वरन् सम्पूर्ण परिवार व देश को निकृष्ट जीवन में डालना है। इस अन्याय को नहीं होने देना चाहिये।''6

11 जून 1930 में मैसूर सरकार ने विश्व का प्रथम सरकारी बर्थ कन्ट्रोल क्लीनिक खोला। इसी वर्ष मद्रास सरकार ने गर्भ नियन्त्रण के सम्बन्ध में शिक्षा देने का कार्य सम्भाला। अगले वर्ष मद्रास सरकार ने भी वर्थ कन्ट्रोल क्लीनिक खोला। सन् 1932 में अखिल भारतीय सम्मेलन ने लखनऊ में यह संस्तुति की कि इन क्लीनिकों से महिलाओं को जन्म–नियन्त्रण की सुविधायें दी जानी चाहिये।

सन् 1935 में नेहरु की अध्यक्षता में राष्ट्रीय नियोजन समिति का गठन किया गया। यह कमेटी भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने गठित की थी। इस कमेटी की महत्वपूर्ण सिफारिशें निम्न है –

1. भारत की जनसंख्या का आकार उनके जीवन–स्तर पर बुरा प्रभाव डाल रहा है।
2. परिवार कल्याण के लिये परिवार नियोजन, राज्य की नीति का अभिन्न अंग होना चाहिये।
3. विवाह की आयु में वृद्धि एवं बहुपत्नी प्रथा की समाप्ति से परिवार के आकार को सीमित करने में मदद मिलेगी।
4. जो लोग संक्रामक बीमारियों से ग्रस्त है, उनकी नसबंदी की जानी आवश्यक है।
5. जीवन समंक एवं जनांकिकी सर्वेक्षण द्वारा बार–बार सर्वे कर जनसंख्या समंकों के गुण में सुधार किया जाना आवश्यक है।

सन् 1935 में श्रीमती कोबास जी जहाँगीर की अध्यक्षता में परिवार स्वास्थ्य उत्थान अध्ययन समिति गठित की गयी। डा0 ए0 पी0 पिल्ले ने परिवार नियोजन की दलील दी। 1939 में उ0 प्र0 में एवं म0 प्र0 में जन्म नियन्त्रण क्लीनिक

खोले गये। सन् 1940 में पी0 एन0 सप्रू ने इस प्रकार के क्लीनिक खोलने के लिये Council of states में प्रस्ताव पास करा लिया था। सन् 1940 में परिवार स्वास्थ्य उत्थान अध्ययन समिति के स्थान पर परिवार नियोजन समिति नाम दिया गया। सन् 1943 में अकाल आयोग ने परिवार को अनुचित ठहराया। सन् 1945 में जोजेफ भोर की अध्यक्षता में जो स्वास्थ्य सर्वेक्षण एवं विकास समिति नियुक्त की गयी थी उसने जन्म–नियंत्रण सेवाओं के विकास की संस्तुति की। गांधी जी जन्म नियंत्रण के तो पक्षपाती थे किन्तु कृत्रिम विधियों के स्थान पर ब्रम्हचर्य को उचित ठहराते थे। उन्होनें लिखा कि 'वर्तमान में गुलामों की संख्या में वृद्धि पर रोक लगा देना हमारा परम् कर्त्तव्य है।''7

गुन्नार मिर्डल के शब्दों में ''संक्षेप में ब्रिटिश शासन काल की समाप्ति आने तक बुद्धिजीवियों ने ऐसा वातावरण तैयार कर दिया था कि स्वतन्त्र भारत की सरकार को एक प्रभावी जनसंख्या नीति अपनानी आवश्यक हो जायेगी।''8

स्वातंत्रयोत्तर काल में जनसंख्या नीति –:

स्वतन्त्रता के उपरान्त हमारे देश में पंचवर्षीय योजनायें लागू की गयी और जनसंख्या नीति का भी मूल्यांकन योजना के साथ–साथ होता रहा।

प्रथम पंचवर्षीय योजना काल में जनसंख्या नीति –:

प्रथम पंचवर्षीय योजना काल में योजना आयोग ने जनसंख्या के भारत के आर्थिक विकास पर पड़ने वाले प्रभावों के सम्बन्ध में मिश्रित प्रतिक्रिया व्यक्त की थी। उसका विचार था कि जनसंख्या वृद्धि का प्रति व्यक्ति आय से प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं होता है। वरन् यह बढ़ती जनसंख्या समस्त उत्पादन एवं उपभोग व्यवस्था को प्रभावित करती है।''9

किन्तु आयोग यह महसूस करने लगा था कि वर्तमान परिस्थितियों में तीव्र दर से बढ़ती जनसंख्या जीवन–स्तर के सुधार में बाधक है। आयोग ने बड़े स्पष्ट शब्दों में लिखा था –

"A rapidly growing population is act to become more a source of embarrassment than a help to a programme of raising standard of living."10

अतः जनसंख्या नीति का प्रमुख लक्ष्य जन्म–दर में कटौती था। परिवार के आकार को सीमित करने के लिये जनता से अपील की गयी तथा इसे स्वास्थ्य कार्यक्रम का अंग बना लिया गया।

प्रथम पंचवर्षीय योजना में जनसंख्या नियंत्रण के अन्तर्गत निम्न कार्यक्रम शामिल किये गये –

1. परिवार नियोजन की विभिन्न विधियों के सम्बन्ध में अनुभव सिद्ध तथ्यों को एकत्रित करना, उनकी उपयुक्तता, प्रभावपूर्ण एवं लोकप्रियता का पता लगाना।
2. परिवार नियोजन विधियों से जनता को कैसे शिक्षित किया जाये इस सम्बन्ध में विभिन्न विधियों की जाँच–पड़ताल करना।
3. जनता के विभिन्न वर्गो में प्रतिनिधियों से प्रजनन प्रवृत्ति, परिवार के आकार व दृष्टिकोण आदि के सम्बन्ध में सूचनायें एकत्र करना।
4. आर्थिक, सामाजिक एवं जनसंख्या परिवर्तनों का परस्पर प्रभाव।
5. मानवीय प्रजननता के मनोवैज्ञानिक एवं मेडिकल पहलुओं पर अनुसंधान।

प्रथम पंचवर्षीय योजना काल में जनसंख्या नीति केवल तथ्यों के संकलन एवं वास्तविक समस्या के पहचान तक ही सीमित थी अतः इस योजना काल में समंक एकत्रीकरण की ओर विशेष ध्यान दिया गया। किन्तु जनसंख्या सम्बन्धी कोई ठोस नीति नहीं बनायी जा सकी।

प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत 147 परिवार नियोजन केन्द्रो की स्थापना की गई, जिनमें से 126 नगरीय क्षेत्रों में तथा 21 ग्रामीण क्षेत्रों में थे। इस योजना में 65 लाख रुपये व्यय करने का प्रावधान था, किन्तु केवल 14.51 लाख रुपये व्यय किये गये।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के दौरान जनसंख्या नीति –:

द्वितीय योजना में यह मत व्यक्त किया गया कि जनता के दृष्टिकोण में इतनी तीव्रता से परिवर्तन आ रहा है कि एक अवधि के लिये कोई स्थायी नीति नहीं बनायी जा सकती है।"11 जनसंख्या नीति के दीर्घकालीन दृष्टीकोण को छोड़कर सामने मुँह बाये खड़ी जनसंख्या के आकार की समस्या पर ध्यान केन्द्रित कर दिया गया।

प्रथम पंचवर्षीय योजनाकाल में परिवार नियोजन के महत्व को स्वीकार किया गया। किन्तु राष्ट्रीय स्तर पर एक कार्यक्रम निर्धारण की बात द्वितीय योजना से ही प्रारम्भ हुई। द्वितीय योजना काल में राष्ट्रीय कार्यक्रम में चार मुख्य बातें रखी गयी–

1. शिक्षा का प्रसार किया जायें ताकि निरोधक उपायों को स्वीकार किये जाने के लिये उपर्युक्त वातावरण तैयार हो।
2. ग्रामीण एवं शहरी केन्द्रों में यह सुविधा पहुँचाई जाये तथा नसबन्दों की भी सुविधा प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रो में उपलब्ध हो।
3. सम्बन्धित व्यक्तियों के प्रशिक्षण की व्यापक व्यवस्था हो।
4. इस दिशा में अनुसंधान किये जाये।

बड़े पैमाने पर पोस्टर, पुस्तिकायें, फिल्में आदि प्रस्तुत की जाने लगी। स्वयंसेवी व्यक्तियों को आन्दोलन में लाया गया एवं उदार सहायता दी जाने लगी। परिणामस्वरूप भारत तथा विदेशों के अनेक व्यक्ति यह आशा करने लगे कि भारत में जन्मदर बड़ी तेजी से गिरेगी क्योंकि –:

1. सरकार द्वारा लागू किये गये परिवार नियोजन कार्यक्रम को शिक्षित समाज का समर्थन मिला।
2. लड़कियों की विवाह की न्यूनतम आयु 15 वर्ष कर दी गई।
3. शिक्षा एवं साक्षरता में तीव्र वृद्धि हुई।
4. रेडियो–ट्राजिस्टरों का प्रयोग बहुत बढ़ गया। अतः राष्ट्रीय कार्यक्रमों को रेडियो

के माध्यम से गाँव–गाँव तक पहुँचाना सम्भव हो गया था।

5. केन्द्रों की स्थापना से जनता को यह बताना सम्भव हो गया था कि परिवार नियोजन सरल है, सम्भव है, व हितकर है।
6. अनेक सर्वेक्षणों ने यह बताया कि स्त्रियाँ परिवार नियोजन के उपकरणें के विषय में जानने की इच्छुक हैं।
7. परिवार नियोजन के विरोध में संगठित–धार्मिक समाज नहीं था।

तृतीय पंचवर्षीय योजना के दौरान जनसंख्या नीति –:

1961 की जनगणना से पता चला कि जन्म–दर नहीं घट पायी तथा जनसंख्या वृद्धि अनुमान से बहुत अधिक हुई। अतः तृतीय पंचवर्षीय योजना काल में शासन ने जनसंख्या नीति की घोषणा पर ध्यान नहीं दिया बल्कि पूरी शक्ति जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण एवं परिवार नियोजन पर लगा दी। परिवार नियोजन के महत्व को स्पष्ट करते हुये कहा गया है कि परिवार नियोजन केवल विकास कार्यक्रम के रूप में ही नहीं अपनाना हैं वरन् एक राष्ट्रव्यापी आन्दोलन के रुप में अपनाना चाहिये जिससे व्यक्ति, परिवार एवं समाज के जीवन में सुधार लाया जा सके।

तृतीय योजना में बढ़ती जनसंख्या पर चिन्ता व्यक्त की गयी तथा परिवार नियोजन को एक राष्ट्रीय तथा व्यापक कार्यक्रम के रुप में चलाने की बात कही गयी –

"दीर्घकाल तक जन–वृद्धि को स्थिर रखना नियोजित विकास का केन्द्र होना चाहिये। परिवार नियोजन के ऐसे कार्यक्रम को सर्वाधिक महत्व दिया जाना चाहिये, जिसमें शिक्षा को गम्भीरता से लिया जाये, परिवार नियोजन के उपकरणों को उपलब्ध कराया जाये तथा ग्रामीण एवं शहरी समाज में इस कार्यक्रम को लोकप्रिय बनाया जाये।"12 परिवार नियोजन के महत्व को स्पष्ट करते हुये लिखा गया है – "परिवार नियोजन को केवल विकास कार्यक्रम के रुप में ही नहीं अपनाना है वरन् एक राष्ट्रव्यापी आन्दोलन के रुप में अपनाना है जिससे व्यक्ति, परिवार एवं समाज के जीवन में सुधार लाया जा सके।"13

अतः तृतीय पंचवर्षीय योजनाकाल में जनसंख्या नीति को अत्यन्त सीमित कर दिया गया। केवल जनसंख्या नियन्त्रण ही इसका केन्द्र बन गया। तृतीय योजनाकाल में परिवार नियोजन कार्यक्रम में 'प्रसार नीति' अपनायी गयी तथा परिवार नियोजन केन्द्रों को व्यावहारिक स्थलों पर ले जाने का निर्णय लिया गया। लूप, आई0 यू0 डी0 का प्रचार बढ़ने लगा।

तृतीय योजना काल में निम्न बातों को प्राथमिकता प्रदान की गई –

1. शिक्षा के प्रसार द्वारा परिवार कल्याण कार्यक्रम के लिये अनुकूल सामाजिक वातावरण तैयार करना।
2. गर्भ नियन्त्रण के साधनों का वितरण करना और लोगों को उनके उपयोग की विधि से अवगत कराना।
3. जन स्वास्थ्य सम्बन्धी सामान्य सेवाओं के साथ–साथ परिवार कल्याण की सुविधाओं को सुलभ कराना और उसके कार्यक्रमों को क्रियान्वित करना।
4. स्त्री शिक्षा का प्रसार करना जिससे विलम्बित विवाह को प्रोत्साहन मिले।
5. परिवार कल्याण कार्यक्रमों से सम्बन्धित सामग्री के उत्पादन में वृद्धि करना।
6. चिकित्सा विद्यालयों तथा अन्य शिक्षण संस्थाओं में परिवार कल्याण कार्यक्रमों के क्रियान्वयन के सम्बध में प्रशिक्षण की सुविधायें प्रदान करना।
7. परिवार कल्याण कार्यक्रमों के लिये स्थानीय नेताओं तथा अन्य समाज सेवी संस्थाओं का सहयोग प्राप्त करना।

तीन वार्षिक योजनाओं के दौरान जनसंख्या नीति 1966 से 1969 के दौरान तीन वार्षिक योजनाओं में जनसंख्या नीति के अन्तर्गत परिवार नियोजन कार्यक्रम को लक्ष्योन्मुख बना दिया गया तथा इसके लिये अधिक वित्त व्यवस्था भी की गई। यद्यपि 1966 में ही स्वास्थ्य एवं परिवार नियोजन विकास मंत्रालय के अन्तर्गत एक परिवार नियोजन विभाग की भी स्थापना कर दी गई थी, किन्तु फिर भी परिणाम सन्तोष–जनक नहीं रहे।

चौथी पंचवर्षीय योजना के दौरान जनसंख्या नीति –:

इस योजना में परिवार कल्याण कार्यक्रमों को सर्वाधिक प्राथमिकता दी गई और इस बात पर विशेष जोर दिया गया कि पूर्ण प्रयत्न करके निर्धारित लक्ष्य को प्राप्त किया जाय। परिवार–कल्याण कार्यक्रमों को अधिक महत्वपूर्ण बनाने के लिये इसके साथ मातृत्व व बाल–स्वास्थ्य कार्यक्रमों को भी सम्मिलित किया गया। इस योजना के लिये 330 करोड़ रुपये व्यय लिये जाने की व्यवस्था की गई। इस योजना के जन्मदर को 39 प्रति हजार से घटाकर 10–12 सालों में 25 प्रति हजार तक लाने का लक्ष्य निर्धारित किया गया। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये ग्रहस्थों को सभी प्रकार की सुविधायें देने के लिये ठोस योजना बनायी गयी। इस बात पर जोर दिया गया कि छोटे परिवार के सिद्धान्त को सामूहिक रुप से अपनाया जाये, परिवार नियोजन की विधियों को व्यक्तिगत तौर पर जाना जाये तथा परिवार नियोजन के उपायों एवं सुविधाओं को उपलब्ध कराया जाये। वास्तव में चौथी योजना के दौरान सरकार का मौलिक दृष्टिकोण नहीं बदला तथा क्लीनिकल नीति एवं सेवाओं के विस्तार की नीति को जारी रखा गया।

पांचवी पंचवर्षीय योजना के दौरान जनसंख्या नीति –:

जनसंख्या नीति के सम्बन्ध में सरकार के दृष्टिकोण में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आये। सबसे पहले सरकार ने यह निश्चय किया के परिवार नियोजन के कार्यक्रम को स्वास्थ्य मातृत्व एवं बाल स्वास्थ्य कार्यक्रम के साथ एकीकृत रुप में चलाया जाये। इस सम्बन्ध में यह निर्णय लिया गया कि लम्बत् कार्यक्रम के कार्यकलापों को बहुउद्देशीय कार्यकर्ताओं में परिवर्तित कर दिया जाये जो परिवार नियोजन के कार्यो पर विशेष ध्यान दें। तत्पश्चात् पांचवी योजना में परिवार नियोजन कार्यक्रम के लिये 497.36 करोड़ रुपये का प्रावधान रखा गया। इसी दौरान सन् 1976 'में राष्ट्रीय जनसंख्या नीति' की भी घोषणा की गई।

भारत की जनसंख्या नीति 'परिवार नियोजन कार्यक्रम' के साथ जुड़ी हुई है। 26 अप्रैल 1976 को तत्कालीन स्वास्थ्य एवं परिवार नियोजन मंत्री डा0 कर्णसिंह ने भारत की नई जनसंख्या नीति की घोषणा की। इस नीति को उन्होंने देश की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक समस्या के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया तथा देश में परिवार नियोजन के कार्यक्रम को और अधिक क्रियाशील बनाने के लिये प्रोत्साहित किया। नीति में देश के विकास के संदर्भ में जनसंख्या की गम्भीर समस्या को दृष्टिगत करते हुये कहा।

"विश्व में 15 प्रतिशत जनसंख्या भारत में निवास करती है जहाँ विश्व का मात्र 2.4 प्रतिशत भू–भाग है तथा जनसंख्या एक मिलियन प्रतिमाह की दर से बढ़ रही है। स्वतन्त्रता के बाद भारत में 250 मिलियन जनसंख्या की वृद्धि हो गयी है जो समस्त रुस की जनसंख्या के बराबर है जब कि रुस का क्षेत्रफल भारत से 6 गुना अधिक है। भारत में प्रतिवर्ष जनसंख्या की वृद्धि आस्ट्रेलिया महाद्वीप की जनसंख्या के बराबर है, जबकि आस्ट्रेलिया का क्षेत्रफल भारत से 2.5 गुना अधिक है। अगर जनसंख्या वृद्धि की दर यही रही तो इस शताब्दी के अन्त तक जनसंख्या 100 करोड़ हो जायेगी। हम 'जनसंख्या विस्फोट' की स्थिति का अनुभव कर रहे है। तथा जनसंख्या की इस तीव्र वृद्धि के कारण जो हमने पिछले दो दशकों में आर्थिक क्षेत्र में प्रगति की है, उसका उचित फल नहीं प्राप्त हो सका है। हमकों गरीबी मिटानी है इसलिये जनसंख्या की समस्या को देश की प्रमुख एवं अहंम् समस्या मानकर उसका निराकरण समस्या का समाधान है।"[14]

हमारी वास्तविक शत्रु गरीबी है। इसलिये पांचवी पंचवर्षीय योजना में 'न्यूनतम आवश्यक कार्यक्रम' को सम्मिलित किया गया। 15 अप्रैल 1976 में 'नवीन जनसंख्या नीति' में निम्न कार्यक्रम प्रस्तुत किया गया।

1. लड़की की विवाह की आयु 18 वर्ष तथा लड़कों की आयु 21 वर्ष निर्धारित की गई।

2. राज्यों में समस्त योजना में खर्च की निर्धारित धनराशि में से 8 प्रतिशत धनराशि परिवार नियोजन कार्यक्रम के लिये निर्धारित की गयी।
3. राज्यों में शिक्षा का स्तर ऊँचा उठाने के लिये आवश्यक कार्यक्रम निर्धारित किया गया। जिसमें प्राथमिक स्थान स्त्रियों के शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाना तथा विशेषकर मध्यम वर्ग की स्त्रियों को शिक्षित करना प्रमुख था।
4. परिवार में बच्चों की संख्या के आधार पर परिवार नियोजन अपनाने वालों की आर्थिक सहायता का निर्धारण।
5. राज्यों में सरकारी व अर्द्धसरकारी कर्मचारियों के लिये आवश्यक आपरेशन की व्यवस्था।
6. जिन व्यक्तियों ने परिवार नियोजन अपनाया है उनके परिवार के लिये रोजगार के अवसर प्रदान करने की प्राथमिकता, छात्रवृति प्रदान करने की व्यवस्था आदि। दो बच्चों के बाद परिवार नियोजन अपनाने वालों को 150 रुपये, 3 बच्चों के बाद 100 रुपये, 4 बच्चों वालों को 50 रुपये की क्षतिपूर्ति की व्यवस्था।
7. परिवार नियोजन कार्यक्रम के लिसे बहुप्रकार की व्यवस्था।
8. अप्रैल 1972 में भ्रूण निवारण को कानूनी मान्यता प्रदान करना आदि।

परिवार नियोजन की नई दिशा - परिवार कल्याण –:

सन् 1977 में कांग्रेस सरकार की समाप्ति के बाद नयी 'जनता सरकार' ने परिवार नियोजन में अनिवार्यता के पुट को समाप्त कर दिया। सरकार ने 30 जून 1978 की राष्ट्रीय जनसंख्या नीति को संशोधित किया और परिवार कल्याण सम्बन्धी एक विस्तृत नीति की घोषणा की। नीति की प्रमुख विशेषतायें निम्नलिखित थी –

1. परिवार कल्याण कार्यक्रम में माता व शिशु के स्वास्थ्य पर विशेष ध्यान दिया जाये।
2. परिवार कल्याण कार्यक्रम को अन्य कार्यक्रमों जैसे– भोजन, पोषण, वस्त्र, आवास, पेयजल, नारी शिक्षा आदि के साथ सम्बन्धित किया जाये।

3. परिवार कल्याण के क्षेत्र में जोर जबरदस्ती पर रोक लगा दी जायें।
4. पुरुषों को परिवार नियोजन की किसी भी विधि को अपनाने के लिये स्वतन्त्रता प्रदान की जाये।
5. परिवार कल्याण विधियों एवं सेवाओं को निः शुल्क उपलब्ध कराया जाये।
6. गर्भवती महिलाओं को स्वास्थ्य सम्बन्धी सभी सुविधायें उपलब्ध कराई जाये।
7. परिवार कल्याण कार्यक्रम को लोकप्रिय बनाने के लिये जन सम्पर्क के सारे साधनों का उपयोग केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों के सहयोग से किया जाये।
8. परिवार कल्याण कार्यक्रम को लोकप्रिय बनाने के लिये स्वैच्छिक संस्थाओं का सहयोग लिया जाये।
9. प्रशिक्षण कार्यक्रमों का विस्तार किया जाये।

छठवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान जनसंख्या नीति –:

देश में आपातकाल के दौरान प्राप्त किये गये अनुभवों से यह ज्ञात हो गया था कि परिवार नियोजन कार्यक्रम विकास का स्थानापन्न नहीं हो सकता तथा बगैर गरीबों की आर्थिक दशाओं के बदले लोगों को हृदय परिवर्तन के लिये शिक्षा दिये बगैर यदि परिवार नियोजन कार्यक्रम को गति प्रदान करने का कोई प्रयत्न किया भी जाता है तो उसकी सफलताओं की सम्भावनायें बहुत कम होगी। छठी योजना में योजना आयोग ने यह स्वीकार किया कि परिवार नियोजन कार्यक्रम में उन लोगों के आत्मविश्वास को नहीं बढ़ाया है जो इसे एक सामान्य सरकारी क्रिया समझते है। अतः परिवार नियोजन कार्यक्रम को जनता की योजना के रुप में चलाने की आवश्यकता महसूस की गयी। छठीं योजना में ''बर्किंग ग्रुप ऑन पापुलेशन पॉलिसी' के सुझावों के आधार पर दीर्घकालीन जनांकिकीय लक्ष्य यह निर्धारित किया गया कि 1996 तक प्रजननता की नेट दर 1.67 से गिरकर 1.00 पूरे देश में तथा सन् 2000 तक समस्त राज्यों में प्राप्त की जाय।

इस लक्ष्य को ध्यान में रखकर नियोजन कार्यक्रम के अन्तर्गत आने वाले परिवारों के अनुपात को 22 प्रतिशत से बढ़ाकर 41.2 प्रतिशत करने का प्रयत्न किया गया। परन्तु यह वास्तव में एक अत्यधिक महत्वाकांक्षी लक्ष्य था जिसे प्राप्त नहीं किया जा सका। यद्यपि छठीं योजना में यह स्वीकार किया गया कि आर्थिक विकास स्वतः ही दीर्घकाल में प्रजननता को गिरा देता है किन्तु फिर भी जनसंख्या वृद्धि को अल्पकाल में ही नियन्त्रित करने पर जोर दिया गया परन्तु प्रजननता की दर को गिराने के लिये बलपूर्वक उपायों को अपनाने को जोर नहीं दिया गया। संक्षेप में इस योजना की मुख्य बातें निम्नलिखित है –

1. ऐच्छिक बन्धयाकरण के लिये नकद क्षतिपूर्ति।
2. परिवार नियोजन कार्यक्रमों की सफलता के आधार पर राज्य योजना के लिये 8 प्रतिशत केन्द्रीय सहायता।
3. केन्द्रीय साधनों का राज्यों में वितरण के लिये 2001 तक सन् 1971 की जनगणना को आधार माना गया।
4. परिवार कल्याण कार्यक्रमों के उद्देश्यों के लिये दिये गये दान पर पूर्ण आयकर मुक्ति।
5. परिवार कल्याण कार्यक्रम के अन्तर्गत निः शुल्क सेवायें।

सातवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान जनसंख्या नीति –:

छठीं योजना के लक्ष्यों की पूर्ति न होने की पृष्ठ भूमि में सरकार ने वास्तविक स्थिति की समीक्षा करते हुये अपनी स्वास्थ्य नीति को संशोधित किया ताकि शुद्ध प्रजनन दर को 1 प्रतिशत तक लाने का कार्य यदि सन् 2000 तक नहीं हो तो सन् 2006 से 2011 की अवधि के मध्य प्राप्त किया जा सके। सातवीं योजना के लिये परिवार कल्याण कार्यक्रम के लिये निम्नलिखित लक्ष्य तैयार किये गये –

प्रभाव पूर्ण दम्पत्ति सुरक्षा दर	42 प्रतिशत
जन्म – दर	29.1 प्रतिशत
मृत्यु – दर	10.4 प्रतिशत
शिशु मृत्यु – दर	90 प्रति हजार
नसबन्दी	31 मिलियन
लूप लगाना	21.25 मिलियन
निरोध प्रयोगकर्ता संख्या	14.5 मिलियन

उपर्युक्त लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये निम्नलिखित कार्यक्रमों पर बल दिया गया –

1. कार्यक्रम के आधारभूत ढाँचे को मजबूत बनाना।
2. राज्यों को विभिन्न कार्यक्रमों में परिवर्तन की अनुमति।
3. दो सन्तानों के मध्य दूरी रखने पर बल।
4. सन्तान के रुप में लड़कियों के विषय में फैली विपरीत भावना को हटाना।
5. शादी की न्यूनतम आयु के लिये कानून बनाना।
6. उन राज्यों पर अधिक ध्यान देना जहाँ प्रभावपूर्ण दम्पत्ति सुरक्षादर नीची है। शहरी गन्दी बस्तियों, पहाड़ी व पिछड़ी जाति पर अधिक ध्यान देना इत्यादि।
7. 10 लाख से ऊपर जनसंख्या वाले नगरों में परिवार कल्याण के विशेष कार्यक्रम चलाना।
8. ऐच्छिक संगठनों से अधिक सहयोग लेना।
9. स्त्रियों व युवा वर्ग से अधिक सहयोग लेना।
10. राज्यों द्वारा परिवार कल्याण कार्यक्रमों के बारे में प्रस्ताव पारित करवाना।

उपर्युक्त लक्ष्यों में से अंशोधित जन्मदर के लक्ष्य को छोड़कर अन्य सभी प्रमुख लक्ष्यों जैसे प्रभावी दम्पत्ति सुरक्षा दर, अशोधित मृत्युदर तथा प्रतिहजार जनसंख्या पर शिशु मृत्युदर इत्यादि लक्ष्यों को सातवीं योजना में पूरा प्राप्त कर लिया गया। यह

तालिका 5.1 में दर्शाया गया है –

तालिका ५.१

सातवीं योजना में जन्म एवं मृत्यु दर

		सातवी योजना के लक्ष्य	सातवीं योजना की उपलब्धियाँ
1	2	3	4
प्रभावी दम्पत्ति सुरक्षा दर	प्रति हजार	42.0	42.0
अशोधित मृत्यु–दर	प्रति हजार	10.4	9.7
शिशु मृत्यु–दर	प्रति हजार	90.0	80.0
अशोधित जन्म–दर	प्रति हजार	29.1	30.2

स्रोत – सैम्पल रजिस्ट्रेशन सिस्टम बुलेटिन जून, 1992 योजना आयोग।

सातवीं योजना में सरकार ने यह भी महसूस किया कि देश में परिवार नियोजन तभी सफल हो सकता है यदि बाल जीवित शेष दर बढ़ायी जा सके। सातवीं योजना पर स्पष्ट तौर पर यह कहा गया कि उच्च जन्मदर और उच्च शिशु मृत्युदर के बीच निकट सम्बन्ध को मानते हुये जच्चा–बच्चा स्वास्थ्य कार्यक्रम को उच्च प्राथमकिता दी जायेगी। सातवीं योजना में परिवार कल्याण कार्यक्रमों पर 3256 करोड़ रुपये खर्च करने कर प्रस्ताव रखा गया जिसमें से 1357 करोड़ रुपये सेवाओं एवं सामग्री पर, 888 करोड़ रुपये मात्र स्वास्थ्य पर, 171 करोड़ रुपये प्रशिक्षण सूचना, शिक्षा एवं संचार पर और 370 करोड़ रुपये ग्रामीण स्वास्थ्य मार्गदर्शन योजना और शेष संगठन, अनुसंधान तथा क्षेत्रीय परियोजना पर खर्च किये जाने थे। परन्तु सातवीं योजना के अन्त तक कुल मिलाकर 3120.8 करोड़ रुपये ही व्यय किये जा सके जो कि कुल योजना व्यय का 1.4 प्रतिशत निहित है।

१९९० -९२ के वर्षो के दौरान जनसंख्या नीति एवं परिवार कल्याण नीति

1990–91 तथा 1991–92 की वार्षिक योजनाओं के दौरान जनसंख्या नीति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया। परिवार नियोजन एवं परिवार कल्याण की पुरानी नीति पर चलते हुये कुछ उल्लेखनीय उपलब्धियाँ अवश्य प्राप्त की गई जैसे –(31 मार्च 1992 तक लगभग 80.79 मिलियन बन्ध्याकरण, 4321000 आई0 यू0 डी0

कैसिस लगभग 14 लाख पारम्परिक गर्भनिरोधक आदि) प्रयुक्त किये जाने लगे थे। 148 मिलियिन दम्पत्तियों में 43.5 प्रतिशत दम्पत्तियों को 31 मार्च 1992 तक प्रभावी रुप से सुरक्षा प्रदान की जा चुकी थी। 'रजिस्ट्रार जनरल ऑफ इण्डिया' के स्थायी गणना के अनुसार 1991 के अन्त तक जन्मदर एवं मृत्युदर क्रमशः 29.3 प्रतिहजार तथा 9.8 प्रति हजार हो गयी थी।

जनवरी 1992 में राष्ट्रीय विकास परिषद की एक बैठक में जनसंख्या नियंत्रण हेतु एक परिणामपरक कार्ययोजना को स्वीकार किया गया, जो आगे चलकर आठवीं योजना में जनसंख्या नियंत्रण के लिये अपनाई जाने लगी तथा इस रणनीति का प्रमुख आधार है। इस कार्ययोजना के प्रमुख तत्व इस प्रकार है''15 –

1. परिवार कल्याण कार्यक्रमों की उपलब्धता एवं पहुँच में सुधार लाना।
2. 39 प्रति हजार से ऊँची जन्मदर वाले तथा परिवार नियोजन कार्यक्रम में कम उपलब्धता प्राप्त करने वाले देश के 90 जनपदों के लिये विशेष रणनीति तैयार करना।
3. केन्द्र से राज्यों को दी जाने वाली सहायता का आधार परिवार कल्याण कार्यक्रमों की ओर उपलब्धियों के आँकड़े न होकर जन्म दर में वास्तविक कमी लाना।
4. दो बच्चों के बीच समयान्तर को बढ़ाने के लिये युवा दम्पित्तियों को प्रेरित कराने हेतु सघन प्रयास करना।
5. नवीन गर्भ निरोधक उपलब्ध कराना तथा परम्परागत गर्भ निरोधकों की गुणवत्ता में सुधार लाना।
6. उप नगरीय क्षेत्र, विशेष रुप से मलिन बस्तियों में परिवार नियोजन कल्याण कार्यक्रमों को सुदृढ़ करना।
7. जनसंख्या नियन्त्रण से जुड़े चिकित्सकों तथा पैरा चिकित्सक कार्यकर्ताओं को इस प्रकार से शिक्षित–प्रशिक्षित करना कि वे अभिप्रेरक एवं परामर्शदाता का

कार्य अधिक कुशलता पूर्वक कर सकें।

8. अन्तर वैयक्तिक संचार एवं जीवन की गुणवत्ता से जुड़े पहलुओं पर ध्यान केन्द्रित करते हुये सूचना, शिक्षा एवं संचार (आई0 ई0 सी0) कार्यक्रमों का रि–ओरिएन्टेशन करना।

9. जनसंख्या नियंत्रण के कार्यक्रम को एक यथापूर्वक सामुदायिक कार्यक्रम के बनाने के लिये गैर–सरकारी संगठनों, पंचायतों, नगर परिषदों आदि को वृहद स्तर पर इस कार्यक्रम से जोड़ना।

10. राष्ट्रीय राज्य, जिला, ताल्लुका एवं विकास खण्ड स्तर पर अन्तर क्षेत्रफल समन्वय प्रणाली को अधिकाधिक मजबूत करना।

जनवरी 1992 की बैठक में जनसंख्या नियन्त्रण हेतु एक समिति गठित की गई। इस समिति से राष्ट्रीय जनसंख्या नीति बनाने, समग्र एवं सूक्ष्म स्तर पर प्रभावी नीतियां लागू करना, सभी स्तरों पर ऐसा नेतृत्व तैयार करने जो जनसंख्या नियंत्रण कार्यक्रमों को एक नवीन दिशा दे सके तथा जनसंख्या नियन्त्रण कार्यक्रमों के अन्तर्गत परिणामपरक कार्यान्वयन से सम्बन्धित विषयों पर सुझाव देने के लिये कहा गया था।

आठवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान जनसंख्या नीति –:

जनसंख्या नियन्त्रण के निमित्त आठवीं पंचवर्षीय योजना में अपनायी गयी रणनीति के तहत जनसंख्या नियन्त्रण को योजना के छः प्रमुख उद्देश्यों में से एक के रुप में स्वीकार किया गया है ताकि जन्मदर से वर्ष 1990 के 29.9 प्रति हजार से कम करके 1997 तक 26 प्रतिहजार के स्तर पर लाया जा सके। इसी के साथ शिशु मृत्यु–दर को 1990 के 80 प्रति हजार से 1997 तक 70 प्रति हजार के स्तर पर लाया जा सके, क्योंकि ऊँची शिशु मृत्यु दर दम्पत्तियों को परिवार नियोजन के स्थायी उपाय (नसबन्दी) अपनाने से रोकती है।

जनसंख्या के सम्बन्ध में कुछ लक्ष्यों जैसे –शुद्ध प्रजनन दर को 1 स्तर पर लाना, जन्मदर को 21 प्रतिहजार तथा मृत्युदर को 9 प्रति हजार लाना तथा

जनसंख्या 1.2 प्रतिशत की वार्षिक प्राकृतिक वृद्धि को प्राप्त करना इत्यादि को जो सातवीं योजना में सन् 2006 से सन् 2011 तक प्राप्त करना निश्चित किया था उसे आठवीं योजना में बढ़ा कर सन् 2011 से सन् 2016 तक प्राप्त करने का लक्ष्य तय किया गया। योजना में यह भी निश्चित किया गया है, कि जनसंख्या वृद्धि की समस्या को नियन्त्रित करने में अनुकूलतम परिणाम पाने के लिये, इन नीतिगत सिद्धान्तों को लोकप्रिय जन आन्दोलन में परिवर्तित किया जाना चाहिये तथा स्त्रियों की शिक्षा, उनके विवाह की आयु, उनके रोजगार के अवसर, उनका समाज में स्थान इत्यादि सभी बातों पर ध्यान दिया जाना तय किया गया है।

इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय विकास परिषद की नयी दिल्ली में 6'7 जनवरी 1992 की बैठक में जनसंख्या नियन्त्रण हेतु एक परिणामपरक कार्ययोजना को स्वीकार किया गया। यही कार्ययोजना आठवीं पंचवर्षीय योजना में नियंत्रण के लिये अपनाई जाने वाली रणनीति का प्रमुख आधार है। इस कार्य योजना के प्रमुख तत्व निम्न है –

1. परिवार कल्याण कार्यक्रमों की उपलब्धता एवं पहुँच में सुधार लाना।
2. 39 प्रति हजार से ऊँची जन्मदर वाले तथा परिवार नियोजन कार्यक्रमों की कम उपलब्धता वाले देश के 90 जिलो के लिये विशेष रणनीति तैयार करना।
3. राज्यों को दी जाने वाली केन्द्रीय सहायता का आधार परिवार कल्याण कार्यक्रमों की उपलब्धता के आँकड़े न होकर जन्म दर में वास्तविक कमी लाना।
4. दो बच्चों के बीच समयान्तर को बढ़ाने के लिये युवा दम्पत्तियों को प्रेरित करने हेतु सघन प्रयास करना।
5. आधुनिक गर्भ निरोधक उपलब्ध करवाना तथा परम्परागत गर्भ निरोधकों की गुणवत्ता में सुधार लाना।
6. उपनगरीय क्षेत्रों, विशेषकर मलिन बस्तियों में परिवार नियोजन, परिवार कल्याण कार्यक्रमों को प्रभावी ढंग से लागू करना।
7. जनसंख्या नियन्त्रण से जुड़े चिकित्सकों तथा पैरा–चिकित्सक कार्यकत्ताओं को

इस प्रकार से शिक्षित–प्रशिक्षित करना कि वे अभिप्रेरक एवं परामर्शदाता की भूमिका अधिक कुशलता पूर्वक निभा सकें।

8. अंतर – वैयक्तिक संचार एवं जीवन की गुणवत्ता से सम्बन्द्ध पक्षों पर ध्यानाकर्षण करते हुये सूचना, शिक्षा एवं संचार कार्यक्रमों का रि–ओरिएन्टेशन करना।

9. जनसंख्या नियंत्रण कार्यक्रम को एक यर्थाथपरक सामुदायिक कार्यक्रम जानने के लिये गैर–सरकारी संगठनों, ग्राम पंचायतों, नगर परिषदों आदि को इस कार्यक्रम से व्यापक स्तर पर जोड़ना।

10. राष्ट्रीय, राज्य, जिला एवं विकास खण्ड स्तर पर अंतरक्षेत्रक समन्वय प्रणाली को ज्यादा से ज्यादा मजबूत करना।

इसके अलावा राष्ट्रीय विकास परिषद की 23,24 दिसम्बर 1991 की बैठक में लिये गये निर्णय के अनुसार जनवरी 1992 की बैठक में जनसंख्या नियन्त्रण हेतु एक समिति गठित की गयी। इस समिति से राष्ट्रीय जनसंख्या नीति बनाने, समग्र एवं सूक्ष्म स्तर पर प्रभावी नीतियाँ लागू करने–सभी स्तरों पर ऐसा नेतृत्व तैयार करने जो जनसंख्या नियन्त्रण कार्यक्रमों के परिणामपरक कार्यान्वयन से संबद्ध विषयों पर सुझाव देने के लिये कहा गया था। इस समिति ने अपनी सिफारिशें प्रस्तुत कर दी। इन सिफारिशों को राष्ट्रीय विकास परिषद की 18 सितम्बर 1993 की बैठक में सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिया गया।

नौवी पंचवर्षीय योजना के दौरान जनसंख्या नीति –

नौवी पंचवर्षीय योजना में केन्द्रीय सरकार की भूमिका सीमित कर दी गई है। परिवार नियोजन युक्ति का एक अन्य पहलू यह है कि युवा दम्पत्तियों पर जो पुनरूत्पादन की दृष्टि से सर्वाधिक सक्रिय है ध्यान केन्द्रित किया जाय। यह इसलिये आवश्यक समझा गया है क्योंकि सांतवी पंचवर्षीय योजना के दौरान दम्पत्ति संरक्षण दर का लक्ष्य प्राप्त हो जाने के बाद भी उसके अनुरूप जन्मदर में कमी नहीं हुई। ऐसा सम्भवतः इसलिये हुआ कि युवा दम्पत्तियों का संरक्षण अनुपात कम रहा। अब युवा

दम्पत्तियों को छोटा परिवार अपनाने के लिये तैयार किया जायेगा। भविष्य में परिवार नियोजन कार्यक्रम का लक्ष्य दम्पत्ति संरक्षण दर के रूप में निर्धारित करने के बजाय जन्म–दर में कमी के रूप में निर्धारित किया जायेगा और कार्यक्रम का स्वरूप भी इसी के अनुरूप बनाया जायेगा। योजना के अन्तर्गत प्रजनन एवं बाल स्वास्थ्य देखभाल में वृद्धि के फलस्वरूप सन् 2002 तक शिशु मृत्युदर की निम्न सीमा अर्थात् 50 प्रति हजार रुक्ष जन्मदर 23 प्रतिहजार और सकल जनन दर 2.6 प्रति हजार करने का लक्ष्य रखा गया। यह तालिका 5.2 में दर्शाया गया है

तालिका - ५.२

सन् २००२ तक प्रत्याशित उपलब्धियां

शिशु मृत्युदर	56–50
रूक्ष मृत्युदर	24–23
कुल प्रजनन दर	2.9–2.6
गर्भ निरोध सुरक्षा दर	51–60
श्रोत भारतीय अर्थव्यवस्था	2002

स्रोत–भारतीय अर्थव्यवस्था 2002 पेज–71

नौवी पंचवर्षीय योजना के लक्ष्य 1996–2016 के जनसंख्या प्रक्षेपण को ध्यान में रखकर निर्धारित किये गये जिसमें शिशु मृत्युदर, मातृत्व मृत्युदर को कम करना व जन्म दर में कमी करने के लिये विशेष उपाय किये गये। 1991 की जनसंख्या के अनुसार जिन जिलों में परिवार कल्याण के क्षेत्र में कम काम हुआ है, उनको अतिरिक्त सुविधायें पहुँचाना। गर्भ निरोधक, आवश्यक दवायें, टीका आदि की माँग के अनुसार व अच्छी गुणवत्ता के साथ उपलब्ध करना। इन सभी के लिये कुल सार्वजनिक योजना परिव्यय का लगभग 3 प्रतिशत उपलब्ध कराया जाना।

नवीन राष्ट्रीय जनसंख्या नीति (२०००)

केन्द्रीय सरकार ने अपनी नई जनसंख्या नीति को घोषणा 15 फरवरी 2000 को की है। नई 'राष्ट्रीय जनसंख्या नीति 2000' को तीन मुख्य उद्‌देश्यों के परिप्रेक्ष्य में निर्धारित किया गया है।

नीति के उद्‌देश्य

1. **तत्कालीन उद्‌देश्य –:**

गर्भनिरोध, स्वास्थ्य सेवा ढाँचा और समेकित सेवा प्रदान करने सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति प्रदान करना है।

2. **मध्यम अवधि के उद्‌देश्य –:**

प्रजनन दर को एक पीढ़ी के बराबर ही दूसरी पीढ़ी की संख्या रखने की स्थिति तक लाना है अर्थात् कुल प्रजनन दर (टी0 एफ0 आर0) को 2 : 1 के प्रतिस्थान स्तर तक लाना है। इस तरह सन् 2010 तक रणनीति को जोरदार ढंग से लागू कर एक दम्पत्ति को केवल दो बच्चों का लक्ष्य हासिल किया जाना है।

3. **दीर्घकालीन उद्‌देश्य –:**

सन् 2045 तक जनसंख्या को स्थिर करना है आर्थिक वृद्धि, सामाजिक विकास और पर्यावरण संरक्षण की आवश्यकताओं के अनुरुप स्तर तक जनसंख्या को स्थिर किया जायेगा।

विशेषतायें

1. **राज्यों की निर्भय सहभागिता –:**

नई जनसंख्या नीति में राज्यों की निर्भय सहभागिता सुनिश्चित करने के लिये लोकसभा की संरचना को 2001 के पश्चात् 25 वर्ष तक और आगे अपरिवर्तित रखने की घोषणा की गई है, इसके लिये संविधान के अनुच्छेद 84 में पुनः संशोधन करना होगा। इसके मौजूदा प्रावधानों के तहत सन् 2001 तक लोक सभा में राज्यों से

सीटों का निर्धारण 1971 की जनसंख्या के आधार पर ही किया जाना है। इसी व्यवस्था को सन् 2026 तक बढ़ाने से किसी भी राज्य को इस अवधि में जनसंख्या में होने वाली वृद्धि का कोई लाभ नहीं मिल सकेगा। इसका तात्पर्य यह है कि लोक सभा में निर्वाचित सीटों की संख्या अब 2026 तक 543 ही बनी रहेगी तथा प्रत्येक राज्य से सीटों की संख्या भी तब तक यथावत् रहेगी।

2. **मानवीय प्रभावी विकास नीतियां** –:

नई नीति में कहा गया है कि ऐसी तर्क संगत मानवीय प्रभावी विकास नीतियाँ बनाई जाये जो कि जन कल्याणकारी हों। राष्ट्रीय जनसंख्या नीति में उ0 प्र0, बिहार, राजस्थान तथा म0 प्र0 सहित भारत की करीब आधी आबादी वाले बारह राज्यों तथा केन्द्र शासित प्रदेशों में जनसंख्या नियन्त्रण के लिये प्रभावी कदम नहीं उठाने पर चिन्ता व्यक्त की गई तथा इन प्रदेशों मे इस नीति के प्रभावी क्रियान्वयन के लिये कार्ययोजना की भी घोषणा की गयी है जिसके तहत न केवल जनसंख्या नियंत्रण के लिये विशेष कदम उठाये जायेंगे बल्कि नागरिकों का जीवन स्तर सुधारने पर भी विशेष ध्यान दिया जायेगा।

3. **राष्ट्रीय जनसंख्या आयोग का गठन** –:

नई जनसंख्या नीति के कार्यान्वयन पर निगरानी रखने व उसकी समीक्षा के लिये 11 मई 2000 को प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में उच्चस्तरीय 'राष्ट्रीय जनसंख्या आयोग' का गठन किया जायेगा। केन्द्रीय परिवार कल्याणमंत्री व कुछेक अन्य सम्बन्धित केन्द्रीय मंत्रियों के अतिरिक्त सभी राज्यों व केन्द्रशासित क्षेत्रों के मुख्यमंत्री इस आयोग के सदस्य होगें। जाने–माने जनसंख्या शास्त्रियों, जन स्वास्थ्य विशेषज्ञों व गैर सरकारी संगठनों के प्रतिनिधियों को भी इसमें शामिल किया जायेगा।

4. **बालिका समृद्धि योजना एवं मातृत्व सुविधा योजना** –:

इस नीति के तहत बालिका समृद्धि योजना तथा मातृत्व सुविधा योजना जारी रखे जाने का प्रस्ताव है। साथ ही गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले दम्पत्ति अगर

कानूनन विवाह योग्य आयु सीमा के बाद शादी करते है तथा सम्बद्ध महिला 21 वर्ष कि बाद पहली बार माँ बनती है तो उस दम्पत्ति को भी पुरस्कृत किया जायेगा।

5. **छोटे परिवार हेतु प्रोत्साहन –:**

छोटे मानक को अपनाने को प्रोत्साहित करने के लिये शामिल किये गये प्रयासों में निम्नलिखित उल्लेखनीय है –

1. केन्द्र सरकार उन पंचायतों और जिला परिषदों को पुरस्कृत करेगी जो अपने क्षेत्र में रहने वाले लोगों को जनसंख्या नियंत्रण के उपाय को अधिकाधिक अपनाने के लिये प्रेरित करेगी।
2. प्रसव पूर्व लिंग परीक्षण तकनीकी निरोधक अधिनियम को कड़ाई के साथ लागू किया जायेगा।
3. गरीबी रेखा के नीचे जीवनयापन करने वाले उन परिवारों को पाँच हजार रुपये की स्वास्थ्य बीमा की सुविधा दी जायेगी जिनके सिर्फ दो बच्चे हो और दो बच्चों के जन्म के बाद उन्होंने बन्ध्यांकरण करा लिया हो।
4. ग्रामीण क्षेत्रों में एम्बुलेंस की सुविधा उपलब्ध कराने के लिये उदार शर्तो पर ऋण तथा आर्थिक मदद उपलब्ध कराई जायेगी।
5. गर्भपात सुविधा योजना को और मजबूत किया जायेगा।
6. गैर–सरकारी स्वयंसेवी संस्थओं को इस कार्य से जुड़ने के लिये प्रोत्साहित किया जायेगा।

6. **अन्य विशेषतायें –:**

1. बाल विवाह निषेध कानून को कड़ाई से लागू करना।
2. गर्भपात सुविधा का विस्तार।
3. शिशु मृत्युदर प्रति 10,000 शिशुओं पर घटकर 30 से कम करना।
4. 14 वर्ष तक की आयु के बच्चों के लिये स्कूली शिक्षा निः शुल्क व अनिवार्य करना।

5. एड्स को फैलने से रोकना।
6. मातृत्व मृत्यु–दर को कम करके 100 प्रति एक लाख जीवित जन्म से नीचे लाना।

दसवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान जनसंख्या नीति –:

दसवीं योजना में परिवार कल्याण की सेवाओं से सम्बन्धित अनुभव की गई सभी जरुरतों को पूरी तरह से पूरा करने और परिवारों को निम्नलिखित में महत्वपूर्ण परिवर्तन करके उनके प्रजनन सम्बन्धी लक्ष्यों को हासिल करने में समर्थ बनाने का प्रस्ताव है –

1. दम्पत्तियों को उनके प्रजनन सम्बन्धी लक्ष्यों को पूरा करने में समर्थ बनाने पर ध्यान देते के लिये जनसांख्यिकी लक्ष्य।
2. अवांछित गर्भ ठहरने की स्थिति में कमी लाने के लिये गर्भ निरोधकों की पूरी न की गई जरुरतों को पूरा करने के लिये विधि विशिष्ट गर्भ–निरोध के लक्ष्य।
3. महिलाओं और बच्चों की समेकित स्वास्थ्य देखरेख हेतु परिवार कल्याण एवं मातृत्व, शिशु स्वास्थ्य के लिये अनेक सोपानिक कार्यक्रम।
4. शिशु मृत्यु और अधिक वांछित जनन क्षमता में कमी लाने के लिये समुदाय आवश्यकता पर आधारित मूल्यांकन और विकेन्द्रित क्षेत्र विशिष्ट लघु–योजना निर्माण तथा प्रजननकारी और बाल स्वास्थ्य देख रेख कार्यक्रम के कार्यान्वयन के केन्द्रीय रुप से परिभाषित लक्ष्य।
5. नियोजित मातृत्व–पितृत्व में पुरुषों को शामिल करने पर जोर देने के साथ–साथ स्वास्थ्य देखरेख सम्बन्धी जरुरतों को पूरा करने के लिये मुख्य रुप से महिला केन्द्रीत कार्यक्रम।

दसवीं योजना में वर्ष 2007 तक शिशु मृत्यु दर को कम करके 45 प्रति हजार करने और वर्ष 2012 तक 28 प्रति हजार करने वर्ष 2007 मे मातृ मृत्युदर को कम करके 2 प्रति हजार जीवित जन्म और वर्ष 2012 तक 1 प्रति हजार जीवित जन्म करने तथा वर्ष 2001–2010 के बीच जनसंख्या की दशकीय वृद्धि दर को कम करके 16.2 करने की परिकल्पना की गई।

जनसंख्या नीति की समीक्षा –:

भारत जैसे विशाल राष्ट्र में सामाजिक, आर्थिक राजनैतिक और सांस्कृतिक विभिन्नता के कारण योजनाओं के लक्ष्यों पर पड़ने वाले प्रभावों का पूर्वानुमान नहीं लगाया जाता है। योजनाओं के संचालन की जो परिकल्पना की जाती है वह क्रियान्वयन के समय जन–साधारण के स्तर पर अक्सर मात खा जाती है। परिवार नियोजन भी इसका अपवाद नहीं है।

पिछले कुछ वर्षो के अध्ययन से पता चलता है कि जनसंख्या वृद्धि को नियंन्त्रित करना अत्यधिक जटिल कार्य बनता जा रहा है। दुःख की बात यह है कि छठीं पंचवर्षीय योजना के मसौदे में जनसंख्या वृद्धि की समस्या को गम्भीरतम समस्या के रुप में नहीं लिया गया। जबकि यह एक ऐसा चरण था जहाँ पर सरकार को राष्ट्रीय विकास कार्यक्रम में परिवार नियोजन को महत्वपूर्ण स्थान देना चाहिये था। स्वास्थ्य मंत्रालय के पास जो आँकड़े हैं उन्हें देखते हुये इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि जब तक पुनरुत्थान आयु वर्ग के दम्पत्तियों में से 40 प्रतिशत को तुरन्त और कारगार ढँग से परिवार नियोजन की परिधि में नहीं लाया जाता, देश की जन्म दर को पर्याप्त स्तर तक नीचे ले आने का लक्ष्य कदापि पूरा नहीं किया जा सकेगा। देशवासियों की न्यूनतम आवश्यकताओं का साभरण, साक्षरता, कल्याणकारी कार्यक्रम, ग्रामीण विकास कार्यक्रम आदि को जब तक परिवार कल्याण कार्यक्रम के साथ जोड़ा नहीं जायेगा तब तक 'छोटा परिवार सुखी परिवार' जैसी बात जनमानस के मस्तिष्क में अपना स्थान नहीं बना सकती है।

योजना आयोग को चाहिये कि दीर्घकालीन उद्देश्य की दृष्टि से जनसंख्या, आर्थिक विकास और सामाजिक विकास को आपस में मिलाकर चले। इसके लिये केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों में तालमेल होना अति आवश्यक है। जहाँ तक परिवार नियोजन को जन सहयोग द्वारा सफल बनाने का प्रश्न है सातवीं योजना में केवल आशा व्यक्त की गई थी कि स्वयंसेवी संस्थायें तथा जनमत को प्रभावित करने वाले व्यक्ति

इस क्षेत्र में सक्रिय सहयोग दे सकेंगे। लड़कियों के लिये विवाह की न्यूनतम आयु 18 और लड़कों के लिये 21 वर्ष तो की गई है परन्तु विवाहों के पंजीकरण की पर्याप्त व्यवस्था न होने के कारण इस कानूनी कदम से जनसंख्या रोकने में अधिक सहायता मिलने के आसार नहीं है। जनसंख्या सीमित रखने के लक्ष्य तभी सफल हो सकते हैं जब महिलाओं का सामाजिक स्तर ऊँचा हो तथा परिवार का आकार निर्धारित करने में उनका पूरा हाथ हो यह भी खेद का विषय है कि सातवीं योजना के 'एप्रोच पेपर' में देश की महिलाओं का दर्जा गिरने के मूलभूत कारणों का कोई विश्लेषण ही नहीं किया गया है।

हमारी जनसंख्या नीति बेहद संकीर्ण है। हमने केवल परिणाम को ही ध्यान में रखा है, गुणात्मक पहलू पर विचार नहीं किया है। परिणात्मक पहलू में निम्न विषय आते है –

1. जनसंख्या की अत्यधिक मात्रा।
2. ऊँची जन्म एवं मृत्यु दर।
3. भूमि पर जनसंख्या का अत्यधिक दबाब अर्थात् ऊँचा जनघनत्व।
4. ऊँचा आश्रित अनुपात।
5. कार्यशील जनसंख्या की कमी।
6. बेरोजगार एवं छिपा हुआ बेरोजगार।
7. शहरी क्षेत्रों में जनकेन्द्रीकरण।

यदि भारतीय जनसंख्या नीति का विश्लेषण किया जाये तो पता चलता है कि अभी हम जनसंख्या की मात्रा के जाल में फंसे है। मात्र जन्मदर व मृत्युदर के आँकड़े हमारी चिन्ता के विषय बने है। जनघनत्व, आश्रित अनुपात, कार्यशील जनसंख्या की कमी आदि अनेक मुद्दे जो परिमाणात्मक पहलू के ही अंग, हमारी नीति के अंग नहीं बन पाये है। जहाँ तक गुणात्मक पहलू का प्रश्न है, इसमें अनेक विषय आते है –

1. नीची आयु प्रत्याशा।
2. व्यापक निरक्षरता।

3. दुर्बल स्वास्थ्य।

4. नीची श्रम उत्पादकता।

5. जोखिम लेने की क्षमता का अभाव आदि।

भारतीय जनसंख्या नीति ने अभी गुणात्मक पहलू की देहरी पर भी कदम नहीं रखा है। स्वास्थ्य सम्बन्धी कतिपय कदम उठाये गये है। जो जनसंख्या नीति के नहीं वरन् जनस्वास्थ्य के विषय हैं।

आवश्यकता इस बात की है कि एक समन्वित जनसंख्या नीति अपनायी जाये जिसमें शिशु स्वास्थ्य, महिला कल्याण, मातृत्व, विधवा विवाह, दहेज, साक्षरता आदि तमाम विषयों पर न केवल विधान बनाया जाये वरन् जन जागृति भी की जाये ताकि इन समस्याओं के प्रति जनता जागरूक हो जाये।

हिन्दी भाषी राज्यों में परिवार नियोजन आन्दोलन बहुत दुर्बल है अतः उन राज्यों में विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

भविष्य में जो भी परिवार कल्याण कार्यक्रम बनाया जाये उसमें कुछ प्रभावी प्रोत्साहन एवं हतोत्साहन की व्यवस्था हो। कुछ प्रमुख सुविधायें निम्न हैं जिनको वरीयता दी जा सकती है –

1. आवासीय भूखण्ड अथवा भवन का आवंटन।

2. आवास निर्माण हेतु ऋण।

3. बैकों से ऋण सम्बन्धी सुविधायें।

4. भूमिहीनों को भूमि का आंवटन।

5. सरकारी सेवाओं में आरक्षण।

6. निः शुल्क शिक्षा, चिकित्सा सुविधायें आदि।

यदि भविष्य सम्बन्धी प्रभावी कार्यक्रम बनाया जाये तो उसमें समस्या का आकार भलीभाँति जान लेना आवश्यक है। प्रत्येक 10 वर्ष में 15 प्रतिशत भी जनसंख्या बढ़ी तो कम से कम 1.5 मिलियन की प्रतिवर्ष नसबन्दी तो आगे की वृद्धि को रोकने के

लिये आवश्यक है। इस समय जितनी स्त्रियां पुनरुत्पादन आयु–वर्ग से बाहर जा रही है उसकी तीन गुनी प्रवेश करती है, युवा स्त्रियों की प्रजनन क्षमता निवर्तमान स्त्रियों की तीन गुनी होती है। अतः यह स्पष्ट है कि मात्र वैधानिक व्यवस्था कर देने या शासकीय ढाँचा प्रस्तुत कर देने से ही यह समस्या नहीं सुलझेगी वरन् इसके लिये एक विशाल जन–आन्दोलन चलाया जाना आवश्यक है जिसमें लोग स्वयं आगे आये और छोटे परिवार की नीति अपनायें।

भारत में जनसंख्या नियन्त्रण की नीति को सफल बनाने के लिये आवश्यक है कि सामाजिक वातावरण में कुछ संरचनात्मक परिवर्तन किये जाये। प्रजननता न केवल एक जैविक घटक है वरन् उसमें समाज की सभी प्रकार की परिस्थितियों का प्रभाव पड़ता है। अतः उन सभी सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन लाना होगा जो नियोजन के मार्ग में बाधक है। परिवार नियोजन के मार्ग में एक बाधा लड़के को लड़की से श्रेष्ठ मानना है। समाज के सभी वर्गो में कम से कम एक लड़के की अनिवार्यता पर बल दिया जाता है। ओ. आर. जी. के अध्ययनानुसार जिन व्यक्तियों से यह प्रश्न पूछा गया कि क्या आप विश्वास करते हैं कि प्रत्येक दम्पत्ति का पुत्र होना चाहिये तो 86 प्रतिशत ने यह उत्तर दिया कि वंश को बनाये रखने के लिये कम से कम एक पुत्र होना अनिवार्य है पुत्रों की वांछनीय संख्या पर 25 प्रतिशत ने एक पुत्र, तो 40 प्रतिशत ने दो पुत्र आवश्यक बताये तथा शेष व्यक्तियों ने तीन या उससे अधिक पुत्रों की आवश्यकता व्यक्त की। अध्ययन ने यह भी बताया है कि अधिकांश दम्पत्ति लड़का व लड़की दोनों चाहते हैं। लड़के की अनिर्वायता परिवार नियोजन के मार्ग में बाधक बन जाती है जबकि दो या तीन लड़कियों वाला दम्पत्ति नसबन्दी कराने को तत्पर नहीं होता है। अतः समाज में इस प्रकार की सामाजिक स्थिति लाई जानी आवश्यक है कि लड़की भी लड़के के ही भाँति माता–पिता के लिये एक पूँजी साबित हो। इसके लिये दहेज प्रथा बन्द करना आवश्यक है।

भारतीय सामाजिक आधार पटल पर दृष्टिपात करने से पता चलता है कि एक सामान्य भारतीय का जीवन लगातार संघर्ष का जीवन है, जिसमें वह प्रायः हार जाता है, उठता है, गिरता है फिर भी आगे बढ़ने की कोशिश करता है। उसकी वृद्धावस्था के लिये न कोई बचत है न बीमा, न पेन्शन है और न कोई आवास, यदि उसके बुढ़ापे का कोई सहारा है तो उसका लड़का या लड़की। इन्हीं सन्तानों के लिये वह जीवन भर प्रयत्न करता है अतः यदि ऐसी सामाजिक व्यवस्था बन जाये कि उसे वृद्धावस्था में पेंशन तथा अन्य सुविधायें मिलने लगे तो वह बच्चों के प्रति इतना जागरुक नहीं होगा।

सर्वेक्षण से ज्ञात होता है कि परिवार नियोजन सम्बन्धी उपकरणों का ज्ञान होने पर भी उन्हें बहुत कम प्रयोग में लाया जा रहा है। वस्तु स्थिति यह है कि लोगों को इस कार्यक्रम का ज्ञान है, अनेक उपकरण उपलब्ध है, लोग इनकी जरुरत महसूस करते हैं, इन सबके बावजूद भी इनका प्रयोग नहीं करते है। इसके प्रमुख कारण वे भ्रान्तियाँ है जो जन–मानस में व्याप्त है। उदाहरणार्थ–यह धर्म विरुद्ध है, इससे शारीरिक कमजोरी आ जाती है, इसके परवर्ती प्रभाव बुरे पड़ते है, यह प्रकृति के विरुद्ध है आदि। इन भ्रान्तियों को दूर करने के लिये ऐसे व्यक्तियों को परिवार नियोजन विभाग में प्रेरक बनाया जाना चाहिये जिन्होंने नसबन्दी करा ली है। ''हमारी समस्या और भी गम्भीर है कि हम बिना समय खोये भारत के परम्परागत समाज में ऐसे उपायों को लागू करना चाहते है जिनसे जन्मदर में तीव्र दर से कमी हो।''16

यद्यपि इस प्रश्न का अभी तक कोई उत्तर नहीं ढूंढा गया है। भारत की वर्तमान जनसंख्या नीति में भी किसी कठोर कदम की व्यवस्था नहीं है। केवल प्रोत्साहनों एवं प्रचार माध्यमों के द्वारा जन्म–दर घटाने पर बल दिया गया है। जो कुछ भी प्रस्तावित नीति है उस पर कड़ाई से पालन नहीं किया जा रहा है या यूँ कहा जाना चाहिये कि समस्त कार्यक्रम केवल कागजी कार्यवाही तक ही सीमित रह गया है।

परिवार नियोजन की सफलता के लिये अभी तक कोई ऐसी उपर्युक्त विधि नहीं निकल पायी है जो भारतीय परिस्थितयों में अनुकूल हो। भारत के लिये अनुकूलतम विधि में निम्न विशेषतायें होनी चाहिये।

1. परिवार नियोजन का उपाय बहुत सस्ता होना चाहिये।
2. वह पूर्णरुपेण प्रभावशाली होना चाहिये।
3. उसका प्रयोग बहुत सरल होना चाहिये।
4. उपाय के कोई अवांछनीय प्रभाव नहीं पड़ने चाहिये।
5. उपाय इस प्रकार का होना चाहिये कि उसे पारस्परिक व अविकसित समाज भी प्रयोग में ला सके।
6. उपाय से सामाजिक मूल्यों एवं परम्परागत भावनाओं को ठेस नहीं लगनी चाहिये।

भारत में इस ओर अनुसंधान जारी है अनेक नये–नये उपाय विकसित हो रहे है। आशा है वैज्ञानिक निकट भविष्य में इस प्रकार का कोई उपाय ढूंढ लेगे जिससे जनसंख्या की मात्रा को इच्छानुसार नियमित करने में मदद मिलेगी।

भारत में जनसंख्या नीति के अन्तर्गत अपनायें गये परिवार नियोजन कार्यक्रम का मूल्यांकन

पिछले 50–55 वर्षो के दौरान हमारे देश की विभिन्न योजनाओं के अन्तर्गत जनसंख्या की वृद्धि को नियन्त्रित करने के लिये जो नीति अपनायी गयी तथा उसके लिये जो एक बड़ी मात्रा में व्यय भी किया गया उन सबके परिणामस्वरुप भी 2001 की जनगणना के परिणाम यह बताते है कि आज भी हमारी सरकार जनसंख्या की समस्या को हल करने में सफल नहीं रही है और जनसंख्या अभी भी तीव्रगति से बढ़ती जा रही है। वास्तव में जनसंख्या की वर्तमान समस्या को हल करने के लिये एक बड़ी रचनात्मक नीति की आवश्यकता है जो दुर्भाग्य से हमारी सरकार बनाने में असफल रही है। हमारे देश में सरकार के द्वारा प्रजनन दर में गिरावट लाने के उपायों के दौरान जनसामान्य में शिक्षा का विस्तार तथा उनके जीवन स्तर में महत्वपूर्ण सुधार आदि प्रमुख

तत्वों की उपेक्षा की है, जबकि वास्तविकता यह है कि इन दो तत्वों की उपेक्षा के साथ विश्व में कहीं भी जनसंख्या वृद्धि की दर नहीं गिरायी जा सकी है।

हमारे देश में जनसंख्या को नियन्त्रित करने के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये एक ऐसे सामाजिक माहौल में परिवार नियोजन कार्यक्रम पर अधिक विश्वास किया गया कुल मिलाकर हमारे देश में अब तक सरकार की जनसंख्या नीति में निम्नलिखित महत्वपूर्ण कमियाँ रही हैं जिनके कारण सरकार को सफलता नहीं मिल सकी है।

1. **संतति निरोध के उपकरणों पर अनावश्यक जोर दिया जाना** —:

बी0 आर0 सेन के अनुसार :"भारत में समस्या को ठीक प्रकार से समझा ही नहीं गया है। अब तक इस विश्वास के आधार पर कार्यक्रम बनाये गये हैं कि संतति निरोध उपकरणों का उत्पादन बढ़ाकर और प्रतिबंधक अवरोधों को प्रोत्साहन देकर ही समस्या को हल किया जा सकता है। हमने जनसंख्या नीति पर कभी इस पहलू से विचार ही नहीं किया है कि ग्रामीण क्षेत्रों में जनसाधारण के जीवन स्तर को ऊँचा उठाया जायें, क्योंकि उनकी गरीबी उन्हें पुनरुत्पादन के लिये प्रेरणा देती है और यह वह वर्ग है जिसका जनसंख्या की समस्या को गम्भीर बनाने में सबसे ज्यादा योगदान है। भारतीय आयोजक तथा भारत सरकार शायद आर्थिक विकास और जनसंख्या वृद्धि के बीच में जो सम्बन्ध है, उसे भी सही प्रकार से समझ पाने में असमर्थ रहे हैं। यदि ऐसा न होता तो निवेश का स्वरुप भिन्न होता और कृषि पर आधारित उद्योगों को प्राथमिकता क्रम में ऊँचा स्थान दिया गया होता।"17

2. **परिवार कल्याण कार्यक्रम में अनिवार्य बंध्याकरण की अनुपयुक्तता** —:

इसमें संदेह नहीं है कि जन्मदर को नीचा लाना राष्ट्रीय दृष्टि से काफी आवश्यक है और इसे सरकारी आयोजन में ऊँची प्राथमिकता मिलनी चाहिये। दरअसल विकास और परिवार नियोजन कार्यक्रम प्रतियोगी न होकर एक दूसरे के पूरक है जो मिलकर जन्मदर को नीचा ला सकेंगे। इस सम्बन्ध में 'प्रवीन विसारिया' का निम्न कथन बहुत ही सन्तुलित विचार मालूम देता है कि बलात् नसबन्दियाँ करना उचित नहीं है।

जनसामान्य को समझाना तथा मौद्रिक–क्षतिपूर्ति करना एवं सामूहिक प्रेरणा देना ही सर्वश्रेष्ठ नीति होगी। परिवार को सीमित करने के लिये नसबन्दी की प्रभावशीलता के बावजूद प्रेरणाओं का आधार बच्चों की शिक्षा होना चाहिये ना कि नसबन्दी कराये जाने का सबूत। दूसरे शब्दों में व्यक्तिगत दम्पत्तियों को परिवार नियोजन की कोई सी भी विधि अपनायी जाने के लिये स्वतंत्र छोड़ दिया जाना चाहिये।''18

इस सम्बन्ध मे सरकारी दबाव न केवल अनैतिक और मानवीय मूल्यों के विरुद्ध है, बल्कि लोग इसका भारी विरोध करते है। भारत में आपात्कालीन स्थिति में बंध्याकरण के लिये सरकार द्वारा डाले गये दबाव के प्रति जिस तरह प्रतिक्रिया हुई उसका सम्पूर्ण परिवार नियोजन कार्यक्रम पर बुरा प्रभाव पड़ा।

3. परिवार नियोजन के सम्बन्ध में बदलते हुये दृष्टिकोण –:

''पिछले साढ़े पांच दशकों के दौरान अपनाये गये परिवार कल्याण के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि जन्मदर को 25 प्रतिहजार पर लाने का लक्ष्य तब से लेकर अब तक अपनी जगह बना हुआ है अर्थात् उसे प्राप्त नहीं किया जा सका है और इसका मुख्य कारण उच्च स्तर पर लिये गये निरंकुश, स्वेच्छाचारी एवं गैर रचनात्मक स्वभाव के निर्णय रहे है। वास्तव में भारत में परिवार कल्याण योजनायें इसलिये असफल रही है कि निर्णय लेने के सम्बन्ध के एक के बाद एक भयंकर भूल की गई जो आगे आने वाले निर्णयकर्ताओं द्वारा बढ़ायी जाती रही।''19

1950 के दशक के आरम्भ में पश्चिमी देशों की नकल में हमारे देश में भी जनसंख्या नियन्त्रित करने के लिये 'क्लीनिक उपागम' अपनाया गया परन्तु भारत में विद्यमान परिस्थितियाँ यूरोप और अमेरिका की परिस्थितियों से बहुत भिन्न हैं। अतः यह नीति कामयाब न हो सकी। निर्णय लेने वालों को जब यह अनुभव हुआ कि क्लीनिक उपागम परिवार नियोजन के कार्यक्रम को नहीं बढ़ा पायेगा तो 'एक्सटेन्शन उपागम' अपना लिया जिसे अमेरिका की नकल में लागू किया गया। जब यह नीति भी असफल रही तो अधिकारिक स्तर पर परिवार नियोजन कार्यक्रमों में बल प्रयोग किया जाने लगा

और एक नया दृष्टिकोण विकसित हुआ जिसे "कैम्प उपागम" कहा जा सकता है जिसका सबसे अधिक गन्दा रुप आपातकाल के दौरान देखने में आया।

डी0 बनर्जी के अनुसार राजनीतिक नेतृत्व ने परिवार नियोजन कार्यक्रम को भंयकर रुप से बिगाड़ दिया है। उनके मतानुसार जब देश में सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक परिवर्तन होगे तभी देश के परिवार नियोजन कार्यक्रम में जरुरी परिवर्तन होगें और इसके फलस्वरुप जन्मदर नीची हो सकेगी।"

इसके अतिरिक्त हमारे देश में जनता के लिये यौन शिक्षा एवं जनसंख्या शिक्षा की आवश्यकता की ओर भी ध्यान नहीं दिया है बल्कि इनकी उपेक्षा ही की गयी है और यही कारण है कि जनसंख्या वृद्धि का खतरा हमारे सिर पर मंडरा रहा है।

भारतीय जनसंख्या नीति –:

जनांकिकी दृष्टिकोण से किसी देश की जनसंख्या चाहे वह अविकसित हो या विकसित कुछ परिस्थितियों में एक गम्भीर समस्या बन सकती है। आज संसार के सम्मुख जनसंख्या विस्फोट की स्थिति है। जनसंख्या की दूसरी समस्या अनुत्पादक आयु वाले लोगों की अधिकता है। लेकिन सबसे प्रमुख जनसंख्या की समस्या उसकी गुणात्मक एवं संख्यात्मक समस्या है। गुणात्मक दृष्टिकोण से समाज में उत्पन्न होने वाले प्रत्येक बच्चे को समाज में स्वस्थ रुप से पलने का अधिकार है। अतः अन्धापन, बहरापन और अन्य प्रकारों के मानसिक विकारों को दूर करके समाज की सुन्दर तस्वीर प्रस्तुत की जा सकती है। संख्यात्मक दृष्टिकोण से देश के लिये अनुकलतम जनसंख्या का होना वांछित है। "अनुकूलतम संख्या वह है जो अधिकतम उत्पादन, उच्च जीवन स्तर, राजनैतिक स्थिरता, आर्थिक सुरक्षा, पर्याप्त स्वतन्त्रता और सांस्कृतिक मूल्यों को प्राप्त करने में सहायता देती है। सर जूलियन हक्सले के अनुसार – "आधुनिक सभ्यता को सुरक्षित रखने के लिये अयोग्यों की आवश्यकता नहीं है।"20

भारत के लिये संख्यात्मक अनुकूलतम आकार क्या होना चाहिये इस पर अनेक मतभेद है परन्तु भारतीय जीवन स्तर अत्यन्त निम्नकोटि का है इस पर कोई

मतभेद नहीं है, अतः जनसंख्या स्तर को ऊँचा उठाना भारतीय सरकार के लिये महत्वपूर्ण है। गुणात्मक दृष्टिकोण से स्तर क्या होना चाहिये ? आदि के निर्धारण एवं उनकी प्राप्ति हेतु नीति निर्माण के लिये निम्न बातों पर ध्यान देना आवश्यक है। इस बात को ध्यान मे रखते हुये भारत सरकार ने निम्न बिन्दुओं पर विचार किया है।

भारतीय जीवन - स्तर –:

भारत में औसत नागरिक का जीवन स्तर क्या है ? जीवन स्तर के अन्तर्गत सभ्य मानव की मूलभूत आवश्यकताओं का उपयोग स्तर लिया जाता है जैसे –खाद्यान्न, वस्त्र, आवास के अवसर, स्वास्थ्य सुविधायें, आराम एवं कुछ सांस्कृतिक सुविधायें ली जाती हैं। भारतवर्ष में इनसे सम्बन्धित आधुनिक आँकड़े उपलब्ध नहीं है, परन्तु भारत में सामान्य जनता के जीवन स्तर पर विशेषकर ग्रामीण जीवन स्तर पर दृष्टि डालने से उनकी दीन–हीन दशा का अनुमान लगाया जाता है। भारत की पंचवर्षीय योजनाओं के द्वारा जीवन–स्तर को ऊँचा उठाने का प्रयास किया जा रहा है। परन्तु अभी भी अन्य देशों की तुलना में यह बहुत कम है।

1. खाधान्न का उचित वितरण भारत की सबसे बड़ी समस्या है –: संयुक्त राष्ट्र संघ की एक रिपोर्ट के अनुसार पांच में से चार या विश्व की 80 प्रतिशत जनसंख्या अर्द्ध भूखी है। ये लोग अमरीकन, कनेडियन या यूरोपीय कुटुम्बों के भोजन के 'डिशो' को निकट भविष्य में प्राप्त नहीं कर सकते। भारतीयों को 1960 में केवल 1950 कैलोरी ऊर्जा प्रतिदिन प्राप्त होती थी, जबकि आवश्यकता 2500 से 3000 कैलौरीज की है। इसके विपरीत कनाडा, संयुक्त राज्य अमरीका और यूरोप के निवासियों को प्रतिदिन 3000–3200 कैलोरीज ऊर्जा मिलती है। इस दृष्टिकोण से भारत की 50 मिलियन जनता को असन्तुलित आहार प्राप्त होता है असन्तुलित आहार के कारण भारत में व्यापक रुप से अस्वस्थता, बीमारी आदि पायी जाती है। जिससे राष्ट्रीय उत्पादकता, मानसिक एवं शारीरिक क्षमता में ह्यास होता है।

2. 'वस्त्रों' की आवश्यकता भारतीय गर्म जलवायु के कारण कम होती है लेकिन कई मिलियन भारतीय अर्द्ध नग्न है, प्रतिवर्ष प्रति व्यक्ति भारत में वस्त्रों का उपयोग बीस मीटर से भी कम है। जलवायु और कृषि की प्रधानता को देखते हुये उपयोग का स्तर काफी कम है।

3. 'आवास' की व्यवस्था भी उचित नहीं है। भारत में महलों और बड़े आवासों में करीब एक मिलियन से कम लोग रहते है, लेकिन अधिकांश लोग विशेषकर सम्पूर्ण ग्रामीण जनता को आवास के लिये आवश्यक न्यूनतम आवश्यकतायें भी उपलब्ध नहीं है। शहरी क्षेत्रों में जनसंख्या का दबाव के कारण जमीन बहुत मंहगी हो गयी है। फलस्वरूप शहर बहुत घने हो गये हैं। भारत में जनसंख्या वृद्धि के अनुपात से बहुत कम आवासों की व्यवस्था की जा रही है, साथ ही साथ प्रतिवर्ष कई मकान बाढ़ और मरम्मतों के अभाव में गिर रहे हैं। फलस्वरूप शहरों के फुटपाथों पर लाखों भारतीय सोते है।

4. जहाँ तक 'शिक्षा' का सम्बन्ध है विश्व की आधी आबादी साक्षर नहीं है। विश्व की दो तिहाई आबादी एशिया में रहती है और इस आबादी का 70 प्रतिशत अशिक्षित है। भारतीय सरकार, शिक्षित शिक्षिकों, पाठ्य पुस्तकों, शालाभवनों और उपकरणों की पूर्ति करने में कठिनाई अनुभव कर रही है। प्रजातन्त्र की रक्षा के लिये शिक्षा आवश्यक है।

संक्षेप में पिछले दो दशकों में भारत के कृषि और औद्योगिक उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि हुई है, परन्तु भारतीय जनता के जीवन स्तर में विशेष सुधार नहीं हुआ है। भारतीय गरीबी का मुख्य कारण प्रति व्यक्ति आय है। अतः भारत की मूलभूत आर्थिक समस्या जनांकिकी की ही है, जिसे उचित जनसंख्या नीति के द्वारा हल करने का प्रयास किया जा रहा है।

ऐसी परिस्थितियों में भारत के लिये कौन सी उचित जनसंख्या नीति होगी 'मिरदाल' की जनसंख्या नीति की परिभाषा इस ओर संकेत करती है –

"विस्तृत अर्थ में जनसंख्या नीति वस्तुतः सामाजिक नीति ही है....... जनसंख्या के कार्यक्रम को स्वयं सामाजिक जीवन के सम्पूर्ण ढ़ाँचे के अनुरुप कार्य

करना चाहिये, उसे सामाजिक नीतियों पर प्रभाव डालना चाहिये और अन्य नीतियों से प्रभावित होना चाहिये। जनसंख्या संकट का यदि हम विवेक से सामना करना चाहते है तो हमें समस्त सामाजिक उद्देश्यों व कार्यक्रमों पर विचार करना पड़ेगा।''21

जबकि 'जेराव' के अनुसार ''जनसंख्या की समस्या के हल हेतु जो उपाय किये जा रहे है, उन्हें ही जनसंख्या नीति के अन्तर्गत लिया जा सकता है। इस नीति में मुख्यतः जनसंख्या वृद्धि अथवा निरोध दोनों ही शामिल है।''22

देश की जनसंख्या के आकार एवं संगठन में मानसून की असफलता, दवाई के अविष्कारों, मशीनों के आविष्कार, भूकम्प या युद्ध आदि के कारण परिवर्तन उत्पन्न होता है। सरकारी विधानों के द्वारा देश की जनसंख्या के आकार एवं संगठन पर नियन्त्रण रखने का प्रयास किया जाता है। डा0 चन्द्रशेखर के अनुसार ''जनसंख्या नीति प्रजातांत्रिक और धनात्मक होनी चाहिये। अतः उन्होंने भारत जैसे अर्द्ध विकसित देशों की जनसंख्या नीति के अन्तर्गत निम्नलिखित पांच तत्वों को शामिल किया है –

1. वैज्ञानिक कृषि विकास।
2. बड़े पैमाने पर औद्योगीकरण।
3. स्थानीय दबाव को कम करने के लिये अन्तरक्षेत्रीय गतिशीलता।
4. आवास।
5. जन्मदर पर नियन्त्रण। 23

1. **कृषि विकास** –:

पंचवर्षीय योजनाओं के द्वारा भारतवर्ष में कृषि उत्पादन बढ़ाने का प्रयास किया जा रहा है तथापि इस लक्ष्य में आंशिक सफलता ही प्राप्त हुई है। कई विधियों को अपनाकर कृषि में प्रति एकड़ एवं प्रति व्यक्ति कृषि उत्पादन बढ़ाने का प्रयास किया जा रहा हे। जापान, कनाडा और संयुक्त राज्य अमेरीका की तुलना में प्रति इकाई कृषि उत्पादन क्षमता भारत में बहुत कम है।

भारत कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिये अकृषि जोतो पर कृषि करने को प्रोत्साहित कर रहा है। फालतू पड़ी भूमि पर खेती करने कर प्रयास किया जा रहा है अतः विनियोग की मात्रा इस क्षेत्र के लिये बढ़ रही है।

2. **औद्योगीकरण –:**

भारत में स्वतन्त्रता के पश्चात् निजी और सार्वजनिक क्षेत्र का पर्याप्त विकास किया गया है। भारत का औद्योगीकरण मुख्य तीन बातों के लिये वांछित है पहला ग्रामीण क्षेत्रों के लिये अर्द्ध बेकारों, छिपे बेकारों आदि को कारखानों या छोटे छोटे ग्रामीण उद्योगों में रोजगार दिया जा सकता है, दूसरा बड़े पैमाने में आवश्यक वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन कुशल श्रमिक तथा क्लिष्ट मशीनें करती हैं जिससे प्रति व्यक्ति उपभोग और आय दोनों में वृद्धि होती है, तीसरा नियोजित और सफल औद्योगीकरण के कारण नये नगरीय ढ़ाँचों का निर्माण होता है जिससे शिक्षा, प्रशिक्षण छोटे नियोजित परिवारों आदि का विस्तार होता है। अतः भारत को औद्योगीकरण की गति अवश्य तेज करनी चाहिये साथ ही उत्पादकता दर में वृद्धि करना चाहिये।

3. **अन्तरक्षेत्रीय श्रम गतिशीलता –:**

भारतीय जनता घर पर ही रहना पसन्द करती है अगतिशीलता के पीछे भारतीय समाज की क्लिष्ट संरचना है जिसके अन्तर्गत जाति प्रथा, विभिन्न भाषा, धर्म, भोजन, प्रान्तीय विभिन्नता आदि है, स्वतन्त्रता के पश्चात् ये तत्व दूर न होकर और कठोर हुये हैं। भारतीय सरकार का "भावात्मक राष्ट्रीय एकता का नारा भी सफल नहीं हुआ है। अतः भारत के कुछ प्रान्तोंमें जनसंख्या दबाव बहुत अधिक है तो कुछ प्रान्तों में कम।

4. **भारतीय उत्प्रवासन या वर्हिगमन –:**

जनसंख्या के दबाव को हल करने के लिये डा0 मुखर्जी और डा0 चन्द्रशेखर ने दूसरे देशों में जैसे – अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, ब्राजील, कनाडा आदि देशों में प्रवास का सुझाव दिया है आधुनिक समय में अन्तराष्ट्रीय प्रवास का सुझाव अव्यावहारिक

हो गया है, क्योंकि सभी राष्ट्रों ने प्रवास पर प्रतिबन्ध लगा दिया है।

5. **जन्म दर पर नियन्त्रण** –:

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् से ही भारतीय सरकार परिवार नियोजन को प्रोत्साहन दे रही है। भारत सरकार ने प्रथम पंचवर्षीय योजना में स्वैच्छिक परिवार परिसीमन की नीति अपनाई तथा इस पर 65 लाख रुपये खर्च किये जाने का उद्देश्य था परन्तु 18.5 लाख रुपये ही खर्च किये जा सके।

भविष्य के लिये डा0 चन्द्रशेखर ने कुछ महत्वपूर्ण बातों का उल्लेख इस संदर्भ में किया है जैसे –

1. जितने परिवार नियोजन सर्वेक्षण किये गये उससे पता चलता है कि सब जातियों, धर्मो को मानने वाले और आयु वर्गो के 70 प्रतिशत माता–पिता परिवार नियोजन के पक्ष में है। लेकिन और अधिक परिवारों को चिकित्सालयों में प्रशिक्षण और जानकारी देना आवश्यक है।
2. सरकार को और अधिक व्यय करना चाहिये तथा सरकार को बोनस, इनाम तथा अन्य प्रकार के प्रलोभनों को शल्य चिकित्सा के लिये देना चाहिये।
3. जैसा कि सर जूलियन हक्सले ने सुझाव दिया है कि जनसंख्या नियंत्रण मंत्रालय की प्रथक स्थापना करनी चाहिये जिससे जनसंख्या सम्बन्धी समस्याओं पर विशेष ध्यान दिया जा सके।

REFERENCES

1. Myrdal A. : Nation and family . P . 101

2. Bhende & Kanitkar : Principales of population studies 1984 P. 494

3. The Ad-Hoc : Consultative group of experts on population policy - Set up by the population commission of the united nations economic and social counsil

4. The meaning of population policy. Fifth International planned pareuthood Confernece 1955 P. 16

5. Jain P.C. : Indian economics. P. 203

6. Pant Jawanchandra : Demography 1990. 91 P. 577

7. Ibid : p. 578

8. Gurnar Myradal : Population A problem for Demography.P. 164

9. First Five year plan Govt. of India . P-18

10. Ibid : P.19

11. Second Five year plan Govt. of India 1956 p.7

12. Third Five year plan planning commission. New Delhi 1991.P.25

13. Ibid : P.675

14. Forth Five year plan Govt. of India P. 9

15. Pratiyogita Darpan March 1994

16. Thompson & Lowis : Population problem .P.553

17. Sen B. R. : Lecture Delivered at Conference on population policy and programme. December 19-23, 1969

18. Visaria praveen : Recent traindes in Indian population policy economic and poltical weekly August 1976

19. Banerji D. : Health Services and population policies. Economic and political weekly. 1976

20. Huxley Julian : UNESCO Its purpose and philosophy (washington D.C.) 1947

21. Myradal : Population A problem for Demography p.164

22. The meaning of population policy fifth International planned pareuthood conference 1955.P.16

23. Chandr Sekhar S. : population and planned Pareuthood in India Allen & unwin. London 1965. P. 86

अध्याय - षष्ठ

जनसंख्या शिक्षा

जन से जन परस्पर मिलकर निर्मित जन समुदाय का आकार जब निरन्तर बढ़ता ही गया तो उसे जनसंख्या के नाम से गिनने की आवश्यकता हुई। सामुदायिक जीवन के प्रारम्भ से ही मानव इस बात का अनुभव करता आ रहा है कि समाज में जनसंख्या की वृद्धि और कमी से तत्कालीन समाज की संरचना, स्वरुप, आकार और प्रकार में परिवर्तन हो जाता है। समूह की सदस्य संख्या अधिक हो जाने पर जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं–भोजन, वस्त्र, आवास तथा यौन संतुष्टि की माँग बढ़ जाती है और जब उस माँग की पूर्ति उचित मात्रा में, समय पर नहीं हो पाती तो हर सदस्य का जीवन अभावग्रस्त और संघर्षमय बन जाता है। परिणामस्वरुप सामाजिक ढाँचे में अनेक परिवर्तन होते चले जाते हैं। अतः जनसंख्या वृद्धि से जनसंख्या की लघुतम इकाई–व्यक्ति से लेकर परिवार, समाज, देश एवं सम्पूर्ण विश्व की प्रत्येक क्रिया प्रतिक्रिया प्रभावित होते है जिसकी उपेक्षा स्वयं जनसंख्या के लिए घातक तथा विनाशक रूप धारण कर विकराल विस्फोटक स्थिति का निर्माण कर लेती है। वह स्थिति होगी–जब जन ही जन का जनक नहीं बल्कि स्वयं भक्षक बन जायेगा। प्रकृति के संतुलन नियम के अनुसार कई जीव–जन्तु स्वयं की तीव्र गति से बढ़ती हुई संख्या को नियन्त्रित करने के लिए–ताकि स्वयं के जीवन की रक्षा हो सके–स्वयं के अंश से उत्पादित संतति का भक्षण कर लेते हैं और अपनी सुख सुविधा के अनुसार अपनी संख्या के सन्तुलन को बनाए रखते हैं। परन्तु यह 'सन्तुलन नियम' मानव जाति और उसकी संतति पर लागू नहीं हो सकता। कारण मानव कभी भी अपनी संतति का भक्षण नहीं कर सकता। अतएव आवश्यकता है कि मानव अपनी संख्या के संतुलन को बनाये रखने के लिए अपने स्वयं के प्रजनन को नियन्त्रित कर ले इसके लिए 'जनसंख्या शिक्षण' का अध्ययन अनिवार्य होना चाहिए।

एक अनुमान के अनुसार 2010 तक सबसे अधिक जनसंख्या वाले 50 शहरों में से जो 40 शहर विकासशील देशों में होगें उन महानगरों में से अधिकतम नगर भारत में होगें, जिनमें कुछ की आबादी दो से तीन करोड़ तक होने की सम्भावना है। 'एशियाई–पेसिफिक देशों की' एस्केप कांफ्रेस, कोलम्बो 1982 के विचारकों तथा सेक्रेटरी एस0 ए0 किब्रिया–ने इस बढ़ती हुई विकट जनसंख्या समस्या को सीधे तथा तुरंत प्रभावित कर अंकुश में लाने वाले कुछ कठोरतम एवं अनिवार्य उपायों को क्रियान्वित करने का सुझाव दिया जिस पर हमें विशेष रुप से न केवल ध्यान देना चाहिए बल्कि तुरन्त ही जनसंख्या वृद्धि को नियन्त्रित करने के लिये कदम उठाने चाहिए। कारण–हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि विश्व की मात्र 1/2 प्रतिशत भूमि पर बसे भारत में सन् 2001 तक विश्व की कुल जनसंख्या का 16.87 प्रतिशत भाग सांस ले रहा है। अतः जनसंख्या शिक्षण का अध्ययन नई पीढ़ी के लोगों के लिए आवश्यक होना चाहिये। देश की अप्रत्याशित बढ़ती हुई जनसंख्या की समस्याओं का सामना करने के लिए जनसंख्या शिक्षण विषय का एक महत्वपूर्ण गहन, गम्भीर, दीर्घकालीन भूमिका अदा कर सकेगा।

जनसंख्या शिक्षा का अर्थ एवं परिभाषा -:

जनसंख्या शिक्षा वह शिक्षा है जो विश्व, देश तथा राज्य की जनसंख्या के सभी पक्षों का ज्ञान दें। जनसंख्या और उसकी समस्याओं के प्रति ऐसी धारणाओं का तथा व्यवहार का विकास करने में सहायक हो जो व्यक्ति और राष्ट्र के लिए हितकारी हो। परन्तु इसका अर्थ सेक्स शिक्षा से एकदम भिन्न है। इस सम्बन्ध में जनसंख्या शिक्षा के प्रथम परिचायक कोलम्बिया यूनिवर्सिटी के टीचर्स प्रोफेसर स्लान. आर. वेलेंड *(Prof. Sloun R. Wayland)* ने स्पष्ट रुप से कहा भी है कि –" *There should be no confusion in understanding the meaning of population education as it is quite different from sex education or education for family living.*"1

जनसंख्या शिक्षा वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा विद्यार्थी जनसंख्या प्रक्रिया की प्रवृत्ति एवं अर्थ, जनसंख्या की विशेषतायें, जनसंख्या परिवर्तन के कारण एवं परिणाम

तथा इन परिवर्तनों का अपने परिवार, अपने समाज तथा विश्व पर पड़ने वाले प्रभावों के बारे में ज्ञान प्राप्त करता है।''2

अतः जनसंख्या शिक्षा वह शिक्षा है जो जनसंख्या से अथवा मानव शक्ति या संसाधन से सम्बन्धित है। इस शिक्षा में जनसंख्या के आकार, जनसंख्या की वृद्धि या ह्यास, जनसंख्या संरचना, जनसंख्या में लैंगिक अनुपात, विवाह की आयु आदि विषयों का ज्ञान कराया जाता है। यह वह शिक्षा है जिससे न केवल आँकड़ो का ही पता चलता है बल्कि जनसंख्या वृद्धि या ह्यास के कारणों तथा उसके सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों की जानकारी भी प्राप्त की जा सकती है। इसी अनुक्रम में यदि जनसंख्या वृद्धि की गति तीव्र है और उसके फलस्वरुप मानव जीवन के विभिन्न पहलुओं पर कुप्रभाव पड़ रहा है तो हम यह भी जानकारी कर सकते हैं कि जनसंख्या वृद्धि की गति को कैसे कम किया जाये।

संक्षेप में, जनसंख्या शिक्षा अत्याधिक जनसंख्या वृद्धि से उत्पन्न समस्याओं के विषय में गहन ज्ञान, समझ एवं जागरुकता प्रदान करता है, जिसे प्राप्त करके व्यक्ति स्वयं अपने–अपने परिवार, समाज, समुदाय, देश और विश्व के जीवन–स्तर को उच्च एवं समृद्ध बना सकता है।

''राज्य शिक्षा संस्थान उत्तर प्रदेश'' ने जनसंख्या शिक्षा की परिभाषा को इस प्रकार समझाया है, जनसंख्या शिक्षा एक शैक्षिक प्रयास है जिसके द्वारा विभिन्न वर्गो, विशेषकर छात्र–छात्राओं, की विश्व के परिप्रेक्ष्य में देश प्रदेश व क्षेत्र की जनसंख्या स्थिति, जनांकिकी के प्रमुख तत्वों, जनसंख्या और पर्यावरण के पारस्परिक सम्बन्ध, जनसंख्या वृद्धि का आर्थिक एवं सामाजिक विकास पर प्रभाव आदि का बोध कराया जा सकेगा। साथ ही जनसंख्या वृद्धि से उत्पन्न समस्याओं और जनसाधारण के जीवन–स्तर पर पड़ने वाले प्रभावों के विषय में भी जागरुक कराया जा सकेगा। अतः जनसंख्या शिक्षा न तो परिवार नियोजन सम्बन्धी कार्यक्रम है, न यौन शिक्षा और न कोई प्रचार या विशिष्ट दीक्षा सम्बन्धी कार्यक्रम है।

1970 बैंकाक में यूनेस्को द्वारा आयोजित एक गोष्ठी "जनसंख्या तथा पारिवारिक जीवन शिक्षण" में व्याख्या इस प्रकार की गई कि " जनसंख्या शिक्षा एक ऐसा शैक्षणिक कार्य है जो शिक्षार्थियों को परिवार समाज राष्ट्र एवं समग्र विश्व की आबादी की परिस्थिति के विषय में स्पष्ट विचार प्रस्तुत करता है तथा इस संदर्भ में स्वयं के और देश के प्रति अपने कर्त्तव्य व्यवहार और उत्तरदायित्व की समझ व अनुभूमि विकसित करता है।"3

"अगस्त 1969 में बम्बई में राष्ट्रीय सेमिनार का आयोजन हुआ, जिससे जनसंख्या शिक्षण के विषय में इस प्रकार स्पष्टता की गई कि जनसंख्या शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य यह होना चाहिए कि जिससे विद्यार्थी भली प्रकार समझ जाए कि परिवार के आकार को नियन्त्रण में रखा जा सकता है। जनसंख्या नियन्त्रण से देश के जीवन–स्तर को ऊँचा उठाने और समृद्ध बनाने में सहयोग मिलता है। जनसंख्या शिक्षण से यह जागरुकता भी उत्पन्न की जा सकती है कि परिवार के सदस्यों के सर्वांग सुखों, स्वास्थ्य आर्थिक स्थिरता युवा पीढ़ी के आशामय भविष्य के लिए आज भारतीय परिवार को दो या तीन बच्चों के जन्म से ही समझौता करना चाहिए।"4

व्यक्ति, देश, समाज का कल्याण इसी में निहित है कि कुटुम्ब का स्वरूप छोटा है। उपरोक्त सभी व्याख्याओं के गहन, गम्भीर अध्ययन के पश्चात् निम्न बातें स्पष्ट होती है –

1. जनसंख्या शिक्षा एक शैक्षणिक प्रक्रिया है।
2. जनसंख्या शिक्षा विद्यार्थियों को जनसंख्या व उसकी गतिविधियों के विषय में जागरुक बनाती है।
3. जनसंख्या शिक्षा जनवृद्धि के कारणों एवं उससे उत्पन्न होने वाले भंयकर परिणामों के विषय में विस्तृत जानकारी प्रदान करती है।
4. विद्यार्थियों को गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करने के बाद परिवार के संदर्भ में विवेकपूर्ण समझदारी पूर्वक निर्णय लेने में उचित मार्ग दर्शन करता है।

5. जनसंख्या वृद्धि के कारण जीवन–स्तर पर पड़ने वाले कुप्रभाव को दर्शाता है।
6. जनसंख्या शिक्षा द्वारा विद्यार्थियों में यह आत्मसात् कराना है कि वर्तमान काल में कम संतति देश भक्ति ही नहीं वरन् आने वाली पीढ़ी के प्रति नैतिक कर्त्तव्य भी है।

जनसंख्या शिक्षा के द्वारा हम समझ सकते है कि जनवृद्धि से हमारे देश के लिए क्या–क्या नवीन समस्यायें उत्पन्न होगी तथा व्यक्तिगत जीवन स्तर पर क्या कुप्रभाव पड़ेगा। इसका मुख्य उद्देश्य यह है कि आज की युवा पीढ़ी तथा कल की आने वाली पीढ़ी को इस बात के लिए पहले से ही तैयार करना है कि वे अपने परिवार व संतान के विषय में उचित ढ़ंग से विचार कर सके, विवेकपूर्ण निर्णय ले सकें।

जनसंख्या शिक्षा का क्षेत्र एवं विषय सामग्री -:

हौसर (Houser) ने 'Population Gap in the curiculam' में जनसंख्या शिक्षा के अध्ययन क्षेत्र के निम्नलिखित विषयों को व्यक्त किया–

1. जनसंख्या वृद्धि : इतिहास–भूतकाल से लेकर वर्तमान समय तक।
2. जनसंख्या वृद्धि : प्रवृति–भविष्य के लिए दृष्टिकोण, जन्मदर, मृत्यु–दर जनसंख्या का संक्रमण सिद्धान्त।
3. जैविक और जातीय ज्ञान।
4. जनसंख्या संयोजन : प्रवृत्ति–भविष्य के लिये दृष्टिकोण, आयु, लिंग, सामाजिक आर्थिक, सांस्कृतिक विशिष्टताएं।
5. जनसंख्या का आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक तथ्यों के संदर्भ में ज्ञान।
6. जनसंख्या का वितरण।
7. जनसंख्या अनुसंधान की पद्धतियां।

'नेशनल कौंसिल ऑफ एजूकेशनल रिसर्च' ने 1970 में एक 'वर्कशॉप' का आयोजन किया, उसमें जनसंख्या शिक्षा के विषयों की स्पष्टता निम्न प्रकार की गई है–:

1. जनसंख्या वृद्धि।
2. स्वास्थ्य पोषण और जनसंख्या।
3. जैविक तथ्य, पारिवारिक जीवन और जनसंख्या।
4. जनसंख्या और आर्थिक विकास, सामाजिक विकास।

उपरोक्त बातों को ध्यान में रखते हुये यही स्पष्ट होता है कि जनसंख्या शिक्षा का मुख्य विषय जीवन स्तर को उन्नति की ओर ले जाना है। आज जनसंख्या शिक्षा की विषय–सामग्री में निम्नलिखित तथ्यों का समावेश किया जाता है –

1. विश्व में जनसंख्या वृद्धि के इतिहास का सामान्य ज्ञान तथा भारत की जनसंख्या वृद्धि के इतिहास का विशेष अध्ययन, जनसंख्या वृद्धि के कारण, प्रवृत्ति तथा इससे उत्पन्न समस्याओं का अध्ययन।
2. जनसंख्या में तीव्र गति से होने वाली वृद्धि का आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनैतिक पहलुओं का देश के आर्थिक विकास पर पड़ने वाला प्रभाव।
3. जनसंख्या में तेजी से होने वाली वृद्धि के परिणामस्वरुप परिवार के बड़े आकार का व्यक्ति, उसके पारिवारिक जीवन तथा रहन–सहन के स्तर पर प्रभाव।
4. जनसंख्या में होने वाली तीव्र वृद्धि का पर्यावरण, खाद्यान्न, प्राकृतिक संसाधनों व जीवन–स्तर पर प्रभाव।
5. प्रजनन क्रिया से सम्बन्धित प्राथमिक जानकारी।
6. जन्मदर, मृत्युदर, प्रवास तथा जनसंख्या वृद्धि से सम्बन्धित विस्तृत जानकारी।
7. जनसंख्या नीति–अर्थ, उद्देश्य तथा क्रियान्वयन से सम्बन्धित जानकारी।

वास्तव में समस्त विश्व में विशेषकर विकासशील देशों की विशिष्ट परिस्थितियों के संदर्भ में इस विषय के अन्तर्गत जन जीवन को समृद्ध बनाने के लिए जनसंख्या शिक्षा को अत्याधिक महत्व दिया गया है, अतएव इसी से सम्बन्धित अनेक पहलुओं का अध्ययन इसकी विषय सामग्री बन जाता है, जैसे – जनसंख्या का इतिहास, स्थिति, जनसंख्या विस्फोट , जनसंख्या वृद्धि का सामाजिक, आर्थिक, प्राकृतिक सम्पत्ति

व राजनैतिक, सांस्कृतिक जीवन पर प्रभाव जनसंख्या वृद्धि का प्राकृतिक सम्पत्ति व पर्यावरण पर कुप्रभाव प्रजनन क्रिया को नियन्त्रण में लाने के लिए जातीय ज्ञान, जनसंख्या नीति आदि। जनसंख्या वृद्धि से उत्पन्न अनेक समस्याओं जैसे–आवास, जल, भोजन, वस्त्र, शिक्षा, चिकित्सा, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार व असामाजिक तत्वों की समस्या आदि का अध्ययन किया जाता है।

व्यक्ति का आचरण सामाजिक, जैविक वातावरणीय परिस्थितियों में उद्भूत एक संकलन है अर्थात् व्यक्तित्व है जो तैयार होने पर स्वयं व्यक्ति उसके परिवार समाज व साथ ही समग्र जगत को प्रभावित करता है। व्यक्ति स्वयं के समाज का अभिन्न अंग मानते हुए स्वयं अपने परिवार एवं अपने देश के भविष्य के संदर्भ मे तर्क संगत और उत्तर दायित्व पूर्ण निर्णय ले सकें, इसके लिए उसमें समझ, शक्ति, विवेक, चतुरता, संवेदनशीलता होना परमावश्यक है। जनसंख्या शिक्षा मात्र छोटे या बड़े प्रकार के परिवारों का स्वरुप निश्चित करने का आयोजन नहीं है, वरन् यह व्यक्ति को इस बात के लिए जागरुक एवं शिक्षित बनाने की प्रक्रिया है जिसके द्वारा वह यह ज्ञान प्राप्त कर सके कि जनसंख्या की वृद्धि जीवन स्तर एवं वातावरण इन तीनों का निकट का सम्बन्ध है। अर्थात् जनसंख्या वृद्धि वातावरण एवं जीवन स्तर दोनों को ही बुरी तरह प्रभावित करती है। जीवन स्तर का अवलम्बन विशेष रुप से खाद्य सामग्री, पर्याप्त वस्त्र, शुद्ध पेय जल, शुद्ध वायु, शक्ति के साधन एवं भूमि आदि जीवन के अनेक स्रोतों पर आधारित है। इसी प्रकार शिक्षा की सुविधाएं, रोजगार, चिकित्सा सम्बन्धी सुविधाएं एवं आर्थिक विकास आदि जीवन स्तर को बनाने में आधार स्तम्भ बनते है। जब जनवृद्धि अति तीव्र गति से बढ़ती है तो उपरोक्त जीवन स्रोतों की कमी होती जाती है क्योंकि सभी स्रोतों में अधिक से अधिक भागीदारी के अधिकारी बढ़ते जाते है, परिणामस्वरुप जीवन स्तर निम्न से निम्नतर बनता चला जाता है।

जनसंख्या वृद्धि के कारण देश में अपेक्षाकृत अधिक खाद्य सामग्री, वस्त्र, आवास, विद्यालय, स्वास्थ्य सम्बन्धी सुविधाएं, यातायात के साधन, अधिकाधिक रोजगार

के अवसरों की आवश्यकता खड़ी होती जाती है अर्थात् जनसंख्या वृद्धि का जीवन स्तर पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। यह समझ, ज्ञान उन किशोर बच्चों को देना है जो भविष्य में इस दुर्घटना का शिकार होने जा रहे है।

जनसंख्या शिक्षा का उद्देश्य -:

जनसंख्या शिक्षा मनुष्य को उसी प्रकार शक्ति प्रदान करती है जिससे वह चिन्तन, मनन कर अपने स्वास्थ्य, समाज एवं देश के हित को समझ सके। आज हमारा देश जनसंख्या वृद्धि की विकराल समस्या से जूझ रहा है। जनसंख्या शिक्षा ही एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा इस चुनौती का सामना किया जा सकता है। जनसंख्या शिक्षा के विषय की उपयोगिता सिद्ध करने की ऐसी आवश्यकता नही हैं। भारत में प्राचीन समय में ही जनसंख्या शिक्षा प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रुप से न केवल सम्पूर्ण शिक्षा पद्धति में सम्मिलित रही है। बल्कि विभिन्न धार्मिक एवं आध्यात्मिक ग्रन्थों, पुस्तकों में भी इसके उदाहरण मिलते हैं। जनसंख्या शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्य माने जा सकते हैं –

1. जनसंख्या शिक्षा सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक जीवन के विभिन्न पहलुओं पर जनसंख्या का जो प्रभाव पड़ता है उसका अध्ययन एवं स्पष्टीकरण करती है। जनसंख्या की प्रक्रिया और उसकी वृद्धि के परिणामों का आभास कराती है।
2. व्यक्ति व कुटुम्ब पर बढ़ती हुई जनसंख्या के प्रभाव को समझना एवं पारस्परिक सहयोग और उत्तरदायित्व की भावना विकसित करना है।
3. जनसंख्या शिक्षा में जनांकिकी के सिद्धान्त, परिवर्तन एवं कार्य कलापों का संज्ञान जैसे जन्मदर, मृत्युदर, शिशु मृत्युदर, जनसंख्या वृद्धिदर आदि की विस्तृत जानकारी, इन दरों की कैसे गणना की जाती है और क्या आवश्यकता है आदि विषयों का ज्ञान करना।
4. युवा–वर्ग में जनसंख्या की वर्तमान वृद्धि, उसकी स्थिति एवं कारणों की जानकारी देना।

5. मानव—जीवन के सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक पहलुओं पर बढ़ती जनसंख्या के कुप्रभाव की जानकारी कराना तथा विकास के कार्यक्रमों की महत्ता बतलाना।
6. बढ़ती हुई जनसंख्या की विषम परिस्थिति का पर्यावरण पर प्रभाव स्पष्ट करना।
7. जन—शक्ति एवं अन्य संसाधन में असामंजस्य पूर्ण स्थिति से उत्पन्न होने वाली कठिनाइयों का विस्तारपूर्वक ज्ञान कराना तथा समाधान के बिन्दु स्पष्ट करना।
8. जिम्मेदार दम्पत्ति के कर्तव्यों को बताते हुए परिवार में उच्च स्तर के मातृत्व एवं पितृत्व की भावना का विकास करना।
9. स्वास्थ्य, मातृ शिशु कल्याण, परिवार नियोजित करने के कार्यक्रम, पुष्टाहार एवं विवाह के महत्वपूर्ण उद्देश्यों की पूर्ति हेतु परिवार के बच्चे पर्याप्त हो सके आदि के विषयों पर विस्तृत जानकारी देना ताकि समाज में रहते हुए प्रत्येक व्यक्ति ऊँचे स्तर का जीवन व्यतीत कर सके।
10. विभिन्न परिस्थितियों में विभिन्न प्रकार की स्वास्थ्य एवं जनसंख्या सम्बन्धी नीति का ज्ञान कराना।
11. मनुष्य के आपसी सम्बन्धों, पति—पत्नी के नाजुक रिश्ते एवं समाज में इन सम्बन्धों की मान्यता को ऊँचे स्तर पर रखने की आवश्यकता की ओर ध्यान देना।
12. विवाह के पवित्र बन्धन को स्वीकार करते हुए महिलाओं को स्वास्थ्य एवं सामाजिक स्तर को बनाये रखना क्यों आवश्यक है और इससे अच्छे राष्ट्र का कैसे निर्माण हो सकता है इसकी जानकारी देना।

1969 में जनसंख्या शिक्षा का एक परिसंवाद बम्बई में आयोजित किया गया था, जिसमें जनसंख्या शिक्षा के पहलुओं को स्पष्ट करते हुए बताया गया है कि –

1. परिवार के कद को इच्छानुसार नियन्त्रित किया जा सकता है, इस बात की जानकारी विद्यार्थियों को देनी चाहिए।

2. उनमें ऐसे दृष्टिकोण का विकास करना कि जनसंख्या शिक्षा जीवन को समृद्ध बनाने में सहायक, मार्गदर्शक बनती है।
3. छोटे कद के परिवार एवं व्यक्तिगत जीवन इन दोनों के बीच सीधा सम्बन्ध है, इसका स्पष्टीकरण करना है।
4. परिवार के सदस्यों के अच्छे स्वास्थ्य के लिए, परिवार की आर्थिक समृद्धि के लिए–छोटे कुटुम्ब का महत्व बतलाना है।
5. भावी पीढ़ी का भविष्य उज्जवल बनाने के लिए जो अवसर प्रदान करना है, उस अवसर के संदर्भ में छोटा कुटुम्ब कितना उपयोगी है, इसके विषय में ज्ञान देना है।

संक्षेप में जनसंख्या शिक्षा का उद्देश्य बढ़ती हुई जनसंख्या से उत्पन्न खतरों का ज्ञान नई पीढ़ी को कराना है जिससे वे अपने भविष्य को उन्नत बना सके। यह तभी सम्भव है जब उन्हें जनसंख्या से उत्पन्न समस्याओं व प्रजनन नियन्त्रण सम्बन्धी ज्ञान हो। यह समस्त ज्ञान आज के युवा वर्ग को कराना ही इसका मुख्य उद्देश्य है। जनसंख्या शिक्षा का उद्देश्य मानव विकास के उन समस्त आँकड़ों एवं घटकों का ज्ञान देना है, जो मानव जीवन के बहुमुखी विकास में सहायक हो सके।

जनसंख्या शिक्षा की आवश्यकता -:

जनसंख्या शिक्षा की परिभाषा, उद्देश्य, अंग एवं विभिन्न अंगों के अध्ययन के उपरान्त हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं, कि जनसंख्या शिक्षा का भारतवर्ष के संदर्भ में अत्याधिक महत्व है। हमारे देश में लगभग 102 करोड़ व्यक्ति निवास करते है और दुनिया के नक्शे में इसका स्थान चीन के पश्चात् द्वितीय है। हमारे देश में जनसंख्या वृद्धि विस्फोट जनक स्थिति में है, अतः यह आवश्यक है कि देश का प्रत्येक व्यक्ति, बच्चा अथवा बूढ़ा, जनसंख्या शिक्षा अवश्य प्राप्त करें। इस प्रकार के ज्ञान से दोहरा लाभ होगा। आत्मोत्थान एवं भावी पीढ़ी का कल्याण यदि हम वास्तव में देश की उन्नति चाहते हैं और देश का स्थान विकसित देशों में पहुँचाना चाहते हैं तो हमें यह नारा अपनाना होगा–

" हर एक, सीखे एक, सिखाये एक"

भारत में जनसंख्या शिक्षा का इतिहास काफी पुराना है। प्राचीन काल में भारतवर्ष की जनसंख्या बहुत कम थी, और क्षेत्रीय विस्तार की सम्भावनायें अत्याधिक थी, इसलिए इस युग की आवश्यकताओं के अनुरुप जनसंख्या बढ़ाने के लिए भारतीय पूर्वज विवाह के समय बहु विवाह के साथ–साथ अधिक बच्चों की कामना करते थे।

जैसे–जैसे समाज का विस्तार हुआ, जनसंख्या बढ़ती गई तथा उत्पादन और जनसंख्या के अनुपात में असंतुलन की स्थिति पैदा होने लगी, वैसे–वैसे धार्मिक विचारों में भी परिवर्तन आये, तात्कालिक परिस्थितियों के अनुकूल वैदिक ऋषियों ने भी विवाह संस्था तथा संतानोत्पत्ति की अवधारणा को जन्म दिया और यह व्रत लिया कि पुरूष आजीवन पत्नी का साथ दें। परिस्थितियों के अनुसार जनसंख्या वृद्धि या ह्यास की नीति में वैदिक काल से ही परिवर्तन होते रहे हैं और जनसंख्या शिक्षा किसी न किसी रुप में दी जाती रही है। भारतीय संस्कृति और परम्परा में जहाँ एक ओर जनमानस में अपने शास्वत मानवीय मूल्यों से विचलित न होने का गुण हैं वहीं दूसरी ओर निरन्तर बदलते हुये समाज में परिस्थितियों के अनुकूल अपने को ढालने और सामंजस्य स्थापित करने का गुण सन्निहित दिखाई देता है। यह लचीलेपन का ही परिणाम है कि सहस्त्र वर्षो के उतार चढ़ाव के बाबजूद हमारी परम्परायें एवं संस्कृति अभी तक अक्षुण्ण बनी हुई है और मानवता के विकास मार्ग को सदैव प्रशस्त करती आई है।

परिस्थितियों के अनुरुप भारत में ऋषियों, विचारकों आदि ने आदर्श जीवन के लिए अपना संदेश समय–समय पर दिया है। अतः जनसंख्या शिक्षा कोई नई शिक्षा नहीं है, यह विभिन्न कालों में विभिन्न प्रकार से विभिन्न उद्देश्यों को लेकर दी जाती रही है। वर्तमान परिस्थिति और माँग के अनुसार यह नितान्त आवश्यक है कि बढ़ती जनसंख्या से उत्पन्न कुप्रभावों को रोकने, जनता के बहुमुखी विकास एवं देश को विकसित देशों की श्रेणी में लाने के उद्देश्य से जनसंख्या शिक्षा को देश के जन–जन और कोने–कोने पहुँचाया जाए।

किसी भी राष्ट्र के सम्पूर्ण सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक विकास में जनसंख्या की अति वृद्धि बाधक बनती है। किसी भी व्यक्ति, समाज व राष्ट्र का विकास जनसंख्या शिक्षा की आवश्यकता को स्वीकृत किये बिना नहीं हो सकता। जनसंख्या शिक्षा की आवश्यकता के अनेक कारण हैं—

१. जनसंख्या विस्फोट -:

सम्पूर्ण विश्व में, विशेष रुप से विकासशील देशों में जनसंख्या वृद्धि की गति अति तीव्र है, मृत्युदर में कमी एवं जन्म दर में वृद्धि के कारण जनसंख्या को नियन्त्रित नहीं किया जा रहा है। विकासशील देश जनसंख्या को नियन्त्रित करने के उद्देश्य से जन्म दर नियन्त्रित करने के लिए परिवार नियोजन अपना रहे है। इसका सीधा सम्बन्ध उन दम्पत्तियों से होता है जो अभी एक सन्तान के जनक है और अपनी उत्पादन आयु के अन्दर है, उन्हें परिवार नियोजन करना होगा अन्यथा बहुत बिलम्ब हो जायेगा। दूसरी ओर इसका सम्बन्ध उन किशोरों से है जो विवाह की आयु की ओर बढ़ रहे हैं, उन्हें इस बात का ज्ञान प्रदान करना है कि –

क. प्रजनन एक अनिच्छित व अनियन्त्रित प्रक्रिया नहीं है,पहले ऐसा माना जाता था कि संतान का जन्म एक संयोग है, एक ऐसी प्रक्रिया है जिसे अंकुश में नहीं लाया जा सकता इस पुरानी मान्यता से युवकों को मुक्त करना है।

ख. जनसंख्या समस्या का सम्बन्ध मात्र प्रौढ़ पीढ़ी से नहीं है। पहले यह भी मान्यता थी कि युवकों के पास करने के लिए अन्य बहुत से कार्य है जो रुचिकर एवं महत्वपूर्ण है अतः जनसंख्या समस्या का ज्ञान उनके योग्य नहीं है। आज यह मान्यता उचित नहीं है। किशोर मन में यह संस्कार डालना है कि जनसंख्या वृद्धि की समस्या में उनकी भी महत्वपूर्ण भूमिका भविष्य में आने वाली है।

२. जनसंख्या और विश्व के प्राकृतिक साधनों में बढ़ता हुआ असन्तुलन -:

प्राकृतिक सम्पदा प्रकृति की अमूल्य देन है जो सीमित है, उसमें वृद्धि नहीं की जा सकती, लेकिन आज जनसंख्या असीमित रूप से बढ़ती जा रही है, इस

कारण प्रकृति एवं मानव के बीच एक असन्तुलन पैदा हो गया है। लोगों को इस संदर्भ में ज्ञान कराना है कि इस जनसंख्या वृद्धि से भयंकर सर्वनाश हो सकता है। अतः जनसंख्या को नियन्त्रित करना होगा। आज यह बात भी सर्वविदित है, कि जनसंख्या अनिच्छित रूप से नहीं बढ़ती।

३. परिवार नियोजन का आम प्रचार- प्रसार -:

बहुत से विकासशील देशों ने जनसंख्या नियन्त्रण के लिए राष्ट्रीय नीति, जन्मदर नियन्त्रण, परिवार नियोजन आदि प्रोग्राम अपनाएं हैं। इन आयोजनों को जन–जन तक पहुँचाने के लिए पोस्टर, पेंटिग, पेम्पलेट, पुस्तकें, पत्र पत्रिकाएं, रेडियो टी0वी0 एवं सिनेमा आदि की मदद ली जाती है। इन सामूहिक माध्यमों से प्रेक्षकों व श्रोताओं को प्रभावशाली ढंग से नियन्त्रित नहीं किया जा सकता, विशेष तौर पर युवक इस ओर ध्यान नहीं देते और ध्यान भी दें तो उसे उचित रूप में ग्रहण नहीं कर पाते जिससे लाभ के स्थान पर हानि की सम्भावना अधिक है। अतएव इस बात की जरुरत है कि जनसंख्या समस्या के विषय में सूचना बहुत ही व्यवस्थिति ढंग से एवं व्यवस्थित परिवार नियोजन शिक्षा के द्वारा दी जानी चाहिए।

४. परिवार नियोजन प्रोग्राम को तीव्र बनाने की आवश्यकता -:

शिक्षण संस्थाओं में जनसंख्या शिक्षा देने की आवश्यकता इसलिए अनुभव की गई है कि जनसंख्या समस्या गम्भीर रूप धारण न करें, साथ ही वर्तमान में जन्मदर कम करने का उद्देश्य पूरा किया जा सके। परन्तु जनसंख्या वृद्धि की समस्या इतनी जटिल और विविध रूपी है कि परिवार नियोजन कार्यक्रम को सफल बनाने में अथवा जनसंख्या को नियन्त्रित करने में बहुत समय लगेगा। भारत में परिवार कल्याण का उद्देश्य जन्म दर जो 1969–70 में 38 प्रतिहजार थी, उसे कम करके छठीं योजना के अन्त तक 20 प्रतिहजार तक लाना था, अन्यथा अनेक नवीन समस्यायें जन्म लेतीं। यह बड़ी तीव्रता से, गम्भीरता से अनुभव किया गया है कि इसके लिए दीर्घकालीन व विविधलक्षी आयोजन की आवश्यकता होगी। इसी कार्य की पूर्ति हेतु जनसंख्या शिक्षा

की आवश्यकता अनुभव की गई है।

५. जनसंख्या-आयु संरचना -:

आयु के आधार पर जनसंख्या के वितरण की समस्या का अध्ययन इसलिये महत्वपूर्ण है क्योंकि इससे श्रम शक्ति के अनुपात का ज्ञान प्राप्त होता है, साधरण रूप से 15–45 वर्ष की आयु सन्तानोत्पत्ति की अवस्था मानी जाती है। आज वर्तमान में विकासशील देशों में लगभग 40–45 प्रतिशत जनसंख्या का भाग सोलह वर्ष आयु सीमा के अन्दर है। भावी दो दशकों में वह प्रौढ़ जनसंख्या का रुप धारण कर लेगी। अतएव प्रजनन के प्रति इस आयु समूह का जैसा भी दृष्टिकोण होगा, वही महत्वपूर्ण बन जायेगा। इसलिए स्कूलों में जनसंख्या शिक्षा अनिवार्य बनाने की आवश्यकता है।

६. भावी जनपीढ़ी की सफलता हेतु जनसंख्या शिक्षा की आवश्यकता -:

परिवार नियोजन का सम्बन्ध मात्र वर्तमान की पुनरुत्पादन वाली जनसंख्या से नहीं है, इसका सम्बन्ध तो प्रत्येक उस समूह के हर सदस्य से है जो पुनरुत्पादन आयु–समूह में प्रवेश कर रहा है। इसलिए परिवार नियोजन के प्रयत्न निरन्तर चलते रहने चाहिए। जनसंख्या समस्या एक दीर्घकालीन समस्या है और इसलिए यह आवश्यक बन जाता है कि आने वाली प्रत्येक पीढ़ी को इसका ज्ञान कराया जाए। इस प्रकार जनसंख्या शिक्षा प्रत्येक नई आने वाली पीढ़ी को अपने परिवार में परिवार नियोजन अपनाने के लिए प्रेरणा देगा।

७. ''जनसंख्या शिक्षा'' उत्तरदायित्वपूर्ण नागरिक एवं प्रभावशाली जीवन शैली तैयार करने का एक माध्यम -:

विद्यालयों में जनसंख्या शिक्षा देने का महत्वपूर्ण कारण है – अति जन वृद्धि से उत्पन्न होने वाली समस्याओं से युवकों को परिचित कराना। निःसंदेह वर्तमान समय में जनसंख्या वृद्धि की तेज रफ्तार से अनेक अनिष्टो के संकेत प्राप्त हो रहे हैं। अतएव आज कोई भी इस शिक्षा की उपेक्षा नहीं कर सकता। कुछ शिक्षाविद् इस पर जोर दे रहे हैं कि कुछ समय के लिए जनसंख्या शिक्षा को शिक्षण प्रवृत्तियों का एक अंग

बना दिया जाए। परन्तु वास्तव में जनसंख्या शिक्षा का अध्ययन समाज विधाओं के अन्तर्गत किया जा सकता है।

आर्थिक विकास तथा व्यवस्थित जनसंख्या वृद्धि का शिक्षा के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध तथा एक दूसरे पर आधारित होने के कारण हमारी "राष्ट्रीय शिक्षण प्रणाली" के निर्धारकों एवं निर्माताओं ने, जनसंख्या की समस्याओं को समझने एवं सुलझाने के लिए, सामान्य शिक्षा में "जनसंख्या शिक्षा के महत्व को समझा और 1969 में हुए पापुलेशन एजूकेशन के नेशनल सेमिनार बम्बई में एक विशेष पापुलेशन एजूकेशन सेल अर्थात् "जनसंख्या शिक्षण कक्ष की स्थापना की नींव–नेशनल काउन्सिल ऑफ एजूकेशनल रिसर्च एण्ड ट्रेनिंग के अन्तर्गत रखी गई। नबम्वर 1973 में "पापुलेशन ग्रोथ एण्ड हयूमन डेवलपमेन्ट" विषय पर इण्डियन सोशल इन्स्टीट्यूट, नई दिल्ली द्वारा आयोजित कान्फ्रेंस में जनसंख्या शिक्षा कक्ष के प्रमुख प्रो0 टी0 एस0 मेहता ने "जनसंख्या शिक्षा" का महत्व समझाते हुये जनसंख्या शिक्षा को प्राथमिक, माध्यमिक तथा उच्च स्तरीय शिक्षा में आवश्यक विषय के रूप में पढ़ाने को जोरदार सिफारिश की, जिससे कि अधिक से अधिक युवा वर्ग जो कि आने वाली भविष्य की पीढ़ी का निर्माता है। जनसंख्या वृद्धि से पैदा होने वाली समस्याओं के प्रति जागरुक रह कर अपने परिवार के नियन्त्रण के बारे में उचित निर्णय ले सकें। केन्द्र सरकार द्वारा परिवार कल्याण कार्यक्रम को तीव्र गति देने के लिए एक विशेष कार्यनीति निर्धारित की गई है जिसके अनुसार स्कूलों व कालेजों के छात्रों के साथ न पढ़ने वाले युवकों को भी जनसंख्या सम्बन्धी शिक्षा दी जायेगी। इस कार्य को सरकारी, विभागों, एजेन्सियों व संगठित क्षेत्रों द्वारा सभी कार्यकर्त्ताओं के लिए चलाये जाने वाले शिक्षा एवं प्रशिक्षण कार्यक्रमों में लागू किया जायेगा। साथ ही महिलाओं को शीघ्र साक्षर बनाने की दिशा में प्रयास तेज किए जायेगा, अधिक सुविधाएं सुलभ कराई जाऐगी ताकि महिला वर्ग जनसंख्या नियन्त्रण में पूरा योगदान दे सके।

'सन् 1962 में शिक्षाशास्त्री' श्री वारेन थाम्पसन ने अपनी रिपोर्ट (टीचर्स कालेज टीचर्स) में, सामान्य शिक्षा के बारे में मत व्यक्त करते हुए 'जनसंख्या शिक्षा' के बारे में भी उल्लेख किया जिसका सारांश यह है "कि शिक्षा का उद्‌देश्य प्रजातांत्रिक सरकार में अपने नागरिकों को आधुनिक जीवन की जटिल समस्याओं, परिस्थितियों से अवगत कराना है और उन समस्याओं को हल करने के लिए एक पूर्ण ज्ञान प्रदान करना है। आज अनेकानेक समस्याओं का मूल कारण जनसंख्या वृद्धि है जो व्यक्ति, समाज व देश को बाह्यय एवं आन्तरिक रुप से प्रभावित करती है। इस समस्या को दूर करने के लिए युवकों को सामाजिक, आर्थिक नीतियों से अवश्य अवगत कराना होगा, नहीं तो ऊपर से थोपी गई कोई भी नीति सफल नहीं बन सकेगी।"6

"फिलिप एस होसर ने इस बात पर जोर दिया है कि आज भी विश्व के विभिन्न जनसमूहों में जनसंख्या शिक्षा, शिक्षा का अंग नहीं बन पाया है जबकि वर्तमान जनसंख्या के संदर्भ में इसे शालीय अध्ययन का एक आवश्यक अंग बनाना चाहिए। उन्हीं के शब्दों में –

"Information about population should be regarded as an essontial part of general education" 7

इण्डियन एजूकेशन कमीशन 1964–66 ने जनसंख्या की समस्या को महत्वपूर्ण समस्या समझकर यह सिफारिश की–"शिक्षा को, राष्ट्रीय योजनाओं को सफल बनाने हेतु, एक प्रभावशाली माध्यम के रुप में प्रयोग किया जाए, जिससे कि व्यक्ति समाज व देश का कल्याण हो। गुजरात में सरदार पटेल विश्वविद्यालय को इस बात का श्रेय जाता है कि सर्वप्रथम इसने 'जनसंख्या शिक्षा' को 'को–ऑपरेशन' कोर्स के रूप में अपनाया। यह कोर्स कॉलेज के तीनों वर्षों में जनसंख्या सम्बन्धी विस्तृत जानकारी प्रदान करेगा और इसे अनुस्नातक कक्षा तक ले जाने की सम्भावना पर आशा व्यक्त की गई है।"8

विकासशील देशों में जनवृद्धि के अनेक कारण हैं जैसे—बाल—विवाह, अशिक्षा, भाग्यवादी दृष्टिकोण, धार्मिक अंधविश्वास, परम्परागत निरर्थक मान्यतायें आदि जिनकी जड़े बहुत गहराई तक समाज में पहुँच गई है, जिनके अनेक सामाजिक, धार्मिक व मनौवैज्ञानिक आधार है उन्हें जड़मूल से उखाड़ फेंकने का एक ही सही सशक्त उपाय है और वह है— 'जनसंख्या शिक्षा'।

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि 'जनसंख्या शिक्षा' आने वाली पीढ़ी को इस बात के लिए तैयार करती है कि वे जीवन व समाज की वास्तविकताओं, संघर्षों का सामना करने में समर्थ बन सके। साथ ही वे 20वीं सदी की जनवृद्धि से उत्पन्न होने वाली भयंकर स्थिति से अवगत हो सके और जनसंख्या मर्यादा के विषय में जागरुक बन सके। इसके द्वारा आज की शिक्षण संस्थाएं इस समय की जनवृद्धि की चुनौती का सामना करने के लिए युवकों को तैयार करेंगी। उन्हें ऐसी नई पीढ़ी तैयार करनी होगी जिसका अपना स्वतन्त्र अस्तित्व हो, अपना निजी व्यक्तित्व हो, अपनी दृष्टि हो, अपना बनाया हुआ उन्नत रास्ता हो एवं उनका जीवन सभी सुख सुविधाओं से सम्पन्न उच्च स्तर का हो। 'जनसंख्या शिक्षा' द्वारा आज का युवा वर्ग स्वयं का तथा आने वाली पीढ़ियों का जीवन सुखी समृद्ध सुव्यवस्थित, उच्चस्तरीय एवं संवरा हुआ बना सकता है।

जनसंख्या शिक्षा - आवश्यक आधार एवं नीति -:

हमारे देश में पिछले पांच दशकों की लगातार योजना के बावजूद हम अपनी सर्वाधिक गम्भीर समस्या 'जनसंख्या को नियन्त्रित करना'— को हल नहीं कर सके पर वास्तव में इस दिशा में किये गये हमारे समस्त प्रयास खोखले साबित हुए हैं।यद्यपि जनसंख्या वृद्धि नियन्त्रित होने के विभिन्न स्तरों पर विभिन्न विद्वानों द्वारा कई कारण बताये जाते रहे हैं। किन्तु इन सबमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारण यह रहा है कि हम अपने देश में आम जनता को उचित रूप से जनसंख्या शिक्षा प्रदान नहीं कर सके।

इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि जनसंख्या शिक्षा आम मनुष्य को एक ऐसी शक्ति प्रदान करेगी। जिससे वह चिन्तन एवं मनन कर अपने

स्वास्थ्य, समाज एवं देश के हित को समझ सकेगा। जनसंख्या के उद्देश्यों एवं आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए ही हमारे देश में प्राचीन समय से ही जनसंख्या शिक्षा प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से न केवल सम्पूर्ण शिक्षा पद्धति में सम्मिलित रही है, बल्कि विभिन्न धार्मिक एवं आध्यात्मिक ग्रन्थों एवं पुस्तकों में भी इसके उदाहरण मिलते हैं। आधुनिक समय में भी विभिन्न शिक्षाविद्, एवं जनसंख्या विशेषज्ञ इस बात को स्वीकार करते हैं, कि जनसंख्या समस्या को हल करने के लिये आम–जनता को जनसंख्या शिक्षा देना अति आवश्यक हो गया है। परन्तु यह शिक्षा प्रदान की जाये, शिक्षा के किस स्तर से यह शिक्षा आरम्भ की जाये ? शिक्षा के किस स्तर पर जनसंख्या शिक्षा के किस अंग की शिक्षा दी जाये ? जनसंख्या शिक्षा का माध्यम कैसा हो ? इत्यादि के सम्बन्ध में इन विद्वानों में मतभेद रहे है। वास्तव में जिस प्रकार बिना किसी ठोस आधार एवं सोची समझी रणनीति के अभाव में जनसंख्या को नियन्त्रित करने के हमारे सभी प्रयास असफल रहे हैं। उसी प्रकार यदि जनसंख्या शिक्षा के लिये भी यदि पहले कोई आधार नहीं बनाया गया एवं सोच समझ कर नीति तैयार नहीं की गयी तो सम्भवतया यह उपाय भी कारगार सिद्ध नहीं हो सकेगा।

वास्तव में जनसंख्या शिक्षा किसी एक विषय अथवा जीवन के किसी एक पहलू को ध्यान में रखकर नहीं दी जाती बल्कि मानव के बहुमुखी विकास को दृष्टि में रखते हुये दी जाती है। अतः जनसंख्या शिक्षा का उचित आधार तभी तैयार हो सकेगा जब पहले से यह निश्चित हो सके कि इस शिक्षा के अन्तर्गत किन–किन बातों का समावेश होना चाहिये।

जनसंख्या शिक्षा के पाठ्यक्रम में निम्नलिखित बिन्दुओं को आवश्यक रूप से सम्मिलित किया जाना चाहिए–

१. जनसंख्या सम्बन्धी आँकड़े –:

देश, प्रदेश, जिला, नगर एवं ग्रामीण क्षेत्रों में कुल कितनी जनसंख्या है, किस गति से वह बढ़ रही है, क्यों बढ़ रही है, कब से बढ़ रही है, ऐसी बातें जनसंख्या

के आँकड़ों से जानना चाहिए। जनसंख्या आँकड़ों सम्बन्धी विषय को 'डेमोग्राफी पापुलेशन स्टडी' आदि की भी संज्ञा दी जाती है। इस विज्ञान द्वारा हम यह जानकारी कर सकते हैं कि किसी विशेष समय में देश की जन्मदर क्या है, मृत्यु दर क्या है, शिशु मृत्यु दर क्या है, शुद्ध पुनरूत्पादन की क्या महत्ता है, यह कैसे निकाला जाता है, आदि की जानकारी इसी ज्ञान से प्राप्त है। उदाहरण के तौर पर भारत वर्ष की जनसंख्या 1901 में 24 करोड़ थी, जो 2001 में 102.7 करोड़ हो गयी यह जानकारी हमें इसी विज्ञान से प्राप्त हो सकती है। जनसंख्या के आँकड़े 10 वर्षीय जनगणना द्वारा जन्म–मृत्यु पंजीकरण एवं विभिन्न प्रकार के शोध अध्ययनों से प्राप्त कर सकते है।

२. स्वास्थ्य एवं हाइजीन -:

जनसंख्या के स्वास्थ्य का क्या स्तर है। हाइजीन का कितना ज्ञान है, इसकी जानकारी भी जनसंख्या शिक्षा का अंग मानी जाती है। स्वास्थ्य का स्तर जानने के लिए प्रदेश के विभिन्न भागों में कितने अस्पताल है, कितने चिकित्सक सरकारी अस्पतालों में कार्यरत है, कितने चिकित्सक प्राइवेट तौर पर सुविधाएं दे रहे हैं आदि का ज्ञान लाभकारी होता है। युवा पीढ़ी के सदस्यों को व्यक्तिगत 'हाइजीन' जैसे–शरीर की सफाई, दाँतो की सफाई, शरीर की विभिन्न जरुरतों का ज्ञान आदि भी इसमें सम्मिलित रहता है। अस्पतालों में कितनी शैय्याएं उपलब्ध है। एक शैय्या पर कितने रोगी सेवा प्राप्त कर रहे हैं। एक चिकित्सक कितने रोगियों को देखने के लिये उपलब्ध है, आदि की जानकारी भी इसी विज्ञान से प्राप्त होती है।

३. सफाई स्वच्छता एवं पर्यावरण -:

वातावरण की स्वच्छता, पानी की स्वच्छता सम्बन्धी ज्ञान भी जनसंख्या शिक्षा के अंग है। पर्यावरण कैसे स्वच्छ बनाया जाना चाहिये इसकी क्यों आवश्यकता है? दूषित पर्यावरण से मानव के जीवन और स्वास्थ्य पर क्या प्रभाव पड़ता है, यह जानकारी भी जनसंख्या शिक्षा द्वारा दी जानी चाहिये। पेड़ पौधो से किस प्रकार

ऑक्सीजन प्राप्त होती है, जो कि व्यक्ति के स्वास्थ्य के लिये आवश्यक है। जनसंख्या के बढ़ने से पर्यावरण पर भी प्रभाव पड़ता है। जनसंख्या की अत्यधिक वृद्धि से पेड़ पौधों का ह्यास होता है। इसलिये वनसम्पदा मानव के सुख सौभाग्य के लिये आवश्यक है।

४. प्रजनन एवं पारिवारिक जीवन -:

स्त्री एवं पुरूष के शरीर में प्रजनन के कौन–कौन से अंग है, इसकी जानकारी जनसंख्या शिक्षा द्वारा प्रदान की जानी चाहिए। विवाह की आयु क्या होनी चाहिए, इसका परिवार में बच्चों की संख्या से क्या सम्बन्ध होता है आदि विषय भी जनसंख्या शिक्षा में सम्मिलित किये जाते हैं, शिशु के गर्भकाल एवं प्रसव के बाद माताओं को किन बातों का ध्यान रखना चाहिये इत्यादि बातें भी जनसंख्या शिक्षा द्वारा सिखाई जानी चाहिये।

५. खाद्य एवं पौष्टिक आहार -:

मनुष्य की मूलभूत तीन आवश्कताओं में भोजन एक है। किस आयु वर्ग के लिए किस प्रकार के और कितनी मात्रा में भोजन की आवश्यकता है, प्रतिदिन मनुष्य को कितनी मात्रा में और कौन–कौन सा भोजन खाना चाहिये यह जानकारी इसी शिक्षा के अन्तर्गत प्राप्त होती है। पौष्टिक आहार किन–किन साधनों से प्राप्त किया जा सकता है और क्या पौष्टिक आहार प्राप्त करने के लिये अधिक मात्रा में धन की आवश्यकता है इस विषय को लेकर भी जनसंख्या शिक्षा में चर्चा की जाती है। उदाहरणस्वरूप अमरुद के तत्व किसी भी अर्थ में सेव के तत्वों से न्यून नहीं होते। किन्तु सेब की अपेक्षा अमरूद बहुत सस्ता उपलब्ध है, जिससे सीमित साधन वाला व्यक्ति भी खा सकता है। अतः धन की कमी की हालत में अमरुद का सेबन करके भी व्यक्ति सेव के बराबर पौष्टिक आहार प्राप्त कर सकता है।

६. परिवार परिसीमन -:

परिवार में यदि बच्चों की संख्या बढ़ जाती है और संसाधनों की कमी है तो उसमें सामंजस्य कैसे स्थापित किया जाए। इसकी जानकारी भी जनसंख्या शिक्षा ही

देती है। परिवार सीमित करने के क्या–क्या स्थायी अस्थायी साधन है, किस साधन में क्या अच्छाई बुराई है कहाँ से चिकित्सकों एवं साधनों की सेवा सुविधाएँ प्राप्त की जा सकती है, यदि परिवार में दम्पत्ति को बच्चा नहीं प्राप्त हो रहा है तो चिकित्सक द्वारा पूर्व परीक्षण दवाई अथवा शल्यक्रिया से दम्पत्ति की सहायता करना। मौटे तौर पर परिवार परिसीमन का कार्यक्रम कम बच्चों का ही नहीं है, बल्कि बच्चे न होने की दशा में सहायता करना भी है।

७. मातृ एवं शिशु कल्याण कार्यक्रम -:

समाज में गर्भवती माताओं एवं शिशुओं का विशेष स्थान है। क्योंकि माता ही परिवार में सब प्रकार की शिक्षा देती है और परिवार के सदस्यों का ध्यान रखती है। यदि माता का ही स्वास्थ्य ठीक नहीं है, उसे वांछित पौष्टिक भोजन उपलब्ध नहीं हो पाता, रोगों से बचने के लिये जिन टीको और दवाइयों की आवश्यकता है वह नहीं प्राप्त होती, तो परिवार का स्तर कभी भी ऊँचा नहीं उठ सकता है। इसी प्रकार नवजात शिशुओं के लिये प्रथम एक वर्ष तक विशेष तौर पर और उसके बाद भी लगभग 4 वर्ष की अवस्था तक विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है, ताकि शिशुओं को रोगों से बचाया जा सके, और ऊँची मृत्युदर में कमी लाई जा सके। साथ ही माताओं की प्रसव से पूर्व, प्रसव के समय एवं प्रसवोपरान्त किस प्रकार से देखभाल होनी चाहिए आदि बातों की जानकारी मातृ एवं शिशु कल्याण कार्यक्रम से की जा सकती है। इस कार्यक्रम को भली–भाँति क्रियान्वित करके माताओं की प्रसव के समय संभावित मृत्यु से काफी हद तक छुटकारा पाया जा सकता है।

जनसंख्या शिक्षा के लिये ठोस आधार की तैयारी में जनसंख्या शिक्षा के अंगो के निश्चितीकरण के बाद एक अन्य महत्त्वपूर्ण समस्या यह निश्चित करना भी रहती है, कि शिक्षा के इन विभिन्न अंगो में से किस–किस अंग को शिक्षा के किस स्तर पर पढ़ाया जाय। यद्यपि इस सम्बन्ध में भी विद्वानों में बड़े विवाद है। कुछ के विचार में जनसंख्या शिक्षा प्राथमिक स्तर से ही शुरु कर देना चाहिए, क्योंकि इस स्तर पर ही

छात्रों की संख्या सर्वाधिक होती है और इस समय वे किसी भी तथ्य को ग्रहण करने के लिये संवेदनशील भी होते है, इसके अतिरिक्त इस समय जो संस्कार पड़ जायेंगे वे ही भविष्य के व्यवहार की आधारशिला बनेगें परन्तु कुछ लोग इसका विरोध करते है और कहते है कि इससे एक ओर तो बच्चों पर पाठ्यक्रम का बोझ जरुरत से ज्यादा हो जायेगा। दूसरी ओर उम्र की इस दौर में ही जनसंख्या वृद्धि और उसके परिणामों को बताकर अन्धकारमय भविष्य की कल्पना कराकर उनके मन में निराशा और ड़र की भावना पैदा नहीं करनी चाहिये। इन विद्वानों के विचार में जनसंख्या शिक्षा निम्न माध्यमिक और माध्यमिक स्तर पर आरम्भ की जानी चाहिये चूँकि विश्वविद्यालय के स्तर तक भारत में बहुत ही कम लोग पहुँचते हैं। अतः इसे उस स्तर के पाठ्यक्रम में स्थान देने की आवश्यकता नहीं है, परन्तु वास्तविकता यह है कि यह दोनों ही विचार एक दम ठीक प्रतीत होते। आवश्यकता यहाँ पर पुनः नियोजन करने की है, वास्तव में जनसंख्या शिक्षा के कई अंग है। जिसमें से कुछ जैसे स्वास्थ्य एवं हाइजीन, सफाई, स्वच्छता एवं पर्यावरण खाद्य एवं पौष्टिक आहार इत्यादि की शिक्षा बच्चों को प्राथमिक स्तर पर ही प्रारम्भ करायी जानी चाहिये। क्योंकि इससे न तो बच्चों पर अतिरिक्त पाठ्यक्रम का कोई बोझ पड़ेगा और न ही उन्हें प्रत्यक्ष रूप से प्रजनन एवं पारिवारिक जीवन तथा जनसंख्या वृद्धि के भयंकर परिणामों की जानकारी अभी न देकर भविष्य के प्रति आशावान बनाया जा सकेगा। इसमें संदेह नहीं हैं कि प्राथमिक स्तर में बच्चा जिस उम्र में होता है। वह बहुत अधिक संवेदनशील होता है अतः इस समय उसे जनसंख्या शिक्षा के समस्त अंगो से परिचित करना भी उचित नहीं होगा। परन्तु जहाँ प्राथमिक स्तर पर पढ़ाई प्रौढ़ शिक्षा के अन्तर्गत हो रही है। वहीं इसी स्तर पर प्रौढ़ विद्यार्थीओं को जनसंख्या शिक्षा के समस्त अंगो एवं उद्देश्यों अवश्य परिचित कराया जाना चाहिये। संक्षेप में जनसंख्या शिक्षा का प्रारम्भ बच्चों के लिए प्राथमिक स्तर पर सीमित एवं चयनित रूप में तथा प्रौढ़ के लिये विस्तृत एवं सम्पूर्ण रूप में किया जाना चाहिए। जब बच्वें निम्न माध्यमिक एवं माध्यमिक स्तर पर आते जाये वैसे–वैसे उन्हें जनसंख्या वृद्धि

के दुष्परिणामों से अधिकाधिक परिचित कराया जाना चाहिए। यह सोचना आज गलत है कि विश्वविद्यालय स्तर पर बहुत कम छात्र पहुँचते है।

इसके अतिरिक्त विश्वविद्यालय स्तर पर छात्र वयस्क होने लगता है और बात को अधिक समझने लगता है। अतः इस स्तर पर भी जनसंख्या शिक्षा का विशिष्ट अध्ययन ठीक उसी प्रकार कराया जाना चाहिए जैसा कि अन्य विषयों का भी कराया जाता है।

जनसंख्या शिक्षा को व्यापक स्तर पर आरम्भ करने से पहले उसके लिए किये जाने वाली आवश्यक तैयारी में यह बात भी आवश्यक है कि यह निश्चित किया जाये कि जनसंख्या शिक्षा को विभिन्न स्तरों पर अन्य विषयों में इसे जोड़ कर न पढ़ाया जाये बल्कि इसे एक अलग विषय के रूप में स्थान दिया जाये। इसका कारण यह है कि यदि प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर पर जनसंख्या शिक्षा से सम्बन्धित प्रकरणों को इतिहास, भूगोल, नागरिकशास्त्र, अर्थशास्त्र, सामान्य विज्ञान, गृहविज्ञान अथवा जीव विज्ञान इत्यादि विषयों के साथ जोड़ कर पढ़ाया जाता है तो मुख्य विषय के महत्व के आगे इन प्रकरणों का महत्व गौड़ हो जाता है और इसीलिए न तो उन्हें ठीक से पढ़ाया जाता है और न ही विद्यार्थी एवं अभिभावक इन्हें अधिक महत्व देते हैं। इसके विपरीत यदि जनसंख्या शिक्षा को, भले ही बहुत छोटे पाठ्यक्रम के साथ, एक पृथक विषय के रूप में पढ़ाया जाये। हर स्तर पर उसकी पृथक परीक्षा भी हो, जैसी कि अन्य विषयों की होती है। तो न केवल विद्यार्थी की दृष्टि में बल्कि शिक्षक एवं अभिभावक की दृष्टि में भी जनसंख्या शिक्षा अन्य विषयों की भाँति महत्वपूर्ण हो जायेगी और तब इसका पठन एवं पाठन दोनों की गम्भीरता के साथ किये जायेंगे और तब विद्यार्थी अपने जीवन में कुछ न कुछ तो अवश्य ही ग्रहण करेगा। इस सम्बन्ध में यह भी आवश्यक है कि शिक्षण प्रशिक्षण स्तर पर जनसंख्या शिक्षा को अवश्य ही रखा जाय क्योंकि जब तक शिक्षकों को ही जनसंख्या शिक्षा सम्बन्धी विषय सामग्री और उसके पढ़ाने के तौर तरीके मालूम नहीं होगें तब तक वह ठीक से विद्यार्थियों को नहीं पढ़ा सकेंगे। जनसंख्या शिक्षा के

लिए आवश्यक आधार तैयार करना पर्याप्त नहीं है बल्कि यह भी आवश्यक है कि जनसंख्या शिक्षा के लिए एक उचित नीति बनाकर क्रियान्वित भी की जाये। इसके अन्तर्गत समाज में शिक्षकों, विभिन्न ऐच्छिक सामाजिक संगठनों एवं सरकार आदि सभी को बड़ी गम्भीर भूमिका की आवश्यकता होगी।

वास्तव में जनसंख्या शिक्षा को स्कूली पाठ्यक्रम में स्थान देने पर ही उद्देश्य की प्राप्ति नहीं हो सकती इसके लिए पहले तो शिक्षक को हृदय से इस उत्तरदायित्व को स्वीकारना होगा। तत्पश्चात् दोहरी भूमिका का निर्वाह करना होगा। पहली भूमिका तो उनकी यह है कि अपने विद्यालय के बच्चों को जनसंख्या शिक्षा दें। उनके शैक्षिक स्तर के अनुकूल हो उनको समस्या अवगत कराया जाये। विषय की रोचकता बनाये रखने के लिए विभिन्न भाषा वाद विवाद और नाटक प्रदर्शन आदि जैसे पाठ्यक्रम भी आयोजित किये जाये, विद्यालय में जब कभी भी कोई प्रदर्शनी लगे तो उसमें एक जनसंख्या शिक्षा से सम्बन्धित हो। इस सम्बन्ध में निरन्तर शिक्षा सर्वाधिक प्रभावी होगी। शिक्षकों की दूसरी भूमिका यह होनी चाहिए कि वे विद्यालय के बाहर के युवकों को भी जनसंख्या शिक्षा दें। इसके लिए शिक्षक विद्यालयों में इन युवकों को अपने तत्सम्बन्धी कार्यो में भाग लेने का अवसर दें। जब कभी भी विद्यालयों में जनसंख्या शिक्षा सम्बन्धी, भाषा, वाद–विवाद, प्रदर्शनी अथवा चलचित्र आदि का आयोजन हो तो इन युवकों को आमंत्रित किया जाना चाहिए इसमें अतिरिक्त शिक्षकों को जनसेवा कार्यो के अन्तर्गत नगर और ग्रामों की जनता के पास पहुंच कर इस प्रकार के कार्यक्रमों का आयोजन करना चाहिये।

शिक्षकों के अतिरिक्त समाज में विद्यमान विभिन्न समाजसेवी एवं ऐच्छिक संगठनों को भी जनसंख्या शिक्षा के कार्य के लिये आगे आना चाहिए। यह संगठन अपने कार्यकर्ताओं द्वारा अपने –अपने क्षेत्र विशेष में इस शिक्षा से सम्बन्धित विभिन्न कार्यक्रमों को विभिन्न प्रदर्शनियों, मेले, भाषणों आदि के माध्यम से विभिन्न उपायों से आम जनता की रुचि बनाये रखने के लिए यह शिक्षा प्रदान करना चाहिए।

जन–शिक्षा के सबसे अधिक प्रभावशाली साधन है – पोस्टर, पत्र, पत्रिका, रेडियो, टेलीविजन, नाटक और चलचित्र जनसंख्या शिक्षा सम्बन्धी केन्द्रीय और प्रान्तीय विभागों को इस कार्यक्रम को प्रौढ़ शिक्षा के साथ जोड़ देना चाहिए और प्रौढ़ों को लिखने–पढ़ने, सामान्य जीवन की जानकारी, अपने अधिकार एवं कर्त्तव्यों की जानकारी के साथ – साथ उन्हें जनसंख्या वृद्धि के प्रति जागरुक करना चाहिए। इसके लिए छोटा परिवार सुखी परिवार के पोस्टर लगवाने चाहिए, पत्र पत्रिकाओं में जनसंख्या शिक्षा सम्बन्धी सामग्री प्रकाशित की जानी चाहिए, रेडियो पर वार्तायें एवं नाटक प्रसारित करने चाहिए, टेलीविजन नाटक और चलचित्रों द्वारा विचारों को जीवित रुप दिया जाना चाहिए। इससे स्कूल के बच्चे और स्कूल के बाहर के व्यक्ति सभी लाभान्वित होंगे।

जनसंख्या समस्या एवं परिवार नियोजन -:

भारत में जनसंख्या समस्या के दो पहलू है, प्रथम संख्यात्मक द्वितीय गुणात्मक। संख्यात्मक पहलू के अन्तर्गत, भारत में भू–क्षेत्र की तुलना में जनाधिक्य एवं जनसंख्या घनत्व अधिक है व आर्श्रिता अनुपात अधिक, जनसंख्या का वितरण असमान है तथा जनसंख्या वृद्धि दर अनियन्त्रित है। इसी प्रकार समस्या के गुणात्मक पहलू के अन्तर्गत हमारे देश में विद्यमान कुल जनसंख्या के लिए वस्तुओं एवं सेवाओं का पर्याप्त एवं कुशल उत्पादन नहीं, उत्पादित वस्तुओं एवं सेवाओं का न्यायमुक्त वितरण नहीं, जीवन स्तर बहुत नीचा तथा स्वास्थ्य दशायें बहुत शोचनीय हैं। अतः जनसंख्या की समस्या के कारगर हल के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि नीति ऐसी हो जो समस्या के दोनों पहलुओं पर चोट करें। इस दृष्टिकोण से परिवार नियोजन कार्यक्रम अत्याधिक उपर्युक्त है। क्योंकि इस कार्यक्रम के भी दो पहलू है– प्रथम, जनसंख्या नियन्त्रण तथा द्वितीय मातृ एवं शिशु कल्याण। जनसंख्या के संख्यात्मक पहलू को परिवार नियोजन कार्यक्रम के विभिन्न उपायों के द्वारा हल कर जनसंख्या के आकार को नियन्त्रित किया जा सकता है। वही परिवार नियोजन कार्यक्रम का मातृ एवं शिशु कल्याण कार्यक्रम जनसंख्या समस्या के गुणात्मक पहलू का भी हल प्रस्तुत कर सकती है। क्योंकि स्वस्थ

एवं शिक्षित माँ स्वाभाविक एवं निश्चित रूप से अपने शिशु को भी स्वस्थ्य एवं शिक्षित रखेगी और यही शिशु भविष्य में बड़ा होकर स्वस्थ्य एवं शिक्षित समाज का अंग बन सकेगा।

परिवार नियोजन कार्यक्रम का औचित्य -:

भारत जैसे अर्द्धविकसित देश में परिवार नियोजन की आवश्यकता को समय की सबसे प्रमुख आवश्यकता कहा जाता है, क्योंकि प्रतिदिन सैकड़ों बच्चों का आगमन चिंता का विषय बन गया है। यदि जन्मदर में कमी नहीं लायी गयी तो, देश में जनसंख्या के ज्वालामुखी का भंयकर विस्फोट टाला नहीं जा सकेगा। इसके लिए संतति निरोध की उचित विधियों को अपनाना आवश्यक है। पश्चिमी देशों में तो चिरकाल से परिवार–नियोजन उनके जीवन का अभिन्न अंग बन चुका है। भारत में जनसंख्या बड़ी तेजी से बढ़ रही है। मौजूदा जनसंख्या 1 मार्च 2001 की जनगणना के अनुसार जनसंख्या 10,27,015,247 है। जिसकी वार्षिक वृद्धि दर 1.95 प्रतिशत है।

साथ ही भारत में स्वास्थ्य सेवाओं के प्रसार से मृत्युदर में कमी आ गयी है और जन्म दर को कम करके जनसंख्या की अत्याधिक वृद्धि को कम किया जा सकता है। जन्म दर में कमी करना आर्थिक, सामाजिक और शारीरिक, नैतिक, राजनैतिक सभी दृष्टिकोणों से आवश्यक है। भारत में परिवार नियोजन की अनिवार्यता को निम्न संदर्भ में स्पष्ट कर सकते है।

१. आर्थिक –:

आर्थिक कारणों के आधार पर जन्म दर में कमी होना आवश्यक है, क्योंकि राष्ट्रीय आय एवं उत्पादन की वृद्धि की बढ़ती हुयी जनसंख्या निष्फल कर देती है। जनसंख्या तभी कम हो सकती है, जब प्रत्येक दम्पत्ति परिवार द्वारा अपने बच्चों की संख्या कम करने का प्रयत्न करें। बच्चों की अच्छी शिक्षा, आवास, उचित पोषण और अन्य सुविधायें प्रदान करने के लिए यह आवश्यक है कि परिवार के आकार पर नियंत्रण रखा जाये।

भारत का ही उदाहरण ले, तो परिवार नियोजन की आवश्यकता और अधिक स्पष्ट हो जायेगी। भारत पहली तीन पंचवर्षीय योजनाओं में कुल राष्ट्रीय आय में औसत वार्षिक वृद्धि की दर 3.8 प्रतिशत रही, जबकि इसी अवधि में प्रति व्यक्ति आय में 1.25 प्रतिशत के हिसाब से औसत वार्षिक वृद्धि हुयी। इसका अर्थ यह हुआ कि कुल राष्ट्रीय आय में वृद्धि के आधे से भी अधिक भाग को जनसंख्या की वृद्धि ने पर हड़प लिया। बढ़ती हुयी जनसंख्या के कारण देश में बेरोजगारी की समस्या और अधिक जटिल हो गयी है। विस्फोटक गति से बढ़ती हुयी जनसंख्या हमारी जीवन स्तर को निम्न बनाती जा रही है। भारत में 87 प्रतिशत परिवार केवल जीवन–निर्वाह के लिए बराबर आय पाते है। अतः रहन–सहन का स्तर अत्यंत शोचनीय है। भारत में 1968 में दिल्ली में 63 प्रतिशत, कलकत्ता में 72 प्रतिशत, बम्बई में 72.3 प्रतिशत, मद्रास में 67.5 प्रतिशत अहमदाबाद में 65.3 प्रतिशत, हैदराबाद में 46 प्रतिशत तथा कानपुर में 62 प्रतिशत व्यक्ति केवल एक कमरे में रहते है। तेजी से बढ़ती हुयी जनसंख्या के कारण आवास की समस्या सुधरने के बजाय दिन प्रतिदिन और बिगड़ती जा रही है। अतः यदि आर्थिक विकास की गति को तीव्र करना है, बेरोजगारी तथा आवास की समस्याओं का समाधान शीघ्र ही करना है तो परिवार नियोजन द्वारा जनसंख्या को बढ़ने से रोकना बहुत आवश्यक है।

अशोक मेहता के शब्दों में "परिवार कल्याण आर्थिक विकास को गति प्रदान कर उसे सन्तुलित भी रख सकता है।"9

२. सामाजिक -:

परिवार नियोजन का उद्देश्य केवल परिवार के आकार को सीमित करना ही नहीं है, बल्कि युवक युवतियों का विवाह, पितृत्व या मातृत्व के योग्य बनने, काम सम्बन्धी शिक्षा, विवाह सम्बन्धी सलाह मशविरा आदि देना है। अतः परिवार नियोजन से महत्वपूर्ण सामाजिक उत्थान होगा। विशेष रूप से स्त्रियां बच्चा पैदा करने की मशीन एवं वासना की तुष्टि का साधन मात्र ही नहीं समझी जायेगी, वे फिर

सामाजिक कार्यक्रमों में अधिक भाग ले सकेगी। परिवार नियोजन पारिवारिक कलह, संघर्ष, तनाव और परेशानियों को दूर करने का एक प्रभावपूर्ण साधन है। बच्चों की संख्या सीमित रहने से स्त्रियों को भी आत्मोन्नति के लिए अधिक समय मिलेगा।

३. नैतिक -:

परिवार नियोजन का अपनाया जाना नैतिक दृष्टिकोण से भी वाछंनीय है, क्योंकि पिछली सदियों में विश्व के विभिन्न भागों में मनुष्य जनसंख्या की वृद्धि को रोकने के लिए शिशु हत्या तथा नवजात बच्चों के प्रति लापरवाही किया करते थे, परन्तु संतति निग्रह के आधुनिक तरीकों का उपयोग करने से ऐसी कोई समस्या सामने नहीं आती।

४. राजनैतिक -:

आधुनिक युद्ध की सफलता सिपाहियों (जनसंख्या) की अधिकता पर निर्भर नहीं करती हैं, बल्कि युद्ध की आधुनिक सामग्री, सामरिक व्यूह रचना आदि पर निर्भर करती है। इसके लिए देश को आर्थिक दृष्टि से समृद्धिशाली होना चाहिए और इसके लिए परिवारों का आकार छोटा होना आवश्यक है, तभी देश में खाद्य, बेरोजगारी, आवास की समस्याएँ नहीं होगी, लोगों के रहन–सहन का स्तर और स्वास्थ्य अच्छे होंगे और राजनैतिक स्थिरता बनी रहेगी।

५. स्वास्थ्य और सुप्रजनन -:

बच्चों के ठीक पालन–पोषण के लिए माताओं के अच्छे स्वास्थ्य के लिए परिवार–नियोजन आवश्यक है। 'दिल, फेफड़े, गुर्दे के किसी रोग, खून की कमी, पागलपन और गर्भ में रक्त तथा दूषित रोग वाली स्त्री को गर्भवती बनने देना उसके और बच्चे दोनों के साथ घोर अन्याय करना है।'

कुछ व्यक्तियों का विचार है कि जैसे–जैसे बच्चों की संख्या बढ़ती जाती है तथा उनके बीच अंतर कम रहता है तो वैसे–वैसे बच्चों की मृत्यु की दर अधिक होती जाती है। डा0 बुडवरी "Woodbury" ने अपनी पुस्तक ''मैटरनल मोरटेलिटी'' में लिखा

है कि "यदि प्रथम बच्चा एक ही वर्ष के उपरान्त पैदा हो जाए, तो 1000 में से 147 बच्चे शायद अपने जन्मदिन को न देख सके, यदि दो वर्ष बाद पैदा हो, तो यह मृत्यु–दर 99/1000 रहेगी और तीन वर्ष बाद पैदा होने पर यह दर घटकर 86.5/1000 हो जायेगी।"10

परिवार नियोजन कार्यक्रमों के अन्तर्गत सुप्रजनन कार्यक्रमों को अपनाकर, जनसंख्या के गुणों में सुधार किया जा सकता है। सुप्रजनन कार्यक्रम का अर्थ है क्षय, कोढ़ तथा असाध्य बीमारियों या यौन बीमारियों से पीड़ित व्यक्तियों का अनिवार्य रूप से बन्ध्याकरण, स्वस्थ्य, सुयोग्य, तीक्ष्ण बुद्धि वाले तथा निरोग व्यक्तियों को चुनकर उन्हें संतान की उत्पत्ति के लिए प्रोत्साहित किया जाए।" अनेक मूर्ख पुत्रों की तुलना में एक ही गुणवान पुत्र कुल को आलोकित करने के लिए पर्याप्त है, जिस प्रकार आकाश के अंधकार को दूर करने के लिए एक चन्द्रमा पर्याप्त है, न कि असंख्य टिमटिमाते सितारे।

भारत में परिवार-नियोजन

विकास एवं कार्यक्रम का आरम्भ -:

भारत की बढ़ती हुई जनसंख्या पर अंकुश लगाने के लिए एक प्रभावशाली तरीका परिवार नियोजन है जिसमें यह आशा की जाती है कि लोग छोटे एवं स्वस्थ्य परिवार के सिद्धान्त का अनुपालन करेंगे परिवार नियोजन कार्यक्रम को जनवरी 1982 में घोषित प्रधानमंत्री के नए 20 सूत्री कार्यक्रम में शामिल कर लिया गया है। इसमें परिवार नियोजन को जन आन्दोलन के रुप में स्वैच्छिक आधार पर बढ़ावा देने की बात कही गई है। यह उत्साहजनक तथ्य है कि भारत सरकार के स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय ने एक सुस्पष्ट दीर्घकालीन कार्यनीति तैयार कर ली है, ताकि छोटे परिवार के सिद्धान्त को पूर्णतः स्वैच्छिक आधार पर अपनाना सुनिश्चित किया जा सके। इस नीति की निम्न बातें है – बहुप्रचार साधनों और वैयक्तिक और जानकारी देने के जोरदार प्रयास करना, लोगों के घरों के निकट परिवार कल्याण की सेवाएं और सामग्री प्रदान करना, महिलाओं को तेजी से साक्षर बनाने की सुविधाएँ सुलभ करना, स्कूलों और

कॉलेजों में तथा स्कूलों के बाहर युवाओं को जनसंख्या, सम्बन्धी शिक्षा देना , अन्य सम्बन्धित मंत्रालयों और विभागों के साथ सम्बन्ध स्थापित करना, लड़कियों और लड़को के विवाह की न्यूनतम आयु सम्बन्धी कानून को प्रभावशाली ढंग से लागू करना तथा इस कार्यक्रम का सभी स्तरों पर सूक्ष्म मानीटरिंग और अनुवर्ती कार्यवाही सुनिश्चित करना।

यदि हमें लोगों के रहन–सहन के स्तर को ऊँचा बनाना है, विकास के कार्यों का अधिक से अधिक लाभ उन तक पहुँचाना है, तो आबादी की वृद्धि के अवश्य ही कम करना होगा। इसका एक मात्र उपाय यही है कि लोग स्वेच्छा से छोटे परिवार के सिद्धान्त को मानते हुये अपने परिवारों को सीमित बनाए। परिवार नियोजन कार्यक्रम के अन्तर्गत यह कोशिश की जा रही है कि देश के सभी प्रजननशील आयु वर्ग के दम्पत्तियों तक पहुँचकर उन्हें छोटे परिवार के विषय में समझाया जाए, और सेवाएं प्रदान की जाए। इसके साथ ही मातृ–शिशु सेवाओं का भी विस्तार किया जा रहा है, ताकि गर्भवती महिलाओं, माताओं एवं बच्चों के स्वास्थ्य की ठीक से देखभाल हो सके। परिवार नियोजन कार्यक्रम तथा मातृ–कार्यक्रम समन्वित रूप से चलाया जा रहा है और विशेषकर गाँवों में इसके प्रचार और प्रसार पर अधिक बल दिया जा रहा है। इसमें न केवल सरकारी तन्त्र का भरपूर उपयोग किया जा रहा है बल्कि विभिन्न क्षेत्रों के जन–नेताओं का भी अधिक से अधिक सहयोग पाने का प्रयास किया जा रहा है। इस दृष्टि से देश के गाँवों में आयोजित किए जाने वाले प्रेरणा शिविरों का उल्लेख करना भी महत्वपूर्ण है। इन शिविरों में गाँवों के महत्वपूर्ण पुरूषों और स्त्रियों को आमन्त्रित किया जाता है, और उन्हें स्वास्थ्य एवं परिवार नियोजन की आवश्यकताओं तथा सेवाओं के सम्बन्ध में आवश्यक जानकारी दी जाती है और बातचीत तथा प्रचार साहित्य के माध्यम से उनके मन की शंकाओं अथवा डरों को दूर करने का प्रयास किया जाता है।

परिवार नियोजन की सभी सेवाएं मुफ्त प्रदान की जाती है, चाहे नसबन्दी हो या निरोध या ऐसा ही कोई अन्य उपाय हो। ज्यों–ज्यों लोग स्वेच्छा से इन सेवाओं का लाभ उठायेंगे और अपने परिवारों को सीमित रखने का स्वयं ही निर्णय करेंगे,

त्यों–त्यों आबादी की भयंकर विभीषका पर काबू पाना आसान होता जाएगा और देशवासियों के जीवन–स्तर में उल्लेखनीय उन्नति लाना सम्भव हो सकेगा। यह सभी के हित में है और प्रजननशील आयु के प्रत्येक दम्पत्ति को इस तथ्य से विभुख नहीं होना चाहिए।

योजना आयोग के अनुसार "भारत जैसी स्थिति वाले देश में जनसंख्या की अत्याधिक वृद्धि दर से आर्थिक विकास एवं प्रति व्यक्ति जीवन–स्तर पर निश्चय ही बुरा प्रभाव पड़ता है।" इस कथन के अनुसार भारतवर्ष की तत्कालीन दो समस्याएँ हैं – पहली बढ़ती आबादी और दूसरी गरीबी या भुखमरी।"11

भारत में हर साल लगभग 80 लाख व्यक्ति मरते हैं। इनमें से एक तिहाई स्वच्छ पेयजल न मिलने के कारण, दूसरे एक तिहाई उचित स्वास्थ्य परिस्थितियों के उपलब्ध न होने के कारण और शेष एक तिहाई पुष्टिकर भोजन और बलवर्धक आहार न मिलने के कारण मरते है। यदि शुद्ध पेयजल, पौष्टिक आहार और स्वास्थ्यप्रद स्थिति भारत में उपलब्ध हो सके तो 80 लाख भारतीयों को मृत्यु से बचाया जा सकता है। भारत जैसे अर्द्धविकसित देशों में 15 साल से कम आयु के बच्चे 33 प्रतिशत हैं जबकि यूरोप में यह प्रतिशत 20 है। राष्ट्रीय उत्पत्ति का एक बड़ा भाग इनके लालन–पालन पर ही खर्च हो जाता है। अतः परिवार नियोजन राष्ट्रीय दृष्टिकोण से भी आवश्यक है।

विश्व के सभी देश जनसंख्या वृद्धि की समस्या को स्वीकार करते हैं लेकिन इस समस्या पर काबू पाने के लिए सबसे पहले भारतवर्ष ने ही सरकारी तौर पर परिवार नियोजन के कार्यक्रम को अपनाया है। इसका कारण यह था कि 1920–1970 के बीच जहाँ विकसित देशों की जनसंख्या में 60 प्रतिशत और विकासशील देशों की जनसंख्या 111 प्रतिशत वृद्धि हुई। वहाँ भारतवर्ष की जनसंख्या में 120 प्रतिशत की वृद्धि हुई। इस के विकास के परिणामस्वरुप आर्थिक विकास की गति मन्द हो गयी है। अगर भारतीय जनसंख्या वृद्धि पर नियन्त्रण नहीं किया गया तो अगले चार दशक आर्थिक विकास की दर को कम करने के लिए निर्णायक तत्व होंगे। अतः जीवन–स्तर को वर्तमान स्तर पर ही बनाये रखने के लिए परिवार नियोजन की आवश्यकता है।

इस सम्बन्ध में प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी बाजपेयी के अनुसार "हमारी अर्थव्यवस्था इस समय उच्च वृद्धि के दौर से गुजर रही है। जनसंख्या वृद्धि में कमी होने से हम इस स्थिति को प्रतिव्यक्ति आय में वृद्धि, बेहतर स्वास्थ्य सुविधाए तथा सबके लिए शिक्षा के रूप में परिवर्तित कर सकेंगे।"12 इनके इस वक्तव्य से यह स्पष्ट होता है कि परिवार नियोजन की कितनी आवश्यकता है।

डॉ0 चन्द्रशेखर के अनुसार, "भारत में परिवार नियोजन का मुख्य लक्ष्य जनसंख्या की मौजूदा वृद्धिदर को कम करके 25 प्रति हजार करना है। इसके लिए देश के उन युगलों के प्रत्यक्ष तथा परोक्ष सहयोग की आवश्यकता होती है, जो पुनरूत्पादन के आयु–वर्ग में आते है।"13

वर्तमान सदी के आरम्भ से ही बुद्धि जीवियों ने भारत की जनसंख्या की तीव्र वृद्धि को देखते हुए माँ तथा बच्चों के स्वास्थ्य को उच्च–स्तरीय बनाने तथा देश के सामाजिक और आर्थिक स्तर को ऊँचा उठाने के लिए जनसंख्या रोक के बारे में अपने–अपने विचार व्यक्त किये है, सर्वप्रथम भारत में परिवार परिसीमन के पक्ष में पी0के0 बाटल ने अपनी पुस्तक "पापुलेशन प्रॉब्लम इन इण्डिया" में व्यक्त किये। प्रो0 एन0 एस0 फड़के ने सन् 1923 में, बम्बई में बर्थ कन्ट्रोल लीग की स्थापना की तथा उसी समय पूना में जी0डी0 कुलकर्णी ने भी संगठन की स्थापना की। इस दिशा में प्रो0 आर0 डी0 कर्वे प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने 1925 में एक परिवार नियोजन क्लीनिक की स्थापना बम्बई में की।

मैसूर सरकार ने भी सन् 1930 में राजकीय अस्पताल बंगलौर में परिवार क्लीनिक की स्थापना की परन्तु क्लीनिक के कार्यों में प्रगति न हो सकी। ऑल इण्डिया विमेन्स कान्फ्रेंस, जो 1932 में लखनऊ में सम्पन्न हुई, उसमें भी यह कहा गया कि मान्यता प्राप्त क्लीनिकों के माध्यम से पुरूषों तथा स्त्रियों को परिवार नियोजन के तरीकों का ज्ञान कराया जाना चाहिए। वर्ष 1933 में भारतीय कांग्रेस द्वारा नेशनल प्लानिंग कमेटी ने भी परिवार नियोजन ज्ञान तथा प्रयोग पर अत्यधिक बल दिया।

तत्पश्चात् सन् 1936 में लखनऊ में सम्पन्न हुई प्रथम भारत जनसंख्या कांफ्रेस तथा 1938 में बम्बई में द्वितीय कांफ्रेस ने भी प्रजनन भिन्नता को अपना मुद्दा बनाया। चार वर्ष पश्चात् 1940 में पी0 एन0 सप्रू ने एक प्रस्ताव पारित किया जिसमें भारत के सभी प्रान्तों में जन्म नियन्त्रण क्लीनिक खोले जाने की सिफारिश की। इन सभी प्रयासों का परिणाम यह हुआ कि भारत सरकार ने जनसंख्या के क्षेत्र में अपना विशेष ध्यान केन्द्रित किया। सन् 1943 में सरकार ने ''हैल्थ सर्वे एण्ड डेवलपमेंट कमेटी'' जिसे ''भोर कमेटी'' के नाम से जाना जाता है का सजृन किया। इस कमेटी का मुख्य कार्य भारत की स्वास्थ्य सम्बन्धी आवश्यकताएं जानना तथा जनसंख्या सम्बन्धी आँकड़ो का संकलन करना था।

सन् 1949 में बम्बई में 'फेमिली प्लानिंग एसोसियेशन ऑफ इण्डिया' की स्थापना स्वैच्छिक संस्था के रूप में की गई। स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त भारत सरकार ने योजना आयोग का गठन किया जिसका मुख्य उद्देश्य देश में उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों को आर्थिक विकास के लिए आदर्शतम उपयोग किये जाने के लिए योजना तैयार करना था।

आज परिवार नियोजन का नारा है माँ की सेहत का मंतर, बच्चों में हो काफी अन्तर तथा अगला बच्चा अभी नहीं, दो के बाद कभी नहीं।

भारत में परिवार नियोजन सबसे बड़ा राष्ट्रीय कार्यक्रम है। जनसंख्या में जिस तीव्र गति से वृद्धि हो रही है, उसे देखते हुए परिवार नियोजन ही देश के समक्ष एक मात्र विकल्प है। भारत में प्रति सेकेण्ड एक बच्चा उत्पन्न होता है। प्रतिवर्ष भारत की जनसंख्या में आस्ट्रेलिया के बराबर आबादी जुड़ती जाती है। इसके विपरीत जीवन–स्तर की दृष्टि से भारत की 87 प्रतिशत जनसंख्या की आमदनी जीवन–निर्वाह के स्तर पर है। वर्ष 1960 में 25.5 प्रतिशत परिवारों की औसत दैनिक आमदनी 35 पैसे थी। 23.2 प्रतिशत परिवारों की औसत दैनिक आमदनी 14 पैसे थी। 87 प्रतिशत की औसत दैनिक आमदनी 3 पैसे थी। इस समय देश में 10.6 करोड़ व्यक्ति पूरी तरह बेरोजगार हैं। ऐसी स्थिति में परिवार नियोजन द्वारा ही देश की सामान्य जनता आर्थिक

और सामाजिक विकास की प्रगति से लाभान्वित हो सकती है।

डा0 चन्द्रशेखर के अनुसार "हम बहुत जल्दी में हैं" आप एक रात्रि की भी प्रतीक्षा नहीं कर सकते। पांच मिनट की अवधि में होने वाला विस्फोट एक बच्चे को जन्म देता है और प्रतिवर्ष भारत अपनी जनसंख्या में एक आस्ट्रेलिया जोड़ता है।"14

परिवार नियोजन जनसंख्या कम करने का केवल एक भौतिक साधन ही नहीं है, बल्कि स्वस्थ समृद्ध समाज की नींव डालने वाला एक नया दर्शन है। संक्षेप में परिवार नियोजन सामाजिक रूपान्तरण का एक उपकरण है।

भारत का ही उदाहरण लें, तो परिवार नियोजन की आवश्यकता और अधिक स्पष्ट हो जायेगी। भारत में पहली तीन पंचवर्षीय योजनाओं में कुल राष्ट्रीय आय में औसत वार्षिक वृद्धि की दर 3.8 प्रतिशत रही जबकि इसी अवधि में प्रति व्यक्ति आय में 1.25 प्रतिशत के हिसाब से औसत वार्षिक वृद्धि हुई। इसका अर्थ यह हुआ कि कुल राष्ट्रीय आय में वृद्धि के आधे से भी अधिक भाग को जनसंख्या की वृद्धि ने हड़प लिया। बढ़ती हुयी जनसंख्या के कारण भारत में बेरोजगारी की समस्या और अधिक जटिल हो गई है। विस्फोटक गति से बढ़ती हुई जनसंख्या हमारी प्रति व्यक्ति आय को अधिकाधिक प्रभावित करती जा रही है।

आज 26.10 प्रतिशत तक जनसंख्या गरीबी की रेखा के नीचे है। आज चीन जैसे कट्टर मार्क्सवदी देशों ने भी "एक बच्चे" का लक्ष्य बना लिया है। एक बच्चे के ही रहने पर एक कार्ड पर बहुत सी सुविधायें दी जाती हैं। दो बच्चे होने पर दण्ड मिलने शुरु हो जाते हैं। तीन बच्चों पर इतनी सुविधायें कम हो जाती है तथा दण्ड इतने अधिक हो जाते है कि परिवार भूखा ही मरने लगेगा।

डा0 चन्द्रशेखर –

"We are in great hurry. You Cannot wait for a night. One expsure lasting five minuter leds ta a bady and every year India adds one Australia to its population. Every night is a nightmare until the explasion is checked." 15

स्वतन्त्रता पूर्व नियोजन कार्यक्रम की प्रगति -:

भारत में परिवार कल्याण कार्यक्रम बहुत पुराना नहीं है। सन् 1916 में श्री प्यारे किशन वात्तल ने जनसंख्या वृद्धि और उसके परिणामों का विवरण देते हुए अपनी पुस्तक *"The population problems of India* प्रकाशित की। इस पुस्तक में परिवार कल्याण के महत्व पर प्रकाश डाला। सन् 1925 में प्रोफेसर आर0 डी0कर्वे ने महाराष्ट्र में संतति निग्रह चिकित्सालय स्थापित किया। उस समय यह कल्पना भी नहीं की जा सकती थी कि भविष्य में संतति निग्रह का यह प्रयोग राष्ट्रव्यापी आन्दोलन का सूत्रपात करेगा इसके कुछ समय उपरांत ही मद्रास में नव माल्थसवादी संघ की स्थापना की गई। 11 जून 1930 में मैसूर में शासन द्वारा संसार की सर्वप्रथम ''वर्थ कंट्रोल क्लीनिक'' की स्थापना की गई, जो सरकार के लिए सदैव गौरव का विषय बना रहेगा। सन् 1930 से ही देश के शिक्षित जनमत ने परिवार कल्याण के विचार का स्वागत किया। सन् 1933 में मद्रास सरकार ने अपनी प्रेसीडेंट में संतति–निग्रह चिकित्सालय प्रारम्भ किया। इसी वर्ष 'ऑल इण्डिया वीमैन कांफ्रेस ने, जिसके अध्यक्ष स्वर्गीय जवाहर लाल नेहरु थे, एक ''राष्ट्रीय नियोजन समिति'' की स्थापना की। इस समिति ने परिवार कल्याण कार्यक्रम की आवश्यकता स्वीकार करते हुए, इसे योजना का अभिन्न अंग बना दिया। ''अखिल भारतीय महिला सभा'' के विशेष निमंत्रण पर परिवार कल्याण कार्यक्रम की अमेरिकन महिला विशेषज्ञ श्रीमती मार्गरेट सेंगर 1936 में भारतवर्ष आयी। उनका यह कथन था कि *"Reproduction is a Privilege not a right"* अतएव मानव को अपने इस दायित्व को विवेकपूर्ण ढंग से निभाना चाहिये। उन्होंने अपने संतति–निग्रह कार्यक्रम के अनुभवों के आधर पर परिवार कल्याण को लोकप्रिय बनाने की सलाह दी। 1 सितम्बर सन् 1935 को ''फैमिली हाइजीन'' सम्बन्धी अध्ययन हेतु एक समिति का गठन किया गया। डा0 ए0पी0 पिल्लई ने जो,संतति निग्रह के प्रबल समर्थक थे। सन् 1936 में कई स्थानों पर प्रशिक्षण केन्द्रों की स्थापना की। सन् 1938 में अखिल भारतीय कांग्रेस के अध्यक्ष श्री सुभाषचन्द्र बोस ने अपने अध्यक्षीय भाषण में परिवार कल्याण

कार्यक्रम का समर्थन किया। इसी प्रकार मातृ–सेवा संघ द्वारा 1939 में उज्जैन तथा उत्तर प्रदेश में कुछ क्लीनिक खोले गये।

राष्ट्रीय नियोजन समिति -:

सन् 1938 में राष्ट्रीय नियोजन समिति ने जनसंख्या के नियन्त्रण पर विशेष बल दिया। नियोजन समिति ने जो सिफारिश की, वह इस प्रकार थी–

1. देश में परिवार नियोजन क्लीनिक खोले जायें और लोगों को परिवार नियोजन सम्बन्धी सुविधायें सुलभ करायी जायें।
2. मेडिकल कॉलेजो के अन्दर परिवार नियोजन की शिक्षा को पाठ्यक्रम के अन्दर शामिल किया जाना चाहिए।
3. परिवार में बच्चों की संख्या को चार तक समिति रखना चाहिये।
4. पागल, मिर्गी से पीड़ित तथा अन्य संक्रामक रोगों से पीड़ित व्यक्तियों का बन्ध्याकरण करना चाहिये।
5. परिवार नियोजन कार्यक्रम के प्रसार के लिए कर्मचारियों को प्रशिक्षित करना चाहिए।

योजना आयोग -:

सन् 1949 में योजना आयोग का गठन किया गया। योजना आयोग ने आर्थिक, सामाजिक विकास के लिए परिवार नियोजन को अधिक महत्व दिया, साथ ही मृत्युदर को कम करना भी आवश्यक माना गया। अतः स्वास्थ्य सेवाओं में काफी प्रसार किया गया और परिवार–नियोजन कार्यक्रम को आर्थिक विकास का आवश्यक अंग माना गया।

इससे पूर्व 1931 में ही भारत के *Census Commission* ने परिवार नियोजन द्वारा जन्म दर को कम करने की आवश्यकता की ओर ध्यान आकृष्ट किया था। 1933 में अखिल भारतीय महिला सभा ने स्त्रियों व पुरूषों में परिवार के प्रति जागरूकता लाने पर बल दिया।1935 में अखिल भारतीय मेडिकल कांफ्रेस ने परिवार नियोजन सम्बन्धी शिक्षा को डॉक्टरी कोर्स में शामिल करने की सिफारिश की। 1936

में अखिल भारतीय कांग्रेस के हरिपुरा अधिवेशन में नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने कहा "भारत के दीर्घकालीन कार्यक्रम में प्रथम समस्या जनसंख्या समस्या की ओर ध्यान देना होगा। हमारे देश में बीमारियां, भुखमरी व गरीबी व्यापक है और हर दशक में तीन करोड़ के हिसाब से जनसंख्या नहीं बढ़ने दे सकते हैं– अन्यथा हमारा समस्त आयोजन असफल हो जायेगा। इसलिये मैं जनसंख्या नियंत्रण की ओर सर्वसाधारण को जागरुक कराना आवश्यक मानूगां।"

1938 में श्री बी0जी0 खरे ने अखिल भारतीय जनसंख्या व परिवार हाइजीन कांफ्रेस में उद्घाटन भाषण में कहा है कि "विश्व में शायद ही कोई ऐसा देश हो, जिसे जनसंख्या नियन्त्रण की आवश्यकता भारत की भांति हो। भारत की राष्ट्रीय नियोजन कमेटी ने, जिसके अध्यक्ष श्री जवाहर लाल नेहरू थे, 1938 में जनसंख्या नियन्त्रण पर बहुत जोर दिया।"

सन् 1939 में "रैना साहब" ने उज्जैन में एक मातृ सेवा मंदिर" प्रारम्भ किया सन् 1940 में श्री पी0एन0 सप्रू "कौसिंल ऑफ स्टेटस" ने बर्थ कन्ट्रोल क्लीनिक चलाये जाने का प्रस्ताव रखा जो बहुमत से पास हुआ। इसी काल में "फैमिली प्लानिंग ऐसोसिएशन लंदन" की ओर से श्रीमति "रीना दत्त" ने भारत वर्ष का भ्रमण किया। सन् 1940 में बम्बई में "भगिनी समाज संतति निग्रह चिकित्सा केन्द्र" को सम्मिलित करते हुए "स्टडी एण्ड प्रोमोशन ऑफ फेमली हाइजीन समिति" ने "फैमली प्लानिंग सोसायटी" के रूप में कार्य करना प्रारम्भ किया। सन् 1943 में "हैल्थ सर्बे एण्ड डेवलपमेंट कमेटी" की स्थापना की गई, जिसके अध्यक्ष श्री जोसेफ मोर थे। सन् 1946 में इस समिति ने अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया, जिसमें केवल माताओं और बच्चों के स्वास्थ्य की दृष्टि से परिवार कल्याण के अपनायें जाने के सम्बन्ध में सुझाव दिये गये। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने भी भारतवर्ष में जनसंख्या वृद्धि से उत्पन्न समस्याओं के समाधान में अपने विचार व्यक्त किये उन्होंने यद्यपि संतति–निग्रह के कृत्रिम साधनों के प्रयोग का विरोध किया। तथापि परिवार –कल्याण की आवश्यकता को स्वीकार किया।

सन् 1949 में श्रीमती धनवंती रामाराव की अध्यक्षता में "भारतीय परिवार नियोजन संघ" की स्थापना की गई। भारत में इस दिशा में यह एक अग्रगामी कदम था। सन् 1951 में "योजना आयोग ने परिवार कल्याण के महत्व को ध्यान में रखकर एक विशेष समिति का गठन किया, इस समिति की अध्यक्ष डा0 सुशीला नय्यर थी। इसके सदस्य डा0 आर0 ए0 गोपालास्वामी, डा0 ज्ञानचन्द्र एवं डा0 ए0 सी0 बसु थे। इसके अतिरिक्त इसकी महत्वपूर्ण सदस्यता श्रीमती धनवंती रामाराव भी थी, इस समिति ने अध्ययन का जो लेखा–जोखा प्रस्तुत किया, उसमें बढ़ती हुई जनसंख्या की समस्या पर गहन चिन्ता व्यक्त करते हुए परिवार कल्याण कार्यक्रम सम्बन्धी महत्वपूर्ण सुझाव भी दिये थे। इसी काल में 'प्लांड पैरंटहुड के माने हुए अमरीकन विशेषज्ञ "डा0 अब्राहम स्टोन" भारत आये और उन्होंने रिदिम विधि के आधार पर देश के दिल्ली, मैसूर, पश्चिमी बंगाल आदि राज्यों में पांच केन्द्रों की स्थापना की। इन केन्द्रो में महिलाओं के लिए रिदम विधि अथवा सुरक्षित प्रसव–काल सम्बन्धी प्रशिक्षण प्रारम्भ किया गया।

सन् 1953 में पापुलेशन कौंसिल के नियंत्रण पर दो और विशेषज्ञ डा0 फ्रैंक डब्लू नोटेस्टीन एवं डा0 ल्यूनावाम गार्टनर भारतीय जनसंख्या सम्बन्धी समस्या पर सलाह देने हेतु आये। इनके सुझाव पर "परिवार कल्याण अनुसंधान एवं कार्यक्रम समिति ने यह निर्णय सर्वानुमति से लिया कि अपने देश में परिवार कल्याण कार्यक्रम तत्काल प्रारम्भ किया जाना आवश्यक है। इसके लिए दो उप–समितियों का भी गठन किया गया। इस समिति ने अपनी पहली बैठक में इस बात पर बल दिया कि "परिवार–कल्याण कार्यक्रम संतति निग्रह अथवा दो बच्चों के जन्म के बीच उचित अन्तर तक ही सीमित न रखा जाय। वास्तव में जहाँ तक सम्भव हो सके, समाज में परिवार की इकाई को उचित स्थान प्राप्त होना चाहिए जिससे व्यक्ति को विकास का पूर्ण अवसर मिले, उसकी प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति हो और परिवार का प्रत्येक सदस्य स्वस्थ, शिक्षित और समृद्ध बन सके। इन सभी पहलुओं को, ध्यान में रखकर कार्यक्रम की रूपरेखा बनायी जाये।

स्वतंत्रता पश्चात् परिवार नियोजन एवं सरकारी प्रयत्न एवं उपलब्धियां

प्रथम पंचवर्षीय योजना-:

भारत में राजकीय कार्यक्रम के रुप में परिवार नियोजन कार्यक्रम का आरम्भ सन् 1952 से हुआ। प्रथम पंचवर्षीय योजना में परिवार नियोजन कार्यक्रम के लिए 65 लाख रुपयों का प्राविधान किया गया और इसे स्वास्थ्य सेवा का अंग माना गया। जनसंख्या के नियंत्रण की दृष्टि से, योजना के अन्तर्गत विशेष कार्य नहीं हुआ। यह अनुमान लगाया गया कि जनता बढ़ती हुई जनसंख्या से उत्पन्न हानियों से परिचित होगी और जन्मदर कम हो जायेगी। सरकार का यह अनुमान था कि संयम के आधार पर जनसंख्या की वृद्धि दर कम हो जायेगी। फलस्वरुप काफी महत्वपूर्ण समय इसी उधेड़बुन में बीत गया।

योजना के अन्तर्गत, निम्न बातों के ऊपर विशेष जोर दिया गया।

1. जनसंख्या में तीव्र वृद्धि के वैज्ञानिक कारणों को ज्ञात करना।
2. प्रजनन सम्बन्धी तथ्यों को ज्ञात करना और उनके नियमन के उपायों का पता लगाना।
3. जन–शिक्षा के प्रचार द्वारा लोगों को परिवार–नियोजन के प्रति जागरुक करना।
4. स्वास्थ्य सेवा के अन्तर्गत परिवार–नियोजन परामर्श केन्द्रों की सुविधा को सुलभ करना।
5. परिवार नियोजन के उपर्युक्त साधनों का प्रचार करना।
6. उन स्त्रियों को परिवार नियोजन की सलाह देना जिनका स्वास्थ्य अधिक सन्तानोत्पादन के कारण खराब हैं।
7. देश के विभिन्न समुदायों और क्षेत्रों के अन्तर्गत पुनरूत्पादन के प्रति लोगों की मनोवृत्ति का अध्ययन करना।

उपर्युक्त लक्ष्यों को दृष्टि में रखते हुये 1953 में परिवार नियोजन शोध और कार्यक्रम समिति और 1954 में "परिवार नियोजन अनुदान आयोग" की स्थापना की गयी। नगरीय क्षेत्रों में 126 और ग्रामीण क्षेत्रों में 21 परिवार नियोजन केन्द्र खोले गये। इसके अतिरिक्त जन्म नियन्त्रण सम्बन्धी विभिन्न विधियों की उपयोगिता को ज्ञात करने के लिए कुछ अग्रगामी परियोजनाओं को आरम्भ किया गया। योजना के अन्तर्गत यद्यपि 65 लाख रुपये का प्रावधान किया गया था। किन्तु इस धनराशि का भी उपयोग नहीं किया जा सका इसमें केवल 14.51 लाख रूपये का उपयोग हो पाया। यह धनराशि भी केवल केन्द्र द्वारा व्यय की गई। राज्य सरकारों ने इस दिशा में कोई दिलचस्पी नहीं ली। 205 निजी क्षेत्रों द्वारा संचालित केन्द्रों को सहायता दी गई। इन केन्द्रों में *Rhythmic method* तथा उपकरणों का प्रयोग करने की सलाह दी जाती थी।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना -:

इस योजना में परिवार नियोजन के प्रति कुछ जागरूक नीति अपनाई गई। आर्थिक तथा सामाजिक विकास के लिए परिवार नियोजन को आवश्यक माना गया। अतः द्वितीय योजना के अन्तर्गत निम्नलिखित बातों का समावेश किया गया–

1. परिवार नियोजन सम्बन्धी परामर्श और सुविधा का प्रसार करना।
2. कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षित करने की व्यवस्था में प्रसार करना।
3. पुनरूत्पादन सम्बन्धी जैविक और स्वास्थ्य सम्बन्धी तथ्यों का अध्ययन करना।
4. परिवार नियोजन तथा यौन सम्बन्धी शिक्षा का प्रसार करना।
5. प्रत्येक 50,000 की जनसंख्या वाले नगरों में कम से कम एक परिवार नियोजन केन्द्र की स्थापना करना।
6. केन्द्रीय समिति द्वारा अनुदान प्राप्त संस्थाओं का निरीक्षण और पर्यवेक्षण करना।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में परिवार –नियोजन के लिए 5 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया। योजना के अन्तर्गत 1956 में एक परिवार नियोजन बोर्ड की स्थापना की गई। इसका उद्देश्य परिवार नियोजन कार्यक्रम का प्रसार, प्रचार, समन्वय

और प्रगति का मूल्यांकन करना है। इसके अतिरिक्त केन्द्र में एक परिवार नियोजन निर्देशक की नियुक्ति की गई। कुछ राज्यों के अन्तर्गत परिवार नियोजन अधिकारियों की नियुक्ति की गई। योजना काल में नगरीय क्षेत्रों के अन्दर परिवार नियोजन केन्द्रों की संख्या 549 हो गई। इसके विपरीत ग्रामीण क्षेत्रों में परिवार नियोजन केन्द्रों की संख्या 1100 हो गई। इसके अतिरिक्त 1864 ग्रामीण और 300 नगरीय स्वास्थ्य केन्द्रों में परिवार नियोजन की सुविधाओं को सुलभ किया गया। द्वितीय योजना के अन्त तक प्रति 10 लाख जनसंख्या के लिए 3.8 क्लीनिक उपलब्ध थे इस योजना में परिवार नियोजन के लिए यद्यपि 5 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया था। किन्तु इस पूरी धनराशि का उपयोग नहीं हो सका, केवल 43.4 प्रतिशत का ही उपयोग हो पाया। कलकत्ता के *All India Institute of Hygiene and public health controceptive testing unit Bombay,* में परिवार नियोजन सम्बन्धी अनुसंधान शुरु कर दिये गये थे। प्रशिक्षण का कार्य भी वृहद् रुप में शुरु कर दिया गया था। दिल्ली में लोदी कालोनी तथा नजफगढ़ में, कलकत्ता के पास सिंगुर में, मैसूर में तथा लुधियाना में सर्वेक्षण कार्य किये गये।

तृतीय पंचवर्षीय योजना -:

भारत में परिवार नियोजन कार्यक्रम का सर्वाधिक प्रसार वस्तुतः 1961 के बाद आरम्भ हुआ। इसके पूर्व की दो योजनाओं में इस कार्यक्रम में विशेष प्रगति नहीं हुई। साथ ही विभिन्न समुदायों में परिवार नियोजन के प्रति विशेष अभिरुचि भी नहीं थी और अनेक समुदायों के नेता राजनैतिक आधार पर कार्यक्रम का विरोध करते थे। जनसंख्या की वृद्धि दर को देखते हुए योजना आयोग ने परिवार नियोजन को राष्ट्रीय विकास कार्यक्रम का अभिन्न अंग स्वीकार किया। परिवार नियोजन के लिए 27 करोड़ रूपये का प्रावधान किया गया और परिवार नियोजन को एक राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम का रूप दिया गया। योजना के अन्तर्गत निम्न बातों को प्राथमिकता दी गई –

1. शिक्षा के प्रसार द्वारा परिवार नियोजन कार्यक्रम के लिए अनुकूल सामाजिक वातावरण को तैयार करना।
2. जनसंख्या की सेवाओं के साथ–साथ परिवार नियोजन की सुविधाओं को सुलभ करना और कार्यक्रमों को क्रियान्वित करना।
3. गर्भ–नियन्त्रण के साधनों का वितरण करना और लोगों को उनके उपयोग की विधि से परिचित करना।
4. मेडिकल कालेजों तथा अन्य शिक्षण संस्थाओं में परिवार नियोजन के प्रशिक्षण की सुविधायें प्रदान करना।
5. परिवार नियोजन कार्यक्रम के लिए स्थानीय नेताओं तथा अन्य सेवा संस्थानों के सहयोग को प्राप्त करना।
6. परिवार नियोजन सम्बन्धी आवश्यक सामग्री के उत्पादन में वृद्धि करना।
7. स्त्री शिक्षा प्रसार करना और विलम्ब से विवाह को प्रोत्साहित करना।

उपर्युक्त कार्यक्रमों के लिए तृतीय योजना के अन्दर प्रारम्भ में 50 करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई थी, किन्तु बाद में इसे घटाकर 27 करोड़ रुपये कर दिया गया।

तृतीय योजना काल के अन्तर्गत राज्य स्तर पर परिवार नियोजन कार्यक्रम खोले गये। योजना काल के अन्त तक 3676 ग्रामीण परिवार नियोजन केन्द्र, 7081 ग्रामीण उपकेन्द्र और 1381 नगरीय परिवार नियोजन केन्द्र स्थापित किए जा चुके थे।

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना -:

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना (वार्षिक योजनायें) के अन्तर्गत परिवार नियोजन कार्यक्रम का व्यापक प्रसार हुआ। इस योजना में परिवार नियोजन के लिए 330 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया। योजना के अन्तर्गत मौजूदा जन्म दर को 39 प्रति हजार से घटाकर 32 प्रति हजार करने का लक्ष्य रखा गया है। योजना के मुख्य कार्यक्रम निम्न प्रकार थे–

1. परिवार नियोजन के प्रचार के लिए सभी साधनों का उपयोग करना।
2. ग्रामीण तथा नगरीय क्षेत्रों में जन्म–निरोध के लिए ऑपरेशन की सुविधायें सुलभ करना।
3. जिन स्त्रियों के लिए जन्म नियन्त्रण के उपकरण, उपर्युक्त नहीं है, उनके लिए खाने की गोलियों की व्यवस्था करना।
4. पुनरूत्पादन आयु के युगलों को परिवार नियोजन कार्यक्रम के अन्तर्गत लाना।
5. पुनरूत्पादन काल में प्रवेश करने वाले युवकों और युवतियों को विलम्ब से विवाह के लिए प्रोत्साहित करना।

चतुर्थ योजना में "हम दो हमारे दो" को सरकारी रुप में नया नारा स्वीकार किया गया। गर्भपात कराने का 1971 का कानून एक अप्रैल, 1972 से लागू हो गया। माँ बाप की बीमारी के दौरान जिसमें माँ बच्चे को स्वास्थ्य से खतरा हो उसमें तथा जिसमें माँ के मानसिक स्वास्थ्य को खतरा हो, उन परिस्थितियों में गर्भपात कराया जा सकता है, अन्तिम सुविधा वास्तव में खुली स्वतन्त्रता देती है। योजनाकाल में 280 करोड़ रुपये व्यय किये गये।

पांचवी पंचवर्षीय योजना -:

पांचवी योजना में परिवार नियोजन कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य पूर्व निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये प्रयत्न करना है ताकि 1980 ईसवीं तक राष्ट्रीय जन्म दर को 25 प्रति हजार तक घटाया जा सके। पांचवी योजना में परिवार नियोजन सम्बन्धी लक्ष्य इस प्रकार थे –

1. मौजूदा जन्मदर को योजना के अन्त तक 30 प्रतिहजार और 1983–84 तक 25 प्रतिहजार करना।
2. परिवार नियोजन कार्यक्रम के अन्तर्गत इस समय 15 मिलियन दम्पत्तियां संरक्षित है, योजना के अन्त तक इस संख्या को बढ़ा कर 19 मिलियन तक करना।
3. पांचवी योजना के दौरान विभिन्न तरीकों के लिए निम्नलिखित लक्ष्यों की प्राप्ति की सम्भावना है।

4. नसबन्दी – 18.0 मिलियन इन्ट्रायूरीन डिवाइस – 5.9 मिलियन सी0सी0 इस्तेमाल करने वाले 8.8 मिलियन।

पंचवी योजना में परिवार नियोजन को बहुत महत्व दिया गया। प्रत्यक्ष रूप से ही 500 करोड़ तथा अन्य कार्यक्रमों का अनुदान मिलाकर लगभग 600 करोड़ रुपये के लगभग व्यय होने का अनुमान है। इस योजना में भारत की जन्मदर को 30 प्रति हजार लाने का लक्ष्य रखा गया ताकि योजना काल के बाद जनसंख्या 1.7 प्रतिशत वार्षिक से अधिक न बढ़े और छठीं योजना तक 1.4 वार्षिक से अधिक न बढ़े।

छठीं पंचवर्षीय योजना -:

छठीं पंचवर्षीय योजना में परिवार नियोजन तथा परिवार कल्याण कार्यक्रम को समन्वित रुप में सम्पन्न किया गया है। इस कार्यक्रम हेतु 1010 करोड़ रुपये का प्राविधान किया गया है। नियोजन अवधि में सुरक्षित दम्पत्तियों की संख्या को 22.5 प्रतिशत से बढ़ा कर 36.6 प्रतिशत करने का लक्ष्य है। इस योजना में 40 प्रतिशत लोगों को परिवार नियोजन से सुरक्षित कराने का विचार था। स्वास्थ्य, पोषण व परिवार नियोजन कार्यक्रमों में समन्वय लाया गया। इस योजना में भारत की गरीबी के लिए जनसंख्या वृद्धि को मुख्य रुप से जिम्मेदार माना।

सातवीं योजना में परिवार नियोजन -:

सातवीं योजना ने सन् 2000 के लिए शुद्ध पुनरूत्पादन दर को घटाकर इकाई कर देने का लक्ष्य रखा है। सन् 1990 के लिए सातवीं योजना के लिए इस प्रकार लक्ष्य रखे गये –

अशोधित जन्म दर	29.1 प्रति हजार
अशोधित मृत्यु दर	10.4 प्रति हजार
शिशु मृत्यु दर	90 प्रति हजार
प्रभावी दम्पत्ति दर	41 प्रति हजार प्रतिशत

सभी शिशुओं के लिए टीकों की व्यवस्था

विभिन्न राज्यों की परिवार नियोजन की स्थिति भिन्न–भिन्न है तालिका 6.1 में स्पष्ट है –

तालिका ६.१

परिवार नियोजन की वास्तविकताओं के लिए राज्यों का विभाजन

ग्रुप "ए" 1991–92	ग्रुप "बी" 1996–97	ग्रुप "सी" 2000–01
आन्ध्र प्रदेश	असम	बिहार
गुजरात	कर्नाटक	जम्मू एवं कश्मीर
हरियाणा	मध्य प्रदेश	राजस्थान
हिमाचल प्रदेश	उड़ीसा	उत्तर प्रदेश
केरल	पश्चिम बंगाल	मणिपुर
महाराष्ट्र	अण्डमान एवं	मेघालय
पंजाब	निकोबार	नागालैण्ड
तमिलनाडु	दादरा एवं	सिक्किम
चण्डीगढ़	नगर हवेली	त्रिपुरा
दिल्ली	गोवा दमन द्वीप	अरुणाचल प्रदेश
पाण्डुचेरी	मिजोरम	लक्षद्वीप

स्रोत – जीवन चन्द्र पन्तः जनांकिकी, पृष्ठ 587

वास्तविकताओं को मध्य नजर रखते हुये राज्यों को अलग–अलग वर्गों में विभाजित किया गया है कि जिस वर्ष में वह राज्य अपनी शुद्ध पुनरूत्पादन दर को इकाई तक नीचे ले जायेगा। सातवीं योजना के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए परिवार नियोजन के सम्बन्ध में वार्षिक कार्यक्रम तैयार किया गया। प्रत्येक वर्ष के लिए जो लक्ष्य रखे गये हैं वे तालिका 6.2 में दिये गये हैं –

तालिका ६.२

परिवार नियोजन को अपनाने वाले व्यक्तियों की संख्या

अवधि	बन्ध्याकरण	लूप/कॉपर टी	गोली/निरोध	सुरक्षित युग्लों का प्रतिशत
1985–86	55.0	32.5	105	32
1986–87	60.0	37.5	115	–
1987–88	62.5	42.5	125	–
1988–89	65.0	47.5	135	–
1989–90	67.5	52.5	145	42

स्रोत – जीवन चन्द्र पन्त, जनांकिकी, पृष्ठ 587

आठवीं पंचवर्षीय योजना और परिवार कल्याण कार्यक्रम -:

राष्ट्रीय विकास परिषद् को दिसम्बर 1991 में प्रस्तुत किए गए योजना आयोग के प्रलेख "जनसंख्या नियन्त्रण–चुनौतियाँ और रणनीतियाँ" में स्पष्टतया कहा गया कि "जनसंख्या विस्फोट जिसने देश के आर्थिक एवं सामाजिक विकास सम्बन्धी सभी प्रयासों को नष्ट कर दिया है सम्भवतया देश के सम्मुख सबसे बड़ी समस्या है। जनगणना 1991 में यद्यपि जनसंख्या की वृद्धि दर 1971–81 के दशक में 2.22 प्रतिशत से थोड़ी घटकर 1981–91 में 2.1 प्रतिशत रह गयी है, तथापि यह वृद्धि–दर अभी भी काफी ऊँची है। इस रफ्तार के रहते हुए देश की जनसंख्या 21वीं शताब्दी के सूर्योदय अर्थात् 2001 तक 100 करोड़ और सन् 2024 तक 170 करोड़ हो जायेगी। भरसक प्रयासों के बावजूद जनसंख्या के इस अथाह समुद्र का भरण–पोषण सम्भव नहीं हो पायेगा। अतः यदि आबादी की इस रफ्तार को रोका नहीं गया तो देश के करोड़ों लोगों को सामाजिक तथा आर्थिक न्याय दिलाने का सपना कभी पूरा नहीं हो सकेगा। इसलिए आठवीं योजना में जनसंख्या के नियन्त्रण को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जायेगी।

आठवीं योजना के लक्ष्य -:

आठवीं योजना में जनसंख्या नियन्त्रण और परिवार कल्याण सम्बन्धी लक्ष्य इस प्रकार है –:

1. योजना के अन्त में जनसंख्या की वार्षिक वृद्धि दर को घटाकर 1.78 प्रतिशत करना।
2. जन्मदर प्रतिहजार 27.8 तथा मृत्युदर 9.2 रह जायेगी।
3. औसत जीवन प्रत्याशी पुरूषों के लिए 61 वर्ष और स्त्रियों के लिए 62 वर्ष अनुमानित है।
4. सामान्य दाम्पत्य प्रजनन दर प्रति हजार 157.5 रह जायेगी।
5. योजना के अन्त में जनसंख्या 941.4 मि0 होने का अनुमान है।

परिवार कल्याण हेतु आठवीं योजना में नई कार्य नीति -:

जनसंख्या नियन्त्रण को आठवीं योजना के छः महत्वपूर्ण उद्देश्यों में से एक प्रमुख उद्देश्य स्वीकार किया गया है। इसका लक्ष्य जन्म दर को जो 1990 में 29.9 प्रति हजार थी घटाकर 26 प्रति हजार और शिशु मृत्यु दर को 80 प्रति हजार से घटाकर 70 प्रति हजार तक लाना है। फरवरी 1992 में गठित राष्ट्रीय विकास परिषद् की एक समिति की रिपोर्ट के आधार पर आठवीं योजना के दौरान परिवार कल्याण का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित रणनीति अपनायी जायेगी –

क. इन कार्यो को एक साथ पुर्नगठित और समाकलित करना।

ख. इनके लिए आवश्यक अतिरिक्त धन की व्यवस्था करना।

ग. विभिन्न स्तरों पर इन कार्यक्रमों का आयोजन, क्रियान्वयन और निगरानी हेतु समुचित मशीनरी या तन्त्र का विकास करना।

1. विभिन्न सामाजिक सेवा क्षेत्रों जैसे मानव संसाधन विकास, मानव कल्याण पोषण आदि द्वारा उपलब्ध सेवाओं का एक साथ समन्वय करना।
2. परिवार कल्याण कार्यक्रम को एक जन–आन्दोलन का रुप देना। पंचायत राज

प्रणाली के माध्यम से लोगों को अधिक भागीदारी होने पर यह कार्यक्रम " लोगों द्वारा पहल और सरकारी सहयोग" का रूप ले लेगा।

3. विक्रेन्द्रीकृत आयोजन और कार्यन्वयन, आठवीं योजना के दौरान इसकी रणनीति का तीसरा अंग होगा। इसके लिए क्षेत्र विशिष्ट कार्यनीति तैयार की जायेगी। जिसके लक्ष्यों का निर्धारण व उसकी निगरानी, जिला स्तर पर की जायेगी और यह प्रक्रिया नीचे से ऊपर तक होगी। देश के उन 90 जिलों, जिनकी अशोधित जन्मदर 39 प्रति हजार से अधिक है के लिए एक अलग कार्यनीति तैयार की जायेगी।

4. विक्रेन्द्रीकृत योजना के फलस्वरुप ग्राम पंचायतों तथा जिला परिषदें अब कार्यक्रम के संचालन में महत्वपूर्ण भूमिका निभायेंगी, जबकि केन्द्र सरकार की भूमिका केवल नीति निर्धारण और मार्ग दर्शन तक सीमित रहेगी।

5. यद्यपि जन्म नियन्त्रण की टर्मिनल प्रणाली लागू रहेगी, किन्तु साथ ही छोटी आयु वाले दम्पत्तियों को सक्रिय होने से रोकने और दो बच्चों के बीच के अन्तर पर अनिवार्य बल दिया जायेगा। फलतः अगली पीढ़ी को सामाजिक उत्तरदायित्व के रूप में छोटा परिवार स्वीकारने के लिए तैयार रहना होगा।

6. जनसंख्या शिक्षा और पारिवारिक जीवन शिक्षा को सामान्य शिक्षा का अंग बनाया जायेगा, जिससे स्कूल के अध्यापकों को एक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करना होगा।

7. दम्पत्ति संरक्षण दर की वर्तमान पद्धति के बजाय, अब जन्मदर में लक्षित कमी को कार्यक्रम का आधार माना जायेगा। इस सम्बन्ध में आवश्यक सभी पैरामीटर जैसे पात्र दम्पत्तियों की पहचान, सिविल पंजीकरण, बच्चों व माताओं का पंजीकरण आदि राज्य सरकारों द्वारा तैयार किये जायेंगे, हालाकि व्यापक मार्ग दर्शन केन्द्र सरकार का ही बना रहेगा।

8. परिवार कल्याण कार्यक्रमों की गुणवत्ता में सुधार करने के साथ–साथ उसे देश

के हर कोने और हर परिवार तक पहुँचाना होगा। इसके लिए निम्न कार्य करने होगें –

क. उपकेन्द्रों, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों तथा सी.एच.सी. के लिए आधारिक संरचना सुविधाओं को पूरा करना।

ख. सुप्रशिक्षित कर्मचारियों की नियुक्ति करना और

ग. औषधियों व अन्य आवश्यक वस्तुओं की समुचित व्यवस्था करना।

9. शिशु जीवन और सुरक्षित मातृत्व सम्बन्धी कार्य को प्रभावी बनाने के लिए निम्न उपाय किये जायेगें –

क. व्यापक प्रतिरक्षण कार्यक्रम को सुदृढ़ बनाना।

ख. अतिसार नियन्त्रण तथा ओ0 आर0 टी0 कार्यक्रम पर अधिक बल देना।

ग. सुरक्षित मातृत्व हेतु उच्च जोखिम गर्भावस्था उपायों को लागू करना।

10. कोई भी प्रणाली तभी कारगर हो सकती है यदि उसको लागू करने वाले लोग सक्षम हो। इसलिए सभी प्रकार के कर्मचारियों के उचित शिक्षण एवं प्रशिक्षण पर अधिक बल दिया जायेगा।

11. जनसंख्या जैसे जन–आन्दोलन में स्वैच्छिक संगठनों की भूमिका निर्णायक सिद्ध हो सकती है। इसलिए आठवीं योजना में मानव कल्याण से जुड़े ऐसे स्वैच्छिक संगठनों (विशेष रूप से संगठित निगम क्षेत्र) को आमन्त्रित और गतिशील किया जायेगा और नेटवर्क के रुप में एक शीर्ष संगठन स्थापित किया जायेगा।

12. जनसंख्या नियंत्रण कार्यक्रम में चिकित्सक की सभी प्रणालियों के प्रयोग और उनसे सम्बद्ध चिकित्सकों की व्यापक भागीदारी को बढ़ावा दिया जायेगा।

13. अब तक लागू नगद प्रोत्साहन की स्कीम कारगर सिद्ध नहीं हुयी इसलिये इसे समाप्त कर दिया है। परिवार नियोजन अपनाने वाले लोगों को किसी भी प्रकार की मौद्रिक हानि की क्षतिपूर्ति राज्य सरकारों के विवेक पर छोड़ दी गयी है। परिवार नियोजन को न अपनाने वाले व्यक्तियों को किस प्रकार अनुत्साहित

किया जा सकता है, मूल अधिकारों को ध्यान में रखते हुये इसकी संभावनाओं का पता लगाया जायेगा।

14. परिवार नियोजन कार्यक्रम में समुदाय को शामिल करने के लिए विशेष प्रयास किये जायेंगे। पंचायतें, यूथ क्लब, ग्राम समितियाँ, नेहरू युवक केन्द्र, महिला संगठन इत्यादि समाज व समुदाय को प्रेरित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते है।

15. परिवार नियोजन के संदेश को देश के हर कोने में पहुँचाने के लिए जन सम्पर्क साधनों का हर संभव प्रयोग किया जायेगा। शिक्षा, सूचना व प्रसारण व्यवस्था जिसका योगदान अति महत्वूपर्ण है, का विस्तार किया जायेगा।

नौवीं पंचवर्षीय योजना में परिवार नियोजन -:

आठवीं योजना की प्रगति संतोषजनक है। इसके दौरान रूक्ष जन्मदर 1996 में 27.4 प्रति हजार हो गयी और शिशु मृत्युदर 1996 में 72 प्रति हजार हो गयी। इसके अतिरिक्त दम्पत्ति सुरक्षा दर मार्च 1997 तक 45.4 प्रतिशत के स्तर पर पहुँच गयी।

नौवीं योजना (1997–2002) में जनसंख्या वृद्धि में योगदान के लिए तीन कारण तत्वों को उत्तरदायी माना है –

1. प्रजनन आयुवर्ग की जनसंख्या का आकार बहुत बड़ा है और इसका जनसंख्या की वृद्धि में योगदान 60 प्रतिशत आंका गया। ध्यान देने योग्य बात यह है कि जहाँ 15–44 आयु वर्ग में विवाहित स्त्रियों की 1961 में 788 लाख थी, वर्तमान में इस संख्या के 1,442 लाख हो जाने का अनुमान है।
2. गर्भ निरोधकों की आवश्यकता की पूर्ति न हो सकने के परिणामस्वरुप, जनसंख्या की वृद्धि में 20 प्रतिशत योगदान का अनुमान लगाया गया।
3. उच्च शिशु मृत्युदर के परिणामस्वरुप उच्च अनिच्छित प्रजनन दर हो जाने से जनसंख्या में 20 प्रतिशत योगदान का अनुमान है।

सन् २००२ तक प्रत्याशित उपलब्धियाँ

	लक्ष्य
शिशु मृत्यु दर	56–50
रूक्ष मृत्यु दर	24–23
कुल प्रजनन दर	2.9 – 2.6
गर्भ निरोध सुरक्षा दर	51–60

स्रोत – भारतीय अर्थव्यवस्था 2002 पृष्ठ, 71।

नौवीं योजना में परिवार कल्याण के लिए 15,120 करोड़ रूपया का प्रावधान किया गया।

योजना के अन्तर्गत प्रजनन एवं बाल स्वास्थ्य देखभाल में वृद्धि के फलस्वरूप सन् 2002 तक शिशु मृत्युदर की निम्न सीमा अर्थात् 50 प्रतिहजार, रूक्ष जन्मदर 23 प्रतिहजार और सकल जनन दर 2.6 प्रतिहजार करने का लक्ष्य रखा गया।

प्रजनन एवं बाल स्वास्थ्य देखभाल कार्यक्रम में निम्नलिखित शामिल किए गए है –

1. मातृ एवं बाल स्वास्थ्य देखभाल को प्रभावी बना कर सुरक्षित मातृत्व और बाल जीवन–शेष का आश्वासन देना।
2. अनिच्छित गर्भाधान रोकने के लिए गर्भ निरोधकों की अधिक मात्रा में उपलब्धि।
3. अनिच्छित गर्भाधान को सुरक्षित रुप में समाप्त करने के लिए कानूनी गर्भपात सुविधाएं उपलब्ध कराना।
4. कमजोर वर्गो के लिए प्रभावी पोषण सेवाएँ उपलब्ध कराना।
5. यौन–सम्बन्धी संक्रामक रोगों और स्त्रियों के गुप्त रोगों का उपचार करना।

इन कार्यक्रमों के अतिरिक्त कुछ अन्य कार्यक्रम चलाये गये जो निम्न प्रकार है–

1. उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, राजस्थान इन चार राज्यों में शिशु मृत्यु दर और

प्रजनन दर में कमी लाने के लिए विशेष प्रयास करना।

2. नौवीं योजना में एक कमेटी का गठन किया गया जो इस बात का ध्यान रखेगी कि धन का उचित उपभोग हो और परिवार कल्याण के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सके।

3. परिवार कल्याण के कार्यक्रम के लिए निजी क्षेत्र और सरकारी क्षेत्र के कर्मचारियों को प्रोत्साहित करना।

4. उद्योग, संगठित क्षेत्र, असंगठित क्षेत्र, कृषकों तथा श्रमिकों को इसमें भागीदारी करना।

5. आठवीं योजना में असम, बिहार में शिशु मृत्युदर और कुल प्रजनन दर में जो कम उपलब्धियाँ हुई है उनके कारणों की खोज करना और तत्काल उन कारणों को समाप्त करना।

6. नौवीं योजना में अन्तर राज्य और अन्तर जिलों में जो अन्तर हैं उन्हें समाप्त करने के लिए प्रयास करना।

नौवीं योजना में परिवार कल्याण के लिए 15,120 करोड़ रूपये व्यय करने का प्रावधान किया गया। जिसमें वास्तविक व्यय 14,588.97 करोड़ रुपये किया गया। वही वार्षिक योजना 2001–02 में 4,210 करोड़ रूपये का आवंटन किया गया। नौवीं योजना के कुल योजना परिव्यय का 1.7 प्रतिशत व्यय करने का आंवटन था।

दसवीं पंचवर्षीय योजना में परिवार नियोजन -:

नौवीं योजना की प्रगति संतोषजनक रही। "राष्ट्रीय जनसंख्या आयोग" के अनुसार अशोधित जन्म दर 1999 में 26 प्रतिहजार वहीं 2002 में 25 प्रतिहजार हो गयी, अशोधित मृत्युदर जो 1999 में 8.7 प्रतिहजार वहीं 2002 में 8.1 प्रतिहजार और शिशु मृत्यु दर 1999 में 70 प्रतिहजार वहीं 2002 में 64 प्रतिहजार के स्तर पर पहुँच गयी।

दसवीं योजना में 2010 तक की राष्ट्रीय जनसंख्या नीति के लक्ष्यों को प्राप्त करने का लक्ष्य रखा गया है। दसवीं योजना के लिए लक्ष्य इस प्रकार रखे गये –

	वर्तमान में	**2002–07**
दम्पत्ति सुरक्षा दर	35.5 प्रतिहजार	50 प्रतिहजार
अशोधित जन्म दर	25.8 प्रतिहजार	21 प्रतिहजार
शिशु मृत्यु दर	68.0 प्रतिहजार	45 प्रतिहजार
कुल पुनरूत्पादन	3.2 प्रतिहजार	2.3 प्रतिहजार
सुरक्षित प्रसव दर	42.3 प्रतिहजार	80 प्रतिहजार

प्रजनन एवं बाल स्वास्थ्य देखभाल कार्यक्रम में निम्नलिखित शामिल है –

1. विशिष्ट गर्भ निरोधकों को उपलब्ध कराना जिससे अवांछित गर्भाधान को रोका जा सके।
2. परिवार कल्याण के लिए मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य अच्छे रहे इसके लिए सोपानिक स्वास्थ्य सुरक्षा कार्यक्रम चलाना।
3. शिशु मृत्युदर को कम करने के लिए सघन स्वास्थ्य सेवायें उपलब्ध कराना जिससे ऊँची प्रजनन क्षमता को कम किया जा सके।
4. परिवार के स्वास्थ्य के लिए महिलाओं में जागरुकता लाना इसमें पुरूषों को भी भागीदार बनाना।
5. दम्पत्ति की सुविधा और पसंद के अनुसार परिवार नियोजन हेतु साधन उपलब्ध कराना।
6. परिवार कल्याण सम्बन्धी सेवाओं को उच्च्य स्तरीय बनाना और आवश्यक क्षेत्रों में उपलब्ध करना।
7. जन्मदर को कम करने के लिये शिशु मृत्युदर और मातृ मृत्युदर को कम करना और गर्भ निरोधकों को सुविधाजनक तरीके से तत्काल उपलब्ध कराना।

8. 2045 तक जनसंख्या वृद्धि दर को स्थिर करना।

9. दसवीं योजना के मुख्य उद्देश्यों में पुनरूत्पादकता को कम करना तथा मृत्युदर और जनसंख्या वृद्धि दर को कम करने के लिये निम्न लक्ष्य रखे गये –

    i. शिशु मृत्युदर को 2007 तक 45 प्रतिहजार और 2012 तक 28 प्रतिहजार तक लाना।

    ii. मातृ मृत्युदर को 2007 तक 2 प्रतिहजार और 2012 तक 1 प्रतिहजार तक लाना।

    iii. 2001–2011 के बीच जनसंख्या की दशकीय वृद्धि दर को कम करके 16.2 तक लाना।

परिवार कल्याण योजनाओं द्वारा 5 दशकों से ही सरकारी संस्थाओं द्वारा मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य एवं गर्भ निरोधकों को उपलब्ध कराया जा रहा है। आगे भी इन योजनाओं को सफल बनाने के लिए पर्याप्त मात्रा में धन उपलब्ध कराना तथा स्वास्थ्य सेवाओं के लिए आधारभूत सुविधायें उपलब्ध कराना।

सरकारी प्रयासों के अतिरिक्त संगठित क्षेत्र एवं स्वयं सेवी संस्थाओं को भी परिवार कल्याण कार्यक्रम को आगे बढ़ाने तथा दम्पत्तियों को परिवार नियोजन के साधनों के प्रयोग को अपनाने हेतु मोटिबेट करना जिससे पुनरूत्पादन आयु वर्ग में जनसंख्या वृद्धि को रोका जा सके।

दसवीं पंचवर्षीय योजना में परिवार कल्याण के लिए 27,125 करोड़ रूपए का आवंटन किया गया है। इसका वितरण निम्नलिखित मदों पर किया गया जिसका विवरण तालिका 6.3 में निम्न प्रकार से है –

तालिका ६.३
दसवीं योजना में परिवार कल्याण पर व्यय

वितरण	व्यय राशि
आधारभूत सरचना की व्यवस्था मे	12645.64
आधारभूत संरचना के विकास में	2412.00
यातायात में	378.00
प्रशिक्षण में	521.00
शोध में	159.50
निरोधक उपाय	2727.50
पुनरूत्पादन एवं बच्चों के स्वास्थ्य	6333.86
अन्य परिवार कल्याण कार्यक्रम	1947.50
कुल व्यय	**27,125.00**

sources– Tenth five year plain Vol II Page 215

दसवीं योजना के कुल सार्वजनिक व्यय 15,92,300 करोड़ के सापेक्ष परिवार कल्याण कार्यक्रम पर कुल 27,125 करोड़ व्यय का प्रावधान किया गया जो कुल दसवीं योजना के परिव्यय का 1.7 प्रतिशत है।

सरकार ने जनसंख्या को नियन्त्रित करने के लिए परिवार नियोजन एवं कल्याण कार्यक्रम चलाया है। विभिन्न योजनाओं में इस पर व्यय की राशि तालिका 6.4 में दी गयी है।

तालिका ६.४
भारत में परिवार नियोजन एवं परिवार कल्याण कार्यक्रमों पर व्यय

योजना	निर्धारित राशि	वास्तविक व्यय
प्रथम योजना 1951–1956	0.65	0.14
द्वितीय योजना 1956–1961	4.97	2.20
तृतीय योजना 1961–1966	27.00	25.00
चतुर्थ योजना 1969–1974	315.00	278.00
पंचम योजना 1975–1979	497.00	492.00
छठीं योजना 1980–1985	1078.00	1448.00
सातवीं योजना 1985–1990	3256.30	3120.80
आठवीं योजना 1992–1997	6500.00	–
नौवीं योजना 1997–2002	15120.00	14588.97
दसवीं योजना 2002–2007	27125.00	–

स्रोत – आर्थिक सर्वेक्षण 2002

उपर्युक्त तालिका 6.4 से स्पष्ट है कि योजनाओं में परिवार नियोजन के लिए निर्धारित राशि का वास्तव में पूरा उपभोग नहीं किया गया है। योजना के प्रथम दस वर्षों में वास्तविक व्यय की राशि बहुत काम रही है। लेकिन सरकार ने तीसरी योजना के आरम्भ में परिवार नियोजन के कार्यक्रम को अधिक गम्भीरता से लागू करना शुरु किया।

सरकारी प्रयत्न एवं उपलब्धियाँ –:

केन्द्रीय स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय के निर्देशन में आज भारत में लगभग 7510 प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र कार्यरत है। इन्हीं स्वास्थ्य केन्द्रों की 59590 उपशाखायें ग्रामीण क्षेत्रों में कार्यकर रही है। साठ हजार जन स्वास्थ्य सेवक ग्रामीण क्षेत्रों में इस कार्य में संलग्न है। नगरीय क्षेत्रों में लगभग 3000 परिवार नियोजन केन्द्र परिवार नियोजन शिक्षा में अपनी सेवा दे रहे हैं।

सरकार स्वास्थ्य व परिवार कल्याण के कार्यक्रमों में संलग्न डॉक्टरों व नर्सो के शिक्षण पर विशेष ध्यान दे रही है। इनको केन्द्रीय शिक्षण संस्थान में एवं कुछ पी0एच0सी0 के केन्द्रों में परिवार नियोजन से सम्बन्धित शिक्षण दिया गया है। सामूहिक शिक्षण एवं उन प्रवत्तियों का विकास किया जाता है। जो परिवार नियोजन को अधिकाधिक प्रोत्साहित करें। 'लघु परिवार' के आदर्श को व्यक्ति अपनाने के लिए इच्छुक बने, इसके लिए प्रचार कार्य, दृश्य एवं श्रव्य माध्यमों का ज्ञान इन ट्रेनिंग केन्द्रों में स्वास्थ्य व परिवार नियोजन कार्यकर्त्ताओं को कराया जाता है।

भारत में जनांकिकी शोध एवं गंवेषणा का कार्य भी अधिकाधिक मात्रा में किए जा रहे है। के0ए0पी0 *(Knowledge ttitude & Protice)* संस्था में प्रजनन एवं गर्भधारण नियंत्रण विधियों की नई–नई पद्धतियों की खोज की जाती हैं।

"डेमोग्राफिक सेन्टर ऑफ", बम्बई में जनांकिकी शास्त्रियों को तालीम दी जाती है। भारत के अनेक विश्वविद्यालयों में जनांकिकी शास्त्र को एम0ए0 समाजशास्त्र, एम0ए0 अर्थशास्त्र, एम0एस0 सी0 सांख्यिकी के पाठ्यक्रम में सम्मिलित कर लिया है।

साथ ही साथ जनांकिकीय से सम्बन्धित अनुसंधान केन्द्र भी स्थापित किये है। एन0एस0एस0 अर्थात् *National Sample Survey* में प्रजनन, अस्वस्थता, मृत्यु, प्रवास, परिवार नियोजन, उपभोग स्तर सम्बन्धी अनेक आंकड़ें प्रस्तुत किये हैं। जनांकिकीय विश्लेषण व अध्ययन प्रशिक्षण कार्य में संलग्न कुछ प्रमुख उल्लेखनीय संस्थायें ये हैं :–

दिल्ली स्कूल ऑफ इकोनोमिक्स, दिल्ली।

जनांकिकी शोध संस्थान, त्रिवेन्द्रम।

जनांकिकी शोध संस्थान, लखनऊ।

जनांकिकी शोध संस्थान, बड़ौदा।

आर्थिक गंवेषणा संस्थान, पूना।

आर्थिक गंवेषणा संस्थान, पटना।

आर्थिक गंवेषणा संस्थान, धारवाड़।

जनांकिकी प्रशिक्षण व शोध संस्थान, बम्बई।

इनमें बम्बई का शोध केन्द्र सबसे बड़ा है। इन संस्थाओं में जनसंख्या के विभिन्न पहलुओं पर शोध व प्रशिक्षण कार्य किया जाता है। जैसे – प्रजनन, मृत्यु, स्थानान्तर, परिवार नियोजन आदि इन विषयों पर पहले प्रयोग किये जाते है और उनसे होने वाले लाभ व हानियों का पता लगाया जाता है। साथ ही आर्थिक एवं सामाजिक स्थितियों का सर्वेक्षण किया जाता है।

विशेष रूप से जनांकिकी प्रोजेक्ट और अन्य परिवार नियोजन प्रशिक्षण व शोध केन्द्र जैसे–आल इण्डिया इंस्टीट्यूट फोर मेडिकल सांइसेज, गोखले इंस्टीट्यूट फॉर इकोनोमिक्स एवं पोलीटिक्स (ऐच्छिक संस्था), प्लानिंग एसोसिएशन ऑफ इण्डिया आदि संस्थाएँ पूर्ण और आंशिक रूप से शोध कार्यों में सलंग्न हैं। इनमें जनसंख्या के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन किया जाता है। प्रशिक्षण कार्यक्रमों के साथ ही वर्कशॉप, सेमीनार्स का आयोजन किया जाता है। ऐच्छिक संस्थायें परिवार नियोजन में सरकार की सहायक बनती है। ये संस्थायें नए–नए प्रकार के दृश्य, श्रव्य साधनों की खोज और

अनेक प्रेरणात्मक माध्यमों के विकास में सरकार का हाथ बटाती है, जिससे व्यक्तियों को लघु परिवार का आदर्श अपनाने के लिए शिक्षित व मनोवैज्ञानिक रुप से तैयार किया जा सके।

1974 में विश्व जनसंख्या वर्ष मनाया गया जिसमें 136 राष्ट्रों ने भाग लिया और जनसंख्या नियन्त्रण, सामाजिक और आर्थिक विकास की आवश्यकताओं को महत्त्व देते हुए एक समझौता किया जिसका संक्षिप्त रुप इस प्रकार है– आर्थिक, सामाजिक विकास तीव्र गति से हो, साथ ही सम्पत्ति के समान वितरण की आवश्यकता को आर्थिक महत्त्व दिया गया। एक मत होकर सभी राष्ट्रों ने स्वीकार किया कि जनसंख्या वृद्धि की दर अत्याधिक उच्च है, परन्तु इससे हतोत्साहित होने की जरुरत नहीं है, साथ ही जनसंख्या वृद्धि के सामाजिक आर्थिक विकास के सम्बन्ध में भी अधिक जोर दिया गया है। प्रत्येक राष्ट्र अपनी जनसंख्या नीति निश्चित करने में स्वतन्त्र है और जिन देशों में 14 प्रतिहजार है घटाकर 9 प्रतिहजार तक किया जाये। इसके साथ ही साथ शुद्ध पुनरूत्पादन दर जो कि वर्तमान 1.48 है सन् 2000 ई0 में 1 पर लाना होगा। शुद्ध पुनरुत्पाद के इस स्तर पर पहुँचने के लिए इसी अवधि में कुल लक्ष्य दम्पत्तियों में से लगभग 60 प्रतिशत दम्पत्तियों को परिवार नियोजन की किसी न किसी विधि से सुरक्षित करना होगा।

भारतवर्ष में परिवार नियोजन की उपलब्धियाँ -:

यद्यपि सन् 1965 तक कार्यक्रम में ''कैफेटिरिया पद्धति' को महत्व दिया गया फिर भी मुख्य कार्य 1950–60 के मध्य तक नसबन्दी में ही हुआ। यह नहीं चूंकि पुरुष नसबन्दी महिला नसबन्दी की अपेक्षा बहुत आसान मानी जाती थी इसलिए नसबन्दियों का भार कुल नसबंदियों की तुलना में सन् 1957 के बाद घटते–घटते 1967–68 में मात्र 10.4 प्रतिशत ही रह गया, परन्तु इसके तुरन्त बाद से ही स्त्री नसबन्दी का कुल नसबन्दियों में प्रतिशत धीरे–धीरे बढ़ने लगा जो 1984 –85 में अधिकतम 86.5 प्रतिशत तक पहुँच गया।

परिवार नियोजन के प्रारम्भ से वर्ष 1985–86 तक 5.37 करोड़ लोग नसबन्दी करवा चुके है तथा 1.86 करोड़ महिलाओं को लूप निवेशित किया जा चुका है। लगभग 7.33 करोड़ दम्पत्ति किसी न किसी परम्परागत गर्भ निरोधक प्रयोगकर्ता बन चुके हैं। परिवार कल्याण विभाग के एक अनुमान के अनुसार अब तक कुल 6.82 करोड़ जन्मों को रोका जा चुका हैं।

परिवार नियोजन कार्यक्रम लक्ष्य प्राप्ति में असफल -:

असफलता के कारण -:

१. बाधायें -:

परिवार नियोजन का मुख्य उद्देश्य तभी पूर्ण हो सकेगा, जब परिवार कल्याण के कार्यक्रमों को पूरी तरह अपनाया जाये। इसलिए परिवार नियोजन को विशेष प्रमुखता देनी चाहिए। परन्तु जनता के सहयोग के बिना कोई भी योजना पूरी नहीं हो सकती है। परिवार नियोजन के कार्य में अनेक बाधायें आती है – जैसे – धार्मिक, नैतिक, सामाजिक और आर्थिक बाधायें आदि।

क. धार्मिक बाधाएँ -

संसार के प्रमुख धर्म उपदेशक, धर्म गुरुसंतति– निरोध को एक अधार्मिक कृत्य कहकर विरोध करते हैं। प्रायः सभी धर्मों में यह पुरातन विचार है कि "विवाह एक पवित्र बंधन है, धर्म समस्त उद्देश्य है।"

अधिक से अधिक सन्तानोत्पत्ति के पुनीत कार्य के लिए विवाह आवश्यक है। इस उद्देश्य के मूल में जो सत्य प्रकट हुआ है। वह यह है कि प्रत्येक धर्म प्रचार और प्रसार के लिए अधिक से अधिक संख्या में अपने अनुयायियों को चाहता था और इसी प्रकार प्रायः प्रत्येक धर्म में विवाह सूत्र में बंधकर सन्तानोत्पत्ति के प्रत्येक कार्य में संलग्न होना श्रेयस्कर कहा गया है।

परिवार कल्याण और हिन्दू धर्म -:

हिन्दू धर्म के अनुसार मनुष्य जीवन का सार परम पुरूषार्थ की प्राप्ति में ही निहित हैं। इस परम पुरूषार्थ की प्राप्ति के चार लक्ष्यों की प्राप्ति के बाद होती है। ये चार लक्ष्य ही पुरुषार्थ है – धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। मनुष्य को इन लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु जीवन के चार आश्रमों – ब्रह्मचर्य, ग्रहस्थ, वानप्रस्थ, तथा सन्यास से होकर गुजरना पड़ता है। आश्रम व्यवस्था हिन्दू सामाजिक जीवन की महत्वपूर्ण संस्था है। प्रत्येक आश्रम में जीवन व्यतीत करने की अवधि 25 वर्ष निश्चित की गई है। हिन्दू जीवन पद्धति में एक ओर जहाँ सम्पूर्ण समाज संर्वागीण उन्नति के लिए चार वर्गों में बटा रहता है, वहीं दूसरी ओर व्यक्तिगत उन्नति के लिए मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन का व्यवस्थित विभाजन की आश्रम व्यवस्था में स्पष्ट रहता है। संक्षेप में आश्रम व्यवस्था व्यक्तिगत जीवन के क्रमिक विकास के स्तरों का विवेचन हैं।

गृहस्थ आश्रम में व्यक्ति 'विवाह' द्वारा प्रवेश पाता है। हिन्दुओं में विवाह एक धार्मिक कार्य माना गया है, विवाह का दूसरा कार्य सन्तानोत्पत्ति करना है तथा तृतीय स्थान में यौन इच्छा की संतुष्टि बतलाया गया है। हिन्दू धर्म के अनुसार मनुष्य तीन ऋण (पितृ ऋण, देव ऋण एवं ऋषि ऋण) लेकर संसार में आता है। बिना तीनों ऋण चुकाये मनुष्य मोक्ष की प्राप्ति नहीं कर सकता है। पितृ–ऋण तभी चुकाया जा सकता है जब मनुष्य विवाह संस्था में प्रवेश कर पुत्र उत्पन्न करें। विवाह के मंत्रों में वर कहता है "कि मैं उत्तम संतान प्राप्त करने हेतु तुझसे विवाह करता हूँ।"

संस्कृत में बेटे को पुत्र कहा गया है। सम्भवतः ऐसा इसलिए कि पुत्र ही माँ बाप को पुथ नामक पाप से मुक्ति दिलाता है इस विश्वास के मूल में ही अधिक पुत्र तथा अधिक सन्तान पैदा करने की भावना निहित है। किन्तु हिन्दू धर्म शास्त्रों में जहाँ एक ओर अधिक संतान उत्पन्न करने को कहा गया है, वहीं दूसरी ओर कुछ धर्म ग्रंथों जैसे–ऋग्वेद, तथा यर्जुवेद में इस बात का उल्लेख भी है कि एक निश्चित सीमा के पश्चात् अधिक संतान नहीं होना चाहिए। विवाह के समय पढ़ा जाने वाला ऋग्वेद का

एक मंत्र इस प्रकार है –

इमाम् त्वामिन्द्र मिध्वह सुपुत्रम् सुगमभपुरम्
दासस्यम् पुत्रान्देहि पतिमेकां दशम क्रांधि

हे इन्द्र! वधू को दस अच्छे भाग्यशाली बच्चों की माँ बनने का आर्शीवाद दो या पति को उसके ग्याहरवें बच्चे के समान समझती थी, तब इसका तात्पर्य यह था कि परिवार के आकार में उस समय भी थोड़ा बहुत नियन्त्रण अथवा नियोजन अवश्य था।

बृहदारण्यक उपनिषद् में सुन्दर एवं बुद्धिमान संतान उत्पन्न करने के लिए अनुष्ठान और गर्भ निरोध के लिए विशेष अंगों का पाठ वर्णित है। एक स्थान पर यहाँ तक कहा गया हैं –

"पूर्व विद्वासा प्रजा न क्रमाते किं प्रजया करिष्याम :।"

अर्थात् पहले के विद्वान लोग संतति उत्पादन को अपना कर्त्तव्य या धर्म नहीं मानते थे बल्कि वे संतति उत्पादन के प्रति उदासीन थे। मनुस्मृति में भी अधिक संतान का विरोध किया गया है मनु के अनुसार –

"मनुष्य को एक ही सन्तान उत्पन्न करनी चाहिए, अधिक नहीं" क्योंकि संतान काम प्रतीक है।"

इसी प्रकार ऋग्वेद में एक स्थान पर लिखा है कि

"बहुप्रजा निकृतिमा विशेषतः।"

अर्थात् अधिक संतान से बहुत दुःख उठाना पड़ता है। अतः दुख दूर करने के लिए यह आवश्यक है कि कम संतान उत्पन्न किया जाय।

हमारे धार्मिक ग्रन्थों ने जहाँ पुरुषों को परिवार कल्याण के सम्बन्ध में मार्ग दर्शन दिया है वहीं स्त्रियों से भी कहा है कि –

"सना अन्न युवतयाः सयोनिरेक गर्भ दधिये सप्तगर्भा।" ऋग्वेद

अर्थात् विवाहिता स्त्री एक ही गर्भ धारण करें। हमारे यहां जनसंख्या वृद्धि का एक कारण यह भी है कि यहां प्रत्येक व्यक्ति की चाह उत्तराधिकारी की रहती है और वह भी पुत्र के रूप में, जिससे मरने के बाद पानी मिल सके और मोक्ष की प्राप्ति

हो सके। हमारे यहां उत्तराधिकारी के लिए बालकों को गोद लिया जाता है परन्तु वेदों में इसका भी निषेध हैं। स्वयं राष्ट्रपति डा0 जाकिर हुसैन ने कहा था कि "ब्रह्मचर्य जीवन ही राष्ट्र और समाज की उन्नति का एक मात्र साधन है।"

वर्तमान युग की इस समस्या का निदान उस समय भी प्रचलित था, चाहे परिवार कल्याण की समस्या उस समय इतनी गम्भीर न रही हो, जितनी की वर्तमान युग में हैं।

वेदों में एक माँ को 10 बच्चों की मां होना बताया गया है तथा पति को ग्याहरवीं संतान निरूपित किया गया है किन्तु उसमें यह भी स्पष्ट रूप से वर्णित है कि प्रथम संतान धर्म की उपज है तथा शेष काम की।

इस प्रकार हिन्दू धर्म संतति निरोध का विरोध नहीं करता है। यदि हम आज भी हिन्दू धर्मानुसार "आश्रम व्यवस्था से जीवन–निर्वाह का प्रयत्न करें, तो सम्भवतः परिवार कल्याण की समस्या अपने आप ही हल हो जायेगी। वर्तमान में हम भारतवासी न तो कट्टर धर्म परायण है और न पूर्ण रूप से आधुनिक विचार वाले व्यक्ति ही हैं। क्योंकि आज हम भूतकाल की अपेक्षा वर्तमान एवं भविष्य के प्रति अधिक सजग हैं अतः हमें आगे की ओर दृष्टिपात करना चाहिए।

परिवार नियोजन तथा मुस्लिम धर्म -:

हिन्दू सम्प्रदाय के समान ही मुस्लिम सम्प्रदाय में भी यह भ्रम विद्यमान है कि परिवार नियोजन मजहब के खिलाफ है। इस्लाम धर्म में यह कहा गया है कि जब खुदा के बन्दे (मनुष्य) शादी करते हैं तो वे इस्लाम धर्म में आधे पारंगत बन जाते हैं। इस्लाम धर्म में अल्लाह को यह कहते हुए बताया गया कि "विवाह तथा वंश वृद्धि करों ताकि अन्य जातियों की अपेक्षा अपनी जाति को तथा मुझे गौरव प्राप्त हो सकें। सर्वोत्तम मनुष्य वही है जिसकी अधिक से अधिक पत्नियां हो। सम्भवतः इसीलिए इस्लाम धर्म में "बहुपत्नी विवाह प्रथा" प्रचलित है।

वास्तव में मुस्लिम धर्म परिवार नियोजन का समर्थक है या नहीं, यह अभी तक ज्ञात नहीं हो सका। यदि किसी से मुसलमान को किसी सवाल के बारे में कोई शंका होती है तो वह मिश्र साम्राज्य के मुख्य मुल्ला तथा काजी से जिसे मुफ्ती कहा जाता है, अपनी शंका का समाधान करवाता है।

मुफ्ती से इस बारे में राय पूछी गयी कि शादी शुदा युवा मनुष्य को जिसके एक संतान हो, एक बच्चे के जन्म के पश्चात् दूसरे बच्चे के जन्म होने तक कितने समय की अवधि की छूट मिलनी चाहिए, या गर्भ निरोध के साधन अपनाना चाहिए, ताकि प्रत्येक होने वाली संतान के बोझ से माँ बाप के स्वास्थ्य पर तथा आर्थिक स्थिति पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़े ? इस प्रश्न पर विशद् अध्ययन करने के बाद इस्लाम धर्म के खास मुफ्ती ने 5 जनवरी 1937 को एक प्रस्ताव जारी किया कि पति–पत्नी को आपसी सलाह मशविरा करके गर्भ निरोध के लिए विभिन्न साधनों का प्रयोग करने की अनुमति है, किन्तु इस फतवे से यह बात स्पष्ट होती है कि परिवार नियोजन किसी भी हालत में मजहब के खिलाफ नहीं है और व्यक्तिगत पारिवारिक सुख तथा समाज वृद्धि की आवश्यकता के अनुसार मुस्लिम परिवार, परिवार नियोजन पर बेखटके अमल कर सकता है।

भारत में दिल्ली की ''इस्लामिक रिसर्च सोसायटी'' ने मुसलमानों में परिवार कल्याण को लोकप्रिय बनाने के लिए ''खानदानी मनसूबा बंदी कुरान और हदीस की रोशनी'' शीर्षक से उर्दू में एक पुस्तिका प्रकाशित की है, जिसमें मुसलमानों की इस धारणा का खंडन किया गया है, कि परिवार कल्याण उनमें धर्म में निषिद्ध है। इस पुस्तक में परिवार नियोजन को कुरान सम्मत सिद्ध ही नहीं किया गया है, बल्कि कुरान के अनुसार परिवार को व्यक्ति की संतान–पालन की क्षमता के मुताबिक सीमित रखना अनिवार्य भी बताया गया है। इससे मुसलमानों में परिवार कल्याण को प्रोत्साहन मिला है।

परिवार-कल्याण तथा रोमन कैथोलिक धर्म -:

परिवार नियोजन या संतति–नियोजन के बारे में रोमन कैथोलिक धर्म का विरोध पोप पायस के विवाह में जारी किये गये पत्र के आधार पर है। पोप पायस XI ने सन् 1930 में विवाह के सम्बन्ध में यह पत्र जारी किया था। इस पत्र में कहा गया है कि गर्भाधान की प्राकृतिक क्रिया को जानबूझ कर विभिन्न उपायों द्वारा रोकना या उसका विरोध करना ईश्वर तथा प्रकृति के नियम के विपरीत है, और जो लोग यह कृत्य करते हैं, वे भयंकर पाप करते हैं।

इस प्रकार रोमन कैथोलिक धर्माबलम्बी परिवार के गर्भ–निरोध के विभिन्न साधनों द्वारा नियोजित करना जघन्य अपराध समझते है, फिर भी यह सत्य है कि रोमन कैथोलिक धर्म का विरोध परिवार–कल्याण या गर्भ–निरोध के साध्य नहीं है। उन्हें साध्य के रूप में परिवार कल्याण से कोई विरोध नहीं है। वास्तव में रोमन कैथोलिक धर्मावलम्बी परिवार कल्याण को नैतिक, स्वास्थ्य तथा आर्थिक दृष्टिकोण से आवश्यक समझते हैं, किन्तु इस कार्य हेतु वे गर्भ–निरोध के वैज्ञानिक साधनों की अपेक्षा "आत्म संयम" का सहारा लेना उचित समझते हैं।

फिर भी रोमन कैथोलिक धर्मावलम्बी पोप पायस के विवाह सम्बन्धी उपर्युक्त पत्र का पालन करने में बड़ी कठिनाई अनुभव करते हैं। इस पत्र के बावजूद भी संयुक्त राज्य अमेरिका में रोमन कैथोलिक महिलायें गर्भ–निरोध अस्पताल की सेवाओं का उपयोग उसी अनुपात में कर रही है जितनी कि अन्य मत्तावलम्बी महिलाएं।

अमेरिका की फारचून पत्रिका 1944 में यह बतलाया गया है कि लगभग 70 प्रतिशत रोमन कैथोलिक महिलाओं ने यह इच्छा प्रदर्शित की कि गर्भ–निरोध की सूचना तथा उसके साधनों से उन्हें अवगत कराया जाये।

अतः वर्तमान युग की आवश्यकताओं को दृष्टिगत रखते हुए आशा रखनी चाहिए कि परिवार–कल्याण हेतु गर्भ–निरोध के विषय में रोमन कैथोलिक धर्म अपने मत्तावलम्बियों की सुख सुविधा के लिए आवश्यक परिवर्तन यथा शीघ्र करेगा, ताकि रोमन कैथोलिक धर्मावलम्बी व्यक्तियों का जीवन सभी दृष्टियों से उन्नतिशील हो सके।

ख. परिवार नियोजन और नैतिक बाधायें -:

संतति निरोध के विषय में आम धारणा यह है कि यह कृत्य अनैतिक है। नैतिकता सदाचार एवं शील संबंधी मनुष्य की अस्थाएं प्रत्येक युग में परिवर्तित तथा विकसित होती गयी हैं मनुष्य के नैतिक सिद्धान्त इस बात पर निर्भर करते हैं कि उनसे समाज का हित होता है या नहीं। युग के अनुसार मनुष्य की आवश्यकताएं भी बदल गयी हैं। परिणामस्वरुप हमारे नैतिक मूल्यों में भी परिवर्तन हुआ है, तथा होता रहेगा। हमारे देश में सती प्रथा, बहु पत्नी विवाह प्रथा आदि ऐसी परम्पराएं थी जो तत्कालीन समाज में उचित लगती थी, किन्तु वर्तमान परिवेश में देखने पर उन्हें हम हेय समझते हैं भले ही संतति निरोध को आज कुछ व्यक्ति अनैतिक कहें, किन्तु यह निर्विवाद है कि यह प्रक्रिया सामाजिक दृष्टि से उपयोगी है और इसीलिए आज नहीं तो कल सभी लोग इसे नैतिक कहे बिना नहीं रहेंगे।

कुछ व्यक्तियों का तर्क है कि संतति–निरोध अप्राकृतिक कृत्य है, दूसरे शब्दों में "यह प्रकृति के कार्य में मानव द्वारा किया जाने वाला हस्तक्षेप है। यद्यपि यह बात सत्य है किन्तु प्रकृति के कार्यों के मानव द्वारा किया जाने वाला शौर्यपूर्ण हस्तक्षेप ही मानव सम्भता का इतिहास है। मनुष्य ने सदा से प्रकृति के कार्यों का हस्तक्षेप किया है, और उस पर विजय प्राप्त की है। मनुष्य कोई पशु नहीं है, जो प्रकृति के अधीन होकर जीवन–निर्वाह करें। वरन् वह तो प्रकृति से जूझकर बेहतर जीवन की नयी राह बनाता हुआ आगे बढ़ता रहा है। इस प्रकार संतति –निरोध अप्राकृतिक नहीं, अपितु यह सुखद भविष्य की कामना के लिए मनुष्य का प्राणिगत क्रिया में सफल हस्तक्षेप है। जिससे व्यक्ति और समाज दोनों ही लाभान्वित होते है।

ग. सामाजिक बाधायें -:

संतति –निरोध के प्रमुख साधनों में जहाँ लोगों को अनैतिकता की बू आती है वहाँ कुछ आलोचकों द्वारा यह भी तर्क प्रस्तुत किया जाता है कि इस प्रक्रिया द्वारा समाज में यौन दुराचार विकसित होने लगेगा। परिणामस्वरुप हमारा सामाजिक

संगठन छिन्न–भिन्न हो जायेगा। चूंकि संतति–निरोध द्वारा किसी प्रकार का भय नहीं रहेगा। इस कारण युवक वर्ग में चारित्रिक दुराचरण निश्चित रूप में बढ़ेगा।

किन्तु इस प्रकार के कथन तथ्य हीन हैं। आज भारत वर्ष में नहीं विश्व के सभी देशों में अवैध संताने एक प्रमुख समस्या बनकर सामने आयी हैं। परिवार कल्याण के साधन समाज के इस कलंक को मिटाने में बहुत कुछ सहायक हो सकते हैं। वास्तविकता तो यह है कि इससे सामाजिक दुराचरण को प्रश्रय नहीं, बल्कि चारित्रिक उत्थान को ही बढ़ावा मिलेगा।

अब भारतीय समाज में यह भावना भी लुप्त हो रही है कि परिवार में अधिक लोगों के रहने से परिवार अधिक शक्तिशाली होता है। प्राचीनकाल में सुरक्षा एवं कल्याण, परिवार के कर्त्तव्य थे, पर अब वे राष्ट्र के कर्त्तव्य हो गये हैं। अब धीरे–धीरे हमारे समाज से भाग्यवादी दृष्टिकोण भी हटता जा रहा है, जो आगे चलकर परिवार कल्याण में साधक रहेगा। इसलिए यह बात निश्चित है कि आधुनिक सामाजिक ढाँचा प्रथाओं मूल्यों एवं पुरानी रूढ़ियों को बदल देगा।

घ. आर्थिक बाधाएं -:

समाज में वैज्ञानिकों ने यह पता लगाया है कि गरीब और आर्थिक रूप से त्रस्त लोगों के पास ही अधिक बच्चे होते हैं और जो आर्थिक रूप से सम्पन्न हैं, अपेक्षाकृ त उनके कम बच्चे होते हैं। अतः यह बात स्पष्ट है कि परिवार कल्याण के साधन गरीब लोगों को ही उपलब्ध करना चाहिए जिनकी आय कम और बच्चे अधिक हो। इस तरह से ऐसी ही जनसंख्या की वृद्धि की जाय जो राष्ट्र के विकास से सहयोगी हो।

२. कार्यक्रम की कमजोरियां -:

सरकार ने क्रमशः परिवार नियोजन कार्यक्रमों पर अधिक महत्व प्रदान किया है। परन्तु जब हम इसकी उपलब्धियों की ओर दृष्टिपात करते है तो लगता है कि इस कार्यक्रम को उतनी सफलता नहीं मिली, जितनी अपेक्षा की जाती थी। कारण यह है कि देश में सर्तकता, दूरदर्शिता व प्रावैगिकता का प्रभाव है। आलोचना के मुख्य तर्क

निम्नलिखित है –

क. परिवार नियोजन को अपनाएं शताब्दियाँ गुजर गयी किन्तु अभी तक इसके सभी साधनों का प्रचार देश में नहीं किया जा सका है, जिसका प्रमुख कारण विज्ञापन का अभाव, कर्मचारियों की लापरवाही है। उत्तरदायित्व की भावना के अभाव के कारण अधिकांश कर्मचारी इसके महत्व को निभाने का प्रयास ही नहीं करते। कर्मचारियों की लापरवाही का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि ग्रामीण क्षेत्रों में जहाँ परिवार नियोजन के कार्यों के प्रति ग्रामीणों के सहयोग की अपेक्षा की, वहाँ आज अधिकांश ग्रामीण परिवार–नियोजन ने नाम से चौंक कर भागते हैं। सिर्फ इसलिए कि परिवार–नियोजन का कार्यकर्त्ता इनके साथ अमानवीय व्यवहार करते हैं और जबरदस्ती नसबन्दी कर देते हैं। इस प्रकार येन–केन प्रकारेण अपने कोटे की संख्या पूरी कर दिखाते हैं। जबरदस्ती के अन्तर्गत ऐसे लोगों की भी नसबन्दी हुई है जो संतानोत्पत्ति के लिये अक्षम थे या जिनकी शादी नहीं हुई थी। इसका फल यह हुआ कि लोगों के मन में परिवार नियोजन के कार्यकर्ताओं के प्रति विद्रोह पनपने लगा और धीरे–धीरे समाज में व्याप्त हो गया।

ख. डा0 डी0 बनर्जी के अनुसार, " भारत मे परिवार नियोजन कार्यक्रम पूर्णतया असफल रहा है। सरकार ने पहले क्लीनिक दृष्टिकोण को अपनाया और जब पांच वर्ष बाद इस नीति की असफलता प्रकट हुई तो "विस्तार दृष्टिकोण अपनाया और शीघ्र ही त्याग कर कैम्प दृष्टिकोण अपनाया गया, इसके अन्तर्गत लोगों को तरह–तरह के प्रलोभन देकर कैम्पों में बन्ध्याकरण के लिये लाया जाता था। फिर लक्ष्य प्रेरित समयबद्ध पद्धति अपनाई गई।"16 डा0 बनर्जी के शब्दों में, "राजनीति नेतृत्व की सत्ताधारी वर्गों के मूल्यों के प्रति उदारता, उपनिवेशवादी नौकरशाही परम्परा, निहित स्वार्थों द्वारा शोषण और कुछ विदेशी शक्तियों की भारत में यथा शक्ति बनाये रखने में दिलचस्पी ने सामूहिक रूप से

परिवार–नियोजन कार्यक्रम को भयंकर रूप से विकृत कर दिया है।''17

ग. परिवार नियोजन प्रोग्राम में कार्य के स्वरूप की दृष्टि से अधिक प्रशिक्षित पढ़े लिखे और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विकसित व्यक्तियों की आवश्यकता होती है। जबकि भारत में कम पढ़े लिखे, कम प्रशिक्षित और अनुचित व्यक्तियों को छोटे परिवार के आदर्श के लिए जनता को प्रेरित करने का कार्य सौंपा गया है।

घ. डा0 आशीष बोस ने: '' भारत सरकार की परिवार नियोजन विधि की कटु आलोचना करते हुए कहा है कि पश्चिमी शैली की विज्ञापन विधि के स्थान पर परिवार नियोजन कार्यक्रमों का तालमेल सामाजिक सुधार के व्यापक आन्दोलन के साथ होना चाहिए, जिसका उद्‌देश्य भारतीय अर्थव्यवस्था की ओर समाज का आधुनिकीकरण होना अनिवार्य है। डा0 बोस लिखते हैं'' हमारे परिवार नियोजन प्रोग्राम की मिथ्या धारणा यह है कि भारत जैसे देश में जनन–व्यवहार में परिवर्तन विज्ञापन एवं इश्तहारों द्वारा किया जा सकता है। लोग जाग्रत हो चुके हैं और गरीबी हटाओं नारे को कार्यरुप देना होगा। जनता सक्रिय उपायों की माँग करेगी और परिवार नियोजन के नकारात्मक नारों ''दो या तीन बस'' सन्तुष्ट न होगी।''18

ङ. वी0 आर0 सेन : '' ने भी इसी प्रकार के विचार व्यक्त करते हुए कहा है कि भारत में समस्या को ठीक प्रकार से समझा ही नहीं गया। अब तक इस विश्वास के आधार पर कार्यक्रम बनाये गए कि संतति–निरोध उपकरणों का उत्पादन बढ़ाकर और प्रतिबंधन अवरोधों को प्रोत्साहन देकर ही समस्या का समाधान किया जा सकता है हमने जनसंख्या नीति पर कभी इस पहलू से विचार ही नहीं किया कि ग्रामीण क्षेत्रों के जनसाधारण के जीवन स्तर को ऊँचा उठाया जाय। क्योंकि उनकी निर्धनता उन्हें अनियन्त्रित पुनरूत्पादन के लिए प्रेरणा देती है और यह वह वर्ग है जिसका जनसंख्या की समस्या को गम्भीर

बनाने में सर्वाधिक योगदान है। भारतीय आयोजक तथा भारत सरकार संभवतः आर्थिक विकास और जनसंख्या वृद्धि के बीच में जो संबंध है उसे भी सही प्रकार से समझ पाने के असमर्थ रहे हैं। यदि ऐसा न होता तो निवेश का स्वरुप भिन्न होता और कृषि पर आधारित उद्योगों को प्राथमिकता क्रम में ऊँचा स्थान प्रदान किया गया होता।'' 19

१. उपर्युक्त साधनों की अनुपलब्धि - :

भारत में अभी तक परिवार–नियोजन के लिए सस्ता सुगम और विश्वसनीय गर्भ निरोधक साधन उपलब्ध नहीं हुआ है, जिसका प्रयोग अधिकांश लोग कर सकें। गर्भ–निरोध के लिए सुझायी गयी रीतियाँ प्रायः औषधि विज्ञान पर आधारित हैं तथा वे सभी इतनी मंहगी है कि सामान्य नागरिक अथवा ग्रामीण उन्हें खरीदने में कठिनाई अनुभव करता है गर्भ निरोधक साधन सभी स्थानों पर सरलता से उपलब्ध नहीं हो पाते।

२. विज्ञापनों का अभाव एवं कर्मचारियों की लापरवाही -:

भारत जैसे विशाल क्षेत्र एवं विस्तृत जनसंख्या वाले देश में जहाँ शिक्षा परिवहन एवं संचार साधनों का अभाव है वहाँ परिवार नियोजन को जन–जन तक पहुँचाने एवं लोगों में इसके प्रति जागरुकता पैदा करने के लिए व्यापक एवं प्रभावपूर्ण विज्ञापन की आवश्यकता है। अपने देश में इस संदर्भ में किया कार्य संतोषप्रद नहीं रहा है। आज भी अनेक ग्रामीण क्षेत्रों के लोग परिवार–नियोजन की आवश्यकता, महत्व एवं गर्भ निरोधक साधनों उनके प्रयोगों एवं तरीकों से अनभिज्ञ है। दूसरी तरफ परिवार नियोजन कार्यक्रम की असफलता का बहुत बड़ा कारण इस कार्य के लिए नियुक्त कर्मचारियों के निष्ठा, लगन एवं आत्मविश्वास की कमी एवं लापरवाही रही है।

३. कार्यकर्त्ताओं में प्रशिक्षण एवं कुशलता की कमी -:

किसी भी कार्यक्रम की सफलता बहुत कुछ उसके क्रियान्वित करने वाले कार्यकर्त्ताओं की कुशलता, ज्ञान, अनुभव एवं निष्ठापूर्वक कार्य करने की क्षमता पर निर्भर करती है। अपने देश में कर्मचारियों में इन गुणों का अभाव रहता है। इस कार्य में लगे

हुए सभी कर्मचारी न तो प्रशिक्षित है, और न ही उन्होंने सक्रिय रूप से कार्य किया है। कर्मचारियों की अकुशलता, अज्ञानता, लापरवाही तथा उपेक्षा के कारण ही ग्रामीण जनता में परिवार–नियोजन के प्रति तरह–तरह के भ्रम एवं गलत फहमियां हो गयी हैं विशेष रुप से ग्रामीण क्षेत्र में कर्मचारियों ने बुद्धिमत्ता, व्यावहारिकता, जनता को प्रेरित करने, लाभ–हानि को समझाने आदि में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाने में असफल रहे हैं। कर्मचारियों ने किसी प्रकार से अपने लक्ष्य की पूर्ति हेतु अनेक प्रकार की जोर जबरदस्तियां करते रहे हैं। जिसके फलस्वरुप आम जनता में इन कार्यकर्त्ताओं एवं इस कार्यक्रम के प्रति अविश्वास एवं विद्रोह की भावना उत्पन्न हो गई है। फलतः लोग परिवार नियोजन से भागने की प्रवृत्ति रखते हैं।

४. वित्तीय कठिनाइयाँ -:

भारत में परिवार नियोजन कार्यक्रम को व्यापक और सघन रूप से चलाने के लिये पर्याप्त धन कि आवश्यकता है। किन्तु अपने देश में पूंजी और आवश्यक साधनों का अभाव है जिसके फलस्वरुप परिवार नियोजन एवं स्वास्थ्य सम्बन्धी सेवाओं और शिक्षा का विस्तृत रूप से प्रचार होने में कठिनाई आती है। आर्थिक साधनों के अभाव में परिवार नियोजन सम्बन्धी पर्याप्त शोध एवं प्रशिक्षण की व्यवस्था भी नहीं हो पा रही है।

५. जनसहयोग का अभाव -:

भारत में निरक्षता, रूढ़िवादिता और अज्ञानता से युक्त अंधकारमय वातावरण होने के कारण जनता का परिवार नियोजन के प्रति पर्याप्त उत्साह नहीं है। लोग संतान को ईश्वर की देन स्वरूप मानते हैं, और उसमें हस्तक्षेप करने में संकोच करते हैं, किन्तु विगतवर्षों में किये गये ग्रामीण सर्वेक्षण के प्रति लोगों का विरोध कम होता जा रहा है।

i. सामाजिक आधार पर विरोध -:

सामाजिक आधार पर भी परिवार नियोजन का विरोध किया जाता है और कहा जाता है कि गर्भ–निरोध सामग्रियों की उपलब्धियों से लड़कियां अपने शील

को कायम नहीं रख पायेगी, शादी से पहले यौन संबंध आम बात हो जायेगी, वैश्यावृत्ति बढ़ेगी, यौन सबसे बड़ा व्यापार बन जायेगा। हर सार्वजनिक स्थान यौन खेलों का स्थान बन जायेगा तथा विवाह की पवित्रता नष्ट हो जायेगी।

ii धार्मिक विरोध -:

भारत में बहुत से व्यक्ति परिवार नियोजन का विरोध इसलिए करते हैं कि इससे हिन्दुओं और गैर हिन्दुओं के अनुपात बिगड़ जायेगा। क्योंकि मुसलमानों और ईसाईयों में यह कार्यक्रम लोकप्रिय नहीं है परन्तु यह धारणा ठीक नहीं हैं, क्योंकि मुसलमान भी कार्यक्रम का स्वागत करते हैं और उससे लाभ उठाते हैं। दिल्ली में किये गये सर्वेक्षण से तो विदित हुआ है कि परिवार कल्याण सेवाओं से लाभान्वित होने वाले मामलों में पाये जाने वाले अंतर का कारण धर्म नहीं होता, दिल्ली में मुसलमानों की आबादी 5 प्रतिशत है, पर परिवार नियोजन से लाभ उठाने वालों में उनकी संख्या 14 प्रतिशत है "दिल्ली विश्वविद्यालय आर्थिक वृद्धि संस्थान" बुलन्द शहर और मथुरा में जो अध्ययन किये हैं, उनसे यही निष्कर्ष निकलता है।

अन्य कमजोरियाँ -:

1. परिवार–नियोजन केन्द्रों के कार्यकर्ता लोगों को ठीक प्रकार के उपदेश देने में असमर्थ।
2. स्वयं सेवी संस्थाओं द्वारा परिवार नियोजन से सम्बन्धी कार्यों में उचित मात्रा में सहयोग प्रदान न करना।
3. इस काम के लिए आवश्यक चिकित्सकों तथा परिचारिकाओं का अभाव है, जो मुख्यतया बंध्याकरण लगाने के लिए आवश्यक है।
4. परिवार नियोजन का राष्ट्रीय स्तर पर प्रचार करने के लिए भारी वित्त की आवश्यकता है।
5. कुछ बुद्धिजीवियों द्वारा भी परिवार नियोजन का विरोध इस आधार पर किया जा रहा है कि इससे कुशल और प्रशिक्षित व्यक्तियों की संख्या घटती जायेगी,

क्योंकि व्यवहार में परिवार नियोजन शिक्षित वर्ग के लोग ही अपनाते है।

इस प्रकार भारतवर्ष में परिवार नियोजन की सफलता के मार्ग में अनेक कठिनाइयां जिनको दूर किए बिना अपेक्षित सफलता का लक्ष्य पूर्ण होना असम्भव है। देश में व्याप्त अशिक्षा इस क्षेत्र में सबसे बड़ी आधारभूत बाधा है। पिछले कुछ वर्षों में परिवार नियोजन कार्यक्रमों में जो तेजी आयी है वह निश्चय ही काफी प्रसन्नता और संतोष प्रदान करती है किन्तु उसे और अधिक सक्रिय एवं सफल बनाने की आवश्यकता है क्योंकि परिवार नियोजन की सफलता के बिना देश की प्रगति की कल्पना करना भी मात्र सपना बन कर रह जायेगी।

REFERENCES

1. Wayland Sloan R. : Population Education : Orienation for the teacher. Intercome. may 1973.
2. Winderman : Population studies in Asia. Page. 62.
3. Draft Final Report of Regional Workshop on population and family education, Bangkok UN
4. Report of the National Seminar on population education Bombay 1969, under Contral Ministries of education. Health and family planning. publication-Nation Concil of Education Resarch and Training. New Delhi.
5. Hauser : Population Gap in the Curriculum. The teacher's College Record, Columbia University New york. Vol 63/6
6. Varan Thompson : Teachers college Report.
7. Philip S. Hossar : The Teacher College Record. Columbia University. New York. Vol.63/3
8. India Education Commission 1964-66 News in Indian Express. Ahmedabad Edition. 18.3.1982.
9. Mehta Ashoka : Committee Report. P. 5.
10. Woodbury : Maternal Mortality P. 9.
11. Duby and Mishra : Demography and population studies. 1973, p. 467
12. Dainik JAGARAN 4 Feb. 2004
13. Chandrasekhar S. : Population and planned parenthoodin Indian Allen and Unwin London 1965. P. 94.
14. Ibid. P. 98
15. Ibid P. 106.
16. Banerji. D. : Family Planning in India. The out book for 2001 A.d.

17. Ibid
18. Bose Ashish : Studies in Demography P. 102-3
19. Sen. V. R. : Conference on population policy and programme.

अध्याय- सप्तम
निष्कर्ष

सम्पूर्ण विश्व में प्राकृतिक संसाधन अत्यन्त सीमित होने के कारण मानव जीवन को धारण करने की सुविधायें उपलब्ध करने की उनकी शक्ति सीमित है। इस तथ्य का सबसे दुष्प्रभाव तीसरी दुनिया की जनसंख्या वृद्धि की दर में सामन्जस्य स्थापित करने में असफल हो रही है। इसलिये जहाँ जीवन की मूलभूत सुविधाओं का मुहैया कराने का लाभ कठिन होता चला जा रहा है। दूसरी ओर आर्थिक विकास का लाभ भी वे इसलिये उठा पाने में असमर्थ हैं क्योंकि जनसंख्या वृद्धि के साथ सभी कदम निरर्थक हो रहे हैं। इस दृष्टि से ''जनसंख्या गतिशीलता'' तथा सामाजिक आर्थिक विकास पर इसके प्रभाव के अध्ययन की दिशा में सम्पूर्ण विश्व समुदाय की रूचि बढ़ रही है। इसका कारण भी यही है जनसंख्या की वृद्धि से जनमानस तथा उपलब्ध संसाधनों के मध्य दूरी बढ़ती जा रही है तथा दूसरी ओर जनांकक्षाओं तथा उपलब्ध अवसरों के मध्य की दूरी बढ़ती जा रही है। इस परिप्रेक्ष्य में भारत की स्थिति भयावह हो चुकी हैं। आज हम जनसंख्या वृद्धि के जिस कगार पर खड़े हैं, वहाँ भारत की जनंसख्या पहले ही 102.7 करोड़ पहुँच चुकी है तथा तेजी से बढ़ती चली जा रही है। यदि यह जनंसख्या वृद्धि दरें इस प्रकार बनी रही तो अति शीघ्र हम जनसंख्या के मामले में सबसे आगे ही जायेगे। एक तरफ सामाजिक–आर्थिक क्षेत्र में भारत काफी पिछड़ा हुआ है, वहीं जनसंख्या के मामले में काफी आगे है। इस सम्बन्ध में भारत के प्रधानमंत्री व योजना आयोग के उपाध्यक्ष का कथन दृष्टण्य है –

''हमारी अर्थव्यवस्था इस समय उच्च वृद्धि के दौर से गुजर रही है। जनसंख्या वृद्धि में कमी होने से हम इस स्थिति को प्रतिव्यक्ति आय में वृद्धि, वेहतर स्वास्थ्य सुविधायें तथा सबके लिये शिक्षा के रूप में परिवर्तित कर सकेंगे।''

प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी

"भारत के लिये 8 से 10 प्रतिशत वार्षिक आर्थिक विकास दर हासिल करना अब तक एक सुनिश्चित संभावना है ....जनसंख्या वृद्धि में कमी के साथ उच्च आर्थिक विकास चहुँमुखी मानव विकास की विपुल संभावनायें उपलब्ध कराता है।"

उपाध्यक्ष योजना आयोग श्री के0 सी0 पन्त

इन परिस्थितियों में जनसंख्या वृद्धि का परिणाम शोचनीय तथा भयावह हो जाता है। गरीब और गरीब होते जा रहे हैं तथा दयनीय जीवन जीने के लिये मजबूर हो रहे है।

आर्थिक विकास की प्रक्रिया के साथ जनसंख्या वृद्धि का सीधा सम्बन्ध है अर्थात् जनसंख्या वृद्धि के साथ–साथ आर्थिक विकास की प्रक्रिया बाधित होती है। जनसंख्या का दबाव मूलतः कृषि उत्पादन तथा वितरण, रोजगार के अवसरों स्वास्थ्य सेवा, शिक्षा, व्यावसाय तथा आर्थिक सम्पन्नता पर पड़ता है। क्योंकि मानव के विकास का वास्तविक अर्थ मानव की आवश्यकताओं की मूलभूत स्तर पर पूर्ति हो तथा जीवन यापन की गुणवत्ता पर उसका स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित हो।

किसी भी आर्थिक विकास तथा उसकी गतिविधियों का मुख्य आधार श्रमशक्ति ही है और मानव शक्ति के विकास का संवाहक। कहने का तात्पर्य यह है कि जरूरत से ज्यादा मात्रा में श्रमशक्ति की उपलब्धता भी इस तथ्य पर ऋणात्मक प्रभाव डालती है। भारत इस परिप्रेक्ष्य में सबसे सटीक उदाहरण है। जहाँ विकास पर जनसंख्या वृद्धि का विपरीत प्रभाव पड़ता है।

प्रश्न उठता है कि जनसंख्या नियन्त्रण की हमारी चेष्टा आखिर असफल क्यों हो जाती है, या पूरी तरह से सफलता हमें प्राप्त क्यों नहीं हो पाती है। दरअसल जनसंख्या नियन्त्रण के इस मुद्दे को जोर जबरदस्ती से लागू तो नहीं किया जा सकता है, क्योंकि इसके प्रति व्यापक जागरूकता पैदा करना पूरे समाज की ही जिम्मेदारी है। यह एक लोकोन्मुख कार्यक्रम है, लोकान्दोलन समाज के हर वर्ग के लोगों को इसमें सक्रिय योगदान देना होगा।

भारत में जनसंख्या की समस्या को हल करने के लिये यह अतिआवश्यक है कि देश में एक साथ ही युद्ध स्तर पर दो उपाय किये जाये। प्रथम, देश में आर्थिक विकास की गति को बढ़ाना तथा द्वितीय, जन्मदर में महत्वपूर्ण गिरावट लाना। वर्तमान में प्रथम उपाय तो हो रहा है लेकिन द्वितीय उपाय काफी प्रयासों के बाद भी सम्भव नहीं हो पा रहा है।

देश में आर्थिक विकास जनसंख्या नियन्त्रण में बड़ी सकारात्मक भूमिका अदा करता हैं क्योंकि जब देश में आर्थिक विकास होता है तो परिणामस्वरूप सामान्य जनता का आय स्तर ऊँचा उठता है और जनता एक सुधरे हुये उच्च आर्थिक जीवन स्तर की आदी होने लगती है। सामान्य तौर पर चूँकि कोई भी व्यक्ति अपने जीवन स्तर में जरा भी गिरावट आना पसन्द नहीं करता है अतः वह अपने जीवन स्तर को यथा स्थिर रखने का ही नहीं बल्कि उसमें लगातार कुछ न कुछ वृद्धि का ही प्रयत्न करता है। ऐसी स्थिति में वह स्वयं ही अपने परिवार को छोटा रखने के लिये परिवार नियोजन के विभिन्न उपाय अपनाने लगता है। इस प्रकार आर्थिक विकास एवं उसकी आदत एक अत्याधिक प्रभावशाली गर्भनिरोधक के रूप में कार्य करने लगता है। जिससे देश में जन्मदर गिरने लगती है। विश्व के अनेक विकसित देशों में ऐसा ही हुआ है कि जब वहाँ विकास हो रहा था तो वहाँ इसके फलस्वरूप स्वयं ही जन्मदर गिरती चली गयी। आज भी यदि अमेरिका जैसे विकसित देश से भारत की तुलना की जाये तो ज्ञात होता है कि वहाँ जनसंख्या में वृद्धिदर 1960 से 1991 के दौरान 1.1 प्रतिशत रही जबकि भारत में 2.2 प्रतिशत इसी प्रकार 1991से 2001 के दौरान अमेरिका में यह दर 0.9 प्रतिशत रही जबकि भारत में 1.95 प्रतिशत। यद्यपि इसका कोई एक कारण नहीं है परन्तु निसंदेह सभी कारणों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कारण दोनों देशों में आर्थिक विकास का अन्तर ही है।

परन्तु यह सोचना भी उचित नहीं होगा कि भारत की जनसंख्या की समस्या को जनसंख्या नियन्त्रण के किसी अन्य उपाय के बगैर केवल आर्थिक विकास के द्वारा ही हल किया जा सकता है। इसका एक प्रमुख कारण यह है कि विकसित देशों

की तत्कालिक दशाओं एवं भारत की वर्तमान दशाओं में जमीन आसमान का अन्तर है। यद्यपि इसमें सन्देह नहीं है कि आर्थिक विकास के साथ जन्मदर में कमी लाने वाले तत्व आर्थिक विकास से मजबूत होते जाते है परन्तु इसमें समय लगता है और भारत की वर्तमान परिस्थितियों में इतनी प्रतिक्षा नहीं की जा सकती क्योंकि इस दौरान जनसंख्या में इतनी तीव्रवृद्धि हो जाने की आशंका है जो आर्थिक विकास को ही खा जाये अतः यह अतिआवश्यक हो गया है कि आर्थिक विकास के साथ–साथ जन्मदर को गिराने की एक प्रभावी नीति भी अपनायी जाये। इस सम्बन्ध में दसवीं योजना में जन्मदर की दसकीय वृद्धि को 2011 तक 16.2 प्रतिशत तक लाने का लक्ष्य रखा गया है जबकि 2001 तक दसकीय वृद्धि 21.34 प्रतिशत रही हैं।

1951–1981 के दौरान बहुत ही तेज गति से जनसंख्या वृद्धि हुयी परन्तु पंचवर्षीय योजनाओं में जनसंख्या वृद्धि पर पर्याप्त ध्यान दिये जाने पर 1981–2001 के बीच जनसंख्या में तेज वृद्धि तो हुई परन्तु वृद्धि दर निम्न होने के स्पष्ट लक्षण भी प्रगट हुये। दसवीं योजना के अन्तर्गत जनसंख्या वृद्धि दर को कम करने हेतु कुल योजना परिव्यय में 1.7 प्रतिशत इस हेतु निर्धारित किया गया तथा जनसंख्या नियन्त्रण के लिये सामाजिक जागरुकता लाने हेतु सरकारी प्रयासों के साथ–साथ स्वयं सेवी संस्थाओं एवं संगठित क्षेत्र को भी इस कार्य में हिस्सा लेने के लिये पर्याप्त व्यवस्था की गई।

इस दृष्टिकोण से देश में एक ऐसी प्रभावपूर्ण नीति अपनायी जानी चाहिये जिससे देश की ऊँची जन्मदर को गिराकर जन्मदर और मृत्युदर के अन्तर को कम से कम किया जा सके। इस सन्दर्भ में जन्मदर को प्रभावित करने वाले तत्वों की दो श्रेणियां हैं। प्रथम श्रेणी में वह तत्व आते हैं जो स्वतः क्रियाशील होते हैं तथा विभिन्न जन्मदर उपायों से स्वतन्त्र होते हैं। इन तत्वों में प्रमुख है– प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि, शहरीकरण, देर से विवाह, मृत्युदर में गिरावट आदि।

यह सभी तत्व व्यक्ति को छोटा परिवार बनाने को प्रेरित करते हैं परन्तु पुनः इसमें समय लगता है अतः अल्पकाल में ही जन्मदर को गिराकर एक पूर्ण निर्धारित

स्तर तक लाने के लिये यह तत्व पर्याप्त नहीं रहते।

द्वितीय श्रेणी के तत्वों में वह है जो जन्मदर के नियन्त्रण के कृत्रिम उपायों से सम्बन्धित है जैसे—गर्भनिरोधक, कन्डोम एवं गोलियां इत्यादि। यदि बड़े स्तर पर इनको प्रयोग में लाया जाये तो जनसंख्या वृद्धि दर निश्चित रूप से गिरेगी और इसलिये यह परिवार नियोजन कार्यक्रम के आवश्यक अंग भी हैं अतः जन्मदर के इन कृत्रिम उपायों को अपनाने के लिये संसाधनों की आवश्यकता होगी। जबकि हमारे देश में यह संसाधन पहले से ही सीमित है और यह कहा जा सकता है कि इन सीमित संसाधनों की गर्भनिरोधक उपायों के बजाय आर्थिक विकास के क्षेत्र के विकास में लगाया जाना चाहिये अतः यह आवश्यक है कि यह साबित किया जाये कि परिवार नियोजन में लगाये गये साधन आर्थिक रूप से औचित्यपूर्ण हैं एवं विकल्पात्मक विकास के कार्यों में लगाने की तुलना में अधिक लाभप्रद है। इस सम्बन्ध में राबर्ट कैसिन तथा प्रोफेसर हान्के के अध्ययन से यह साबित कर दिया है कि विकास के कार्यों में परिवार नियोजन में, साधनों के लगने के लाभ कई गुना अधिक है।

यद्यपि उपर्युक्त उपायों की प्रभावशीलता में कोई सन्देह नहीं है परन्तु इनको लागू करना एवं उनकी सफलता काफी कुछ राज्यों की इच्छा शक्ति पर ही निर्भर करेगी क्योंकि केन्द्र सरकार द्वारा उपलब्ध कराये गये वित्तीय साधनों का सदुपयोग अन्ततः राज्य सरकारों पर ही निर्भर करता है। पिछले चार दशकों से विभिन्न सरकारी तथा गैर सरकारी प्रयासों के बाबजूद हम लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सके। एक ओर जहाँ देश में परिवार नियोजन कार्यक्रमों में गैर सरकारी संगठनों की भूमिका को अधिक सक्रिय नहीं बनाया जा सका है तो दूसरी ओर एक महत्त्वपूर्ण समस्या विभिन्न राजनैतिक विवाद भी रहे हैं। आपातकाल में तो सहकारी दबाव के चलते जबरन थोपी गयी नसबन्दी पूरे परिवार नियोजन कार्यक्रम के बारे में लोगों में नकारात्मक भाव गहरायी तक बैठा दिया था। भारतीय समाज की विडम्बना यह है कि यहाँ अधिकांश लोग धार्मिक मान्यताओं एवं पूर्वाग्रहों से बंधे हैं। इन स्थितियों के चलते सिर्फ आधुनिक

गर्भ–निरोधक उपाय ही इस समस्या का एक मात्र निदान नहीं हो सकेगा। छोटे परिवार की अवधारणा और मानदण्ड को स्वीकार करते हुये लोगों के व्यवहार में परिवर्तन लाने के कार्यक्रमों पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिये। इसके लिये सूचना, शिक्षा एवं विचारों को मजबूती प्रदान करने की योजनाओं को रचनात्मक रूप से सशक्त बनाया जाये तथा सरकारी मशीनरी औपचारिकता त्याग कर परिवार नियोजन कार्यक्रम को एक चुनौती मानकर सही दिशा देने का प्रयास करें तो तेजी से बढ़ती आबादी का वक्र नीचे आ सकता है।

भारत के हाथों से बाहर निकलती आबादी की समस्या के समाधान में शहरी स्थानीय निकायों, पंचायती राज्य संस्थाओं एवं सहकारी संस्थाओं की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण हो सकती है क्योंकि आज विभिन्न अध्ययनों से यह स्पष्ट हो गया है कि ऐसे क्षेत्र जहाँ महिला साक्षरता दर ऊँची है, सामान्य जन में जनसंख्या समस्या के प्रति जागरूकता है वहाँ प्रजनन दर कम है और इस साक्षरता एवं जागरुकता में यह संस्थायें निश्चित रूप से वृद्धि कर सकती है।

परिवार नियोजन कार्यक्रम की सफलता के लिये एक ओर जहाँ राष्ट्रीय सहमति और प्रयासों को बढ़ावा दिया जाना चाहिये, सीमाओं की गुणवत्ता एवं पहुँच सीमा में सुधार होना चाहिये, विभिन्न गर्भ–निरोधक उपायों का प्रचार, प्रसार एवं प्रोत्साहन योजनाओं को विस्तार दिया जाना चाहिए वहीं भारतीय जनता के जीवन की मूलभूत सुविधाओं जैसे–रोटी, कपड़ा और मकान, शिक्षा एवं स्वास्थ्य की उपलब्धता पर ध्यान दें तो लोगों के जीवन स्तर में सुधार हो सकता है। जीवन स्तर के सुधार के प्रयास तभी सार्थक हो सकते हैं जबकि देश में रोजगार के अवसर बढ़ाने के लिये भी व्यापक स्तर पर अभियान चलाया जाना चाहिये। संक्षेप में यदि जनसंख्या नियन्त्रण के लिये एक बहुआयामी दीर्घकालीन एवं सुविचारित कार्यनीति शीघ्र अतिशीघ्र बना ली जाये और उसे क्रियान्वित भी किया जाये तो निश्चित रूप में हम अगले दशक में समस्या को हल करने में लक्ष्य को प्राप्त कर सकेगें।

इसके अतिरिक्त भारतीय परिस्थितियों को देखते हुये प्रभावी जनसंख्या नीति निर्माण एवं उसकी सफलता के लिये निम्न बातों पर भी ध्यान दिया जाना चाहिये।

१. सभी सम्प्रदायों धर्मों पर लागू की जाये -:

धार्मिक पक्षपात् और साम्प्रदायिकता से दूर रहते हुये एक समान जनसंख्या नियंत्रण नीति द्वारा ही हमें इस दिशा में सफलता प्राप्त हो सकती है। हम धर्म निरपेक्षता और समान व्यवहार की बातें करते हैं अतः भेदभाव पूर्ण जनसंख्या नीति का अनुसरण करना राष्ट्र के लिये खतरे से खाली नहीं है। साम्प्रदायिक भेदभाव के परिणाम देश के लिये अत्यन्त खतरनाक साबित हो सकते हैं। ऐसे परिणाम आज से पहले भी देखे जा चुके हैं और भविष्य में भी सामने आ सकते हैं। इस दिशा में सरकार से अपेक्षा है कि विभिन्न धार्मिक और सामाजिक विचारधाराओं के मध्य तटस्थ रहते हुये एक समान जनसंख्या नीति क्रियान्वित की जाए इसमें कुछ सख्ती भी करनी होगी। इस प्रकार की निष्पक्ष नीति को सर्वत्र सम्मान मिलेगा देश के समस्त नागरिक सहर्ष स्वीकार करेगें।

२. शोध तथा अनुशासन को प्रोत्साहन -:

सरकार परिवार नियोजन सम्बन्धी शोध तथा अनुसंधान को प्रोत्साहन देकर सरल व जनसाधारण के लिये अधिक उपयोगी उपकरणों व तरीकों की खोज करके बर्थ कन्ट्रोल में बहुत बड़ी सफलता प्राप्त कर सकती है। बर्थ कन्ट्रोल से सम्बन्धित टिकियों का प्रभावी प्रयोग किया जायें। भोजन में उन पदार्थों का आधिक्य हो जिनसे स्वतः प्रजनन शक्ति कमजोर होती जाये। हमारे देश वासियों के भोजन में प्रोटीनयुक्त पदार्थों की अधिकता हो, इससे प्रजनन शक्ति में कमी आ सकती हैं। इन क्षेत्रों में प्रकृति की प्रधानता होते हुये भी मानव द्वारा अनुसंधान कार्यों के बल पर पर्याप्त प्रयास किये जा सकते हैं।

३. जनसंख्या नीति में प्रादेशिक दृष्टिकोण -:

राष्ट्रीय जनसंख्या नीति के क्रियान्वयन में राज्यों की विभिन्न परिस्थितियों को ध्यान में रखना आवश्यक है। जिन राज्यों में अधिक तेजी से जनसंख्या में वृद्धि हुई

है साथ ही जहाँ पर जनसंख्या बहुत ही सघन है उन राज्यों में गहन परिवार नियोजन कार्यक्रम को प्रोत्साहन देना उचित हैं। 1991–2001 के वर्षों में उत्तर प्रदेश, बिहार, हरियाणा,असम, पश्चिम बंगाल, मध्यप्रदेश,राजस्थान, गुजरात और महाराष्ट्र आदि राज्यों की जनसंख्या में तेज वृद्धि हुई अतः परिवार नियोजन कार्यक्रम को इन राज्यों में अधिक व्यापक बनाया जाये। भारत में मध्यप्रदेश, राजस्थान, बिहार व उत्तर प्रदेश में लड़कियों के विवाह की न्यूनतम उम्र के बारे में कठोर कार्यवाही की आवश्यकता है।

४. जनसंख्या आयोग की स्थापना -:

देश में चुनाव आयोग के समान ही जनसंख्या आयोग नामक एक स्वायत्त संगठन स्थापित करके प्रमुख लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सकता है–

1. जनसंख्या नियंत्रक उपायों को राजनीतिक प्रक्रियाओं से अलग रखना।
2. जनसंख्या वृद्धि की चुनौतियों का सामना करने के लिये संविधान के अन्दर प्रभावी तन्त्र स्थापित करना।

संविधान के इस नये तन्त्र का उत्तरदायित्व होगा देश के लिये अल्प एवं विस्तृत कार्यक्रम बनाना एवं उन्हें लागू करना। इस नये आयोग को सर्वोच्च न्यायालय के परामर्श एवं राष्ट्रपति की अनुमति से जनसंख्या नियंत्रण सम्बन्धी नियम एवं अधिनियम बनाने का ऐसा अधिकार देना होगा जिसमें संसद एवं विधानसभाओं का कोई हस्तक्षेप न हो। ऐसा इसलिये करना होगा जिससे कि नियम बनाने की प्रक्रिया में संलिप्त रहने पर राजनीतिक दलों को जो राजनीतिक असुविधा अथवा नुकसान हो सकता है वह न हो। राजनीतिक दलों को केवल जनसंख्या आयोग बनाने के लिये आवश्यक संवैधानिक संशोधन करने के लिये आगे आना होगा।

BIBLIOGRAPHY

1. Adams, E. and P. Shankar Menon : Projection of population Age- sex structure.
2. Agarwal, S.N. : Population problem in india.
3. Agarwal, S.N : India's population : some problem in perspective planning, 1974.
4 Bague j. Donald.: Principles of Demography .
5. Bhende , A. Ashal : Principles of population studies, Mrs. kanitar Tara,1985.
6. Berelson Bernard : Population Challenges . World Crises.
7. Barclay, George W. : Techniques of population analysis .
8. Benjamin, P.B. : Resources and population.
9. Baker , OF : Population on prospects in relation to World Agricultural resources.
10. Bertram, G. : Population trends and world's biological Resources.
11. Blacker, C.P. and Glass, D.V. : Population policies and lation fertility.
12. Bose, Ashish and others : Pattern of Population change in India, 1967.
13. Bose, Ashish and others : Studies in Demography.
14. Benrejee , D. : Family planning in india , some inhibiting factors .
15. Benerjee, D. : Health service and population policies.
16. Benerjee, D. : community Response to the intensified family planning programme . E. and P.W. Annual Nu. feb. 1977.
17. Berelson, B. : Population policy in developed Countries .
18. Bowen : population.
19. Cassen, R.H. : Population Economy and Society.
20. Chandrashekar, S. : India's population Fact problem and policy ,1970.
21. Cox Narald :The problem of population .
22. Castro : The Geography of the Hunger , Boston , 1952.

23. Coale A. J. and Hoover, E. M. : Population growth and Economic Development in Low - Income Countries, Oxford University press, 1959.

24. Chandrashekhar, S. : Infant Mortality in India.

25. Chandrashekhar, S. : Population and planned parenthood in India Allen and Unwin, London, 1965.

26. Chandrashekhar, S. : Population and Low in India.

27. Chandrashekhar, S. : Population and planned India.

28. Chandrashekhar, S. : Aria's population problem.

29. Dutta, G.K. and Bhattacharya, N.D. : Profiles of population and select Bibliography on population.

30. Davis, K. : Population of India and Pakistan, Human Society, 1951.

31. Duncan,G.H. : Rase and Population on problem.

32. Duncan and Spengler : Demographic Analysis, 1963.

33. David Heer M. : Society and Population.

34. Datt, Rudder and Sundaram : Indian Economy, 1985.

35. Daurs, K. : Demographic Eact and policy in India.

36. Desai, P.B. : The perspective of india's population policy in studies in Demography.

37.. Dennis Wrong : Population.

38. Dalton, H. : Public Finance.

39. Dantwala, M.L. : India's food problem national Council of Applied Economic Research : Food policy and economic growth.

40. Erland von Hofsten : Projections of the economically active Population.

41. Freika Tomas : The future of population growth.

42. Glass, D.V. : Population movement in Europe.

43. Ganguli, B.N. : Population and development.

significance.

44. Gyanchand : Population in perspective.
45. Glass, D.V. : Population Growth and population policy.
46. Green : A short History of English people.
47. Griffiths, G.T. : Population problem of the age of mothers.
48. Gutman, Robert : In defence of population theory.
49. Gopalaswami : India's Population projections.
50. Godwin, William : Enquiry Concerning political justice and its influence on morals and Happiness, 1793.
51. Hatchinsons Sir Joseph : Population and food supply Cambridge.
52. Houser Philip M. : Population perspective.
53. Hubback, E.M. : Population Facts and Policies.
54. Hans Raj : Fundamental of Demography.
55. Hans raj : Population of Studies, 1986.
56. Hauser and Duncan : The study of population.
57. Henry George : Progress and poverty, New York, 1905.
58. Hopper, W. David : A perspective on India's food production, Jan.5,1976.
59. Holst Willem : Planning for self-sufficiency in food grains.
60. Hansen, A.H. : Economic progress and Declining population growth.
61. Hale Sir Mathu : The primitive origination of mankind.
62. Hyume, David : Essay on the population of Ancient Nations.
63. Johnson W. Bert Wilder Frank and Bague Donald J : Information education and Communication for population and family planning.
64. Jain, S.P. : Indian population situation, 1971.
65. Jain, S.P. : Demography.
66. S. P. Jain : The indian programme for improving basic registration.
67. Jain, S.P. : A study of population research.

68. Johnston, J.A : Population Education : Research and the states of the act. Auastralian Association for reserch in education.
69. Johnstan, J.A. : population youth through tformal school system and community structure I.P.P.F. London, 1971.
70. Jayasuriya, J.E. : Population education and the school curriculum UNESCO series Bangkok, 1972.
71. Jayasuriya, Some consideration relevant to the formulation of a national programme of population education Memca, UNESCO, Bangkok, 1971.
72. Jain, A.K. : An appraisal of family planning in india.
73. Kammeyer Kennethi, C.W. and Ginn Helen, L : An Introduction to Population.
74. Kuczynski, R. : The movements of population growth, balance of births and deaths population problem.
75. Kamar, R.K. : population problem.
76. Karl Marx : Capital, New York, 1905.
77. Kuznets, Simon : Economic growth and structure, 1962.
78. Kumar, P. : population growth and food availability in India, rural India, Feb.1968.
79. Kochar, James : Notes and commentary on population policy in India, in population and development review, June 1980, vol. 6
80. Keynes, J.M. : General theory of employment interest and money.
81. Li Ching Chun : Population Geneties.
82. Lewis and Thompson : Population problems, 5th Edition, 1965.
83. Lewis Henry : Population analysis and models.
84. Lewis, A. : The theory and Economics.
85. Mitra, Ashok : Aspect of population policy in India.
86. Mehta, T.S. : Population education.
87. Malgavkar, P.O. : Population and development.
88. Mahalanobis, P.C. : Problem of current demographic data in India.
89. Myrdal, G. : Population : A problem of democracy, Asian drama.
90. Mamoria, C.B. : India's population problem.
91. Misra, B.D. : An introduction to the study of population.
92. Mitra and Others : population, food and land in equality in India.
93. Myrdal : Nation and family.
94. Mukarjee, R.K. : Food planning for 400 Millions 1938.
95. Moor, W.E. : Sociology and demography in a study of population.
96. Mamoria, C.B. : Population and family planning in India.
97. Mojumdar, M. : Reconstructing family planning : March 26, 1977, E. and P.W.
98. Mukarjee, R.K. : Population theory and politics.

99. Malthus : An essay on the principles of population, 1st Edition, preface.
100. Myers J. Robert : Comparison of population projections with actual data.
101. Marshall, A. : Principles of Economics.
102. Mehta, J.K. : Advanced economic theory.
103. Mehta, J.K. : Economics of growth.
104. Milos Macana : Relation between demographic projections and formulation of a development programme.
105. Notestien, F.W. : The future population of Europe and sovient union problem of policy in relation to areas of heavy population pressure.
106. Nurkse, Regnar : Problems of capital formation in under developed countries.
107. Osburn, F. Lorimer, K. : Dynamics of population.
108. Organiski, Katherine and Organski : Population and world power.
109. Peterson, W. : population.
110. Pati, R.N. : Population family and culture.
111. pearson, S.V. : The growth and distribution of population.
112. Pearl Raymond : Biology of population growth natural study of population.
113. Penrose, E.F. : Population theories and their application.
114. Parakh, B.S. : population education.
115. Pepelasis, Mears and Adleman : Economic Development analysis and case studies, 1964.
116. Pran Nath : A study in the economic conditions of ancient India, 1926.
117. Premi, M. K. : Demographic.
118. Panse, V.G. and Ambley, U.N. : Food versus population in India in world demogrphic conference.
119. Pethe, P. Vasant : Family planning and election mani festor, E and P.W. March 5, 1977.
120. Paul Meadows : Towards a socialized population policy.
121. Pobedina, A.F. The use of electronic computers for population projections.
122. Podychykh, P.G. : population projections in which allowance is made for migration.
123. Pigou, A.C. : Economic of welfare.
124. Rao. D. Gopal : A decade of population research in India.
125. Russal, J. : World population and world resources.
126. Ranjon Kumar Som : Response biases in demographic enguries.
127. Roy, Ranjit : In to 1968, with out food policy.
128. Robbins, L. : As essay on the nature and significance of economic science.
129. Rao, V.K.R.V. : Essay in economic development.
130. Siddqui, F. A. : Regional analysisof population structure.

131. Spengler, J. J. : Population and America's future.
132. Srinivasan, K. & Mukharjee : Dyanamic of population and family welfare.
133. Souza Arithong A. D. Souza Alfredde : Population growth and human development.
134. G.A. Slesarve : Demographic changes in an industrial area and their social Significance.
135. Saunders, A. N. Carr : World population, 1936.
136. Singh, B. : Population and food planning in India.
137. Singh, T. L. : Population analysis.
138. Saxena, G. B. : India population in transition, 1971.
139. Sanger, Margarot : Problems of over population.
140. Sang, A and Jan Lemica : Population explosion.
141. Spence Hebert : The principles of Biology, New York.
142. Sauvey, Alfred : General theory of population, 1960.
143. Smith, Vincent : Cambridge History of India, 1922.
144. Shirras, F. : Poverty and kendered economic problems of India, 1931.
145. Shah, K. T. : Population, 1937.
146. Sikes, O. J. : Population education response to a challenge, UNESCO Bangkok, 1974.
147. Jagdish Narain Srivastava : Family planningin India occasional paper No 2: Demographic research centre : Lucknow University Lucknow.
148. Sloan R. Wayland : Issues and problems in introducing population education, UNESCO, 1970.
149. Stephen, Viederman : Population education : Student knowledge and needed research 1972.
150. Shukla, B. P. : problem of food in India, rural India, Feb. 1968.
151. Sloan R. Wayland : Integration of population and family planning education in to curricular of grade schools, secendry school and medical school and universities, I.P.P.F. - SEAO Regional conference march 21-27 1971. Baguio city, Phillippines.
152. Shenoy, B. R. : Food Crisis in India- causes and cure.
153. Subramaniam, S. R. and Meena kshisundaram : Population and food supply in India.
154. Singh, B. N. and pandey, R.K. : Supply situation in wheat and rice, Eastern economist, Feb 4,1977.
155. S. P. Jain : The indian programme for improving basic registration.
156. Sengal K. C. : Small families and better living.
157. Singh, T. N. : More people less food.

158. Seal, K. C. : The family planning programme in India.
159. Singh, Karan : population poverty and the future of India, N I F P publication Government of India.
160. Satia , J. K. : Family planning workers and problems of programme implementation, Sep. 18, 1977.
161. Sharma and Nambudiri : Strategy for family planning programmes in the industrial sector.
162. Spengler, J. j. : Aspects of the economic of population growth.
163. Sydney H. Coontz : Population theoriesh economic interpretatio, 1961, London.
164. Spengler and Duncan : Population theory and policy.
165. Sir Edward West : Essay on the application of capital to land, 1815.
166. Smith Kenneth : The malthusian controversy.
167. Samuelson : Economics.
168. Schumpeter : The theory of economics development.
169. Thompson S. Warren and Lewis T. David : Population problem.
170. Townsend : Dissertation on the poor low, 1786.
171. Taeuber Irene : Population studies in U. S. population index.
172. Valentey, D. T. : An outline theory of population.
173. Vatsala Naain and Prakasam, C. P. : Population policy, perspective in deveioping countries 1983.
174. Visaria, pravin : Recent trends in india population policy, E and P.W. Special number, August 1976.
175. Vaish, M. C. : Principles of economics.
176. Whelpton, P. K. : World population trends proceedings of international congress on population and research.
177. Warren S. Thompson and david T. Lewis : Population problems Mc graw hill book company, New york 5th edition.
178. Wayland, S. R. : The demographers stake in population education, mimeo population association of America Toranto 1972.
179. Wayland S. R. : Population education as it exists. Today - A Global perspective mimco corelina population centre, 1971.
180. Wadia and merchant : Our economic problem, 1957.

Dictionary, Reports, Journals, Dessertation Abstracts, Published Thesis

(1) Agarwal A. N. population of India and its future trends Indian journal of economics.

(2) A survey of research in demography, ICSSR, 1975, page 44.

(3) Annual, nos. of various journals.

(4) Annul, numbers eastern economist, economic and political weekly and economics times.

(5) All India household survey of income, saving and consume expenditure NCAER, New Delhi, 1972.

(6) All India consumer expenditure survey, Vol. 11, NCAER 1967.

(7) Annual report of department of food, 1976,May 21, 1975. eastern economist.

(8) Blacker, I. P. : Stages in population growth eugenic review.

(9) B. M. : Rethinking on buffer stock economic and political weekly, December 25, 1976.

(10) Banerjee, D : community response to the intensified family planning programme E. and P. W. annual No.1977.

(11) Committee, N. P. : Report on population, nutrition public health.

(12) Condliffile, J. B. china today, The economic pattern of world population.

(13) Chandra shekhar, S. : demographic disarment for India's population and planned perenthood in India, Hunary people and empty lands India's population and Asia's population problem.

(14) Chawla, S. P. : Coordination between education and population policies, A case study of India NCERT.

(15) Cochrane, S. H. : Fertility and education, A world bank study, 1984, Page 3.

(16) Census of India, paper 2, p. 27-28.

(17) Census of India, 1981, series 7, paper 2.

(18) Durand, John : Demography's three hundredth Anniversary- population index, 1962, p. 334.

(19) Demography Year book, 1982, H. N. publication, New York.

(20) Demography Year book 1970 or world population chart 1984.

(21) Eve's weekly, July 22, 1977.

(22) Financial express, August 19, 1981.

(23) Family welfare programme, Year book, 1977-78. , page 48.

(24) First five year plan, govt. of India, p. 18.

(25) Five year plan, New Delhi planning commission, govt.of India . report of the department of health and family planning welfare.

(26) Frank W. Notestien : Population Crisis : Reasons for hope. The American review Oct. 1968 Vol. X111, No.1.

(27) Government of India, ministry of health and family planning. Government of India, yearly reporty.

(28) Government of India, ministry of health and family planning, policy statement of population on 16th April, 1976.

(29) Government of India, ministry of health and family planning : Report for the year 1976-1977.

(30) H.M.S.O. : Report of royal commission on population overseas eco. survey of india.

(31) Laxminarayan, H. : Food for all towards a realistic procurnment policy. sunday world Dec. 15, 1973. (Hindustan Times).

(32) Myths About motherhood, beautiful, August 1978.

(33) May 1, 1977 report on food stock negotition FAO officials, Times of India.

(34) Notestein : Policy of the India government of family limitation, problem of policy in relation to areas of heavy population pressure in demographic studies of selected areas of rapid growth.

(35) P.E.P. : Report on world population resources.

(36) Population transition in india, Vol. 2, P. 22.

(37) Population transition in india, V. I, 1984, p. 178.

(38) Population transition in india, Vol. 1, 1989, p. 268.

(39) Population studies, Asha and Bh. and Tara Ka, 1982, p. 121.

(40) Report 1977-78 about the progress of family planning in India, government of india.

(41) Reports : Ministry of health and family planning of government of india.

(42) Reserve bank of india yearly reports on currency and finance, up to 1977.

(43) Rangnekar, D. K. : Challenge of change, economic time annual No. 1972.

(44) Report of the national seminar, Population education for parents.

(45) Register Journal and commissioner, India government of india, 1981, census of India, 1981, series 1 India part IIB primary. census abstract, general populaion.

(46) Southern economist, Vol 24. 1st May, 1985, p. 19.

(47) Second five year plan, Govt. of India, 1956, p. 7.

(48) Shrivastava, O. S. : Inflation and economic growth paper for the first conference of Madhya Pradesh economic association.

(49) Seal, K. C. and Parthasarthy : Theories of population analysis of demographic development, Yojana 1st July, 1974.

(50) Tech. Res. Institute Mysore, Food and population and development of food industries.

(51) Times of india, Supplement on india's 25th Anniversary, 15th August 1972.

(52) Third five year plan, Planning commassion, New Delhi 1961, p. 25.

(53) Times of india, 19 March, 1981, 4th March, 1989, October 7, 1989.

(54) United nation, world population situation in 1983.

(55) United nation, population of india.

(56) United Kingdome : royal commission on population report 1949, chapter 6.

(57) U. S. President's Science Advisary committee panel on world food supply.

(58) UNESCO : Population education in the Asian region, Bangkok, 1972.

(59) UNESCO : Population and family education Bangkok, 1971.

(60) Vasiaria, Parvin : Recent Trends in Indian population Economic and political weekly special Number August 1976.

(61) Verma, Kewal : Ad hocism in food policy. see yojana issues.

(62) Venkatachalam, T.V. : Wheet Revolution 1 Weekly July 20, 1975.

(63) Various progress reports of five years plans.
World population chart, U.N. 1984.

(64) World population situation, 4 N 1983, New York, P. 56-57.

(65) World development report 1988, P. 274-275.

(66) Dainik Jagran, Kanpur, 13 September 1993, 14 December 1993.

(67) Shukla, Ajai : Effects of endogeneous population on economic growth : Modelling and stability analysis. Unpublished Ph.D. Thesis of Kanpur, 1987.

(68) Gupta, M.C. : A study of the Socio-Economic Aspects the problem of population in india, unpublished Ph.D. Thesis of Kanpur University, Kanpur, 1976.

(69) Dainik Jagran Kanpur. 19 June 2003, 23 June 2004

(70) Aaj Kanpur 18 April 2002

हिन्दी ग्रन्थों की सूची

1. आहूजा, ड्यूवेट, उच्च आर्थिकी सिद्धांत।
2. कसूलस, डी0 जी0 : आर्थिक प्रगति की कुंजी।
3. गौड़ एस0 पी0 : भारत का आर्थिक विकास।
4. जैन, पी0 सी0 : भारत की आधुनिक आर्थिक प्रगति।
5. जैन, शशी के0 जनसंख्या अध्ययन, 1988।
6. जैन, के0 पी0 आर्थिक विश्लेषण।
7. झिंगन, एम0 एल0 : विकास का अर्थ एवं आयोजन।
8. तिलाश कुंवर सिंह : जनांकिकी के सिद्धांत।
9. दुबे पुष्पा श्री : जनसख्या शिक्षण, विवेक प्रकाशन,7 यू0 ए0 जवाहर नगर दिल्ली प्रथम संस्करण। 1988.
10. दुबे एवं मिश्रा : जनांकिकी एवं जनसख्या अध्ययन 1973।
11. पन्त एवं जीवनचन्द्र : जनांकिकी।
12. पाटनी, आर0 एल0 : जनांकिकी एव जनसख्यात्मक समस्यायें।
13. बी0 पद्दमि सीता रमैय्या : भारत का आर्थिक शोषण।
14. मित्तल, एस0 सी0 : भारत का आर्थिक विकास।
15. मिथलेश कुमार एवं पाण्डेय सूर्यकुमार : जनसख्या शिक्षा, सिद्धांत एवं तत्व, 1985।
16. मिश्र भास्कर : जनसंख्या शिक्षा सिद्धांत एवं तत्व, 1987।
17. मिश्रा, डा0 आर0 बी0 : भारतीय अर्थशास्त्र।
18. मित्तल, एस0 सी0 एवं सक्सेना ए0 के0 : आर्थिक विचारों का इतिहास।
19. रोस्तोव, डब्ल्यू0 : आर्थिक विकास की विभिन्न दशाएं।
20. ओ0 एस0 श्रीवास्तव एवं कला श्रीवास्तव : जनसंख्या का अर्थ व समाजशास्त्र।

रश्मि गुप्ता